प्रेरणा

मंगल आशीर्वाद

अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री 108 वसुनंदी जी मुनिराज

संकलन एवं सम्पादन

गणिनी आर्यिका श्री 105 गुरुनन्दनी माता जी

प्रकाशक

निर्ग्रन्थ ग्रन्थ माला समिति

ई० 102 केशर गार्डन, सै० 48 नोएडा-201301

मो. 9971548889, 9867557668

कृति : प्रेरणा

मंगल आशीर्वाद : आचार्य श्री 108 वसुनन्दी मुनिराज

संकलन एवं सम्पादन : गणिनी आर्यिका श्री 105 गुरुनन्दनी माता जी

सहयोगी : आर्यिका प्रबोध नन्दनी माताजी
आर्यिका प्राकाम्य नन्दनी माताजी

संस्करण - प्रथम, वर्ष 2020 ई.

प्रतियाँ - 1000

मूल्य - सदुपयोग

प्राप्ति स्थान -

1. निर्ग्रन्थ ग्रन्थमाला समिति, बौलखेड़ा
2. प. पू. गणिनी आर्यिका श्री 105 गुरुनंदनी माता जी संघ
3. श्री गुरुनंदनी स्पोर्ट्स मौहल्ला गंज, फिरोजाबाद
   मो. 9639016160
4. बा. ब्र. संजय भैया (गुणाशीष)
   गुरु प्रतीक्षा भवन, नंदीश्वर कॉलोनी टीकमगढ़ (म.प्र.)
   मो. 9990141551

सम्पादकीय

''विश्व का सौंदर्य है नारी, भारत देश की शान है नारी।
नर की प्रेरणा है नारी, वीर विजेताओं का शृंगार है नारी॥
अरे नर ही क्या पूरे विश्व को प्यारी है नारी।
क्योंकि इस दुनिया की सुंदरतम कृति है नारी॥''

विश्व की हृदयस्थली भारत भूमि नारियों के त्याग और बलिदान की गौरव गाथाओं से भरी पड़ी है। इसलिए भारतीय परम्परा में नारी को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है, नर को जन्म देने वाली जन्मदात्री कहा जाता है। नारी के पास सामर्थ्य है, शक्ति है, प्रकृति का वरदान है। नारी नर को जन्म ही नहीं देती, अपितु संस्कारित भी करती है। वह नारी ही थी जिसने बहुत से पराक्रमी योद्धाओं और वीरों को जन्म देकर उन्हें देश की अस्मिता पर मर मिटना सिखाया। वह नारी ही थी जिसने जौहर की ज्वाला में भस्मसात होकर सम्मान से जीना बतलाया। वह नारी ही थी जिसने अपने बच्चों को सुसंस्कार देकर पाठ पढ़ाया कि तुम तीर्थंकर बनो, मैं तुम्हें नमन करूँगी। इसलिए कहा जाता है, शिशु की प्रथम पाठशाला माँ होती है और वह माँ ही संस्कारों के माध्यम से बालक को श्रेष्ठ पद तक पहुँचा देती है। नारी के अंदर ममता, दया, करुणा कूट-कूट के भरी रहती है। नारी की यही विशेषता उसे महान बनाए हुए है। वह मानव की प्रेरणा शक्ति बनी है। नारी की करुणा को समझने के लिए 'केनिया' की घटना पर्याप्त होगी।

आस्ट्रेलिया की केनिया नाम की लड़की सखियों के साथ माउन्ट ईसा से कुछ दूर जा रही थी। उसका सिर दुर्गन्ध के कारण फटा जा रहा था। उस दुर्गन्ध का पता लगाया गया तब मालूम हुआ कि हैजे के बुखार से ग्रसित अनेक रोगी तड़प रहे हैं, अनेक लाशें सड़ रही हैं। केनिया ने उसी समय ग्लानि छोड़कर उन सबकी सेवा की और संकल्प लिया कि मैं डॉक्टर बनकर निःस्वार्थ सेवा करूँगी। वह डॉक्टर बनी और जरूरतमंदों

की सेवा में लग गयी। एक बार सखियों ने उससे विवाह के संबंध में पूछा, तो उसने कहा सेवा ही विवाह है। यह थी नारी की करुणा।

कहा जाता है कि नारी नर से बढ़कर होती है। 'नर' शब्द में कोई भी दीर्घ मात्रा व दीर्घ स्वर नहीं है, जबकि 'नारी' शब्द में दीर्घ मात्रा व दीर्घ स्वर दोनों हैं। 'ना' अक्षर का 'आ' बीज मंत्र है और 'री' की 'ई' शक्ति बीज है। कुल मिलाकर कहा जाता है, नारी ही नर को बल, साहस, शक्ति और प्रेरणा प्रदान करती है। इसलिए तो नारी को 'आद्य शक्ति' कहा गया है। नारी शक्ति है, कामधेनु है, अन्नपूर्णा है, रिद्धि है, सिद्धि है, विद्या है, श्रद्धा है, और है संसार की सर्वोत्तम कृति।

विश्व की आधी से ज्यादा आबादी नारियों की है। जिस देश में, समाज में महिलाओं की स्थिति जितनी महत्वपूर्ण और सम्मानजनक होगी वह राष्ट्र, देश व समाज उतना ही सशक्त, समृद्ध और सुदृढ़ होगा।

'सतीत्वेन महत्वेन वृत्तेन विनयेन च।
विवेकेन स्त्रियः कश्चिद् भूषर्यन्त धरातले॥'

अर्थात् कई स्त्रियाँ सतीत्व, महत्व, चारित्र, विनय और विवेक से पृथ्वीतल को विभूषित करती हैं। भारतीय नारी शील, संयम, साधना और त्याग की अनुपम छवि है। ऐसी नारियों ने अपने आत्मबल, दृढ़ इच्छाशक्ति, प्रार्थना एवं प्रभु शक्ति के बल पर सृष्टि में अपना नाम अमर किया है। ऐसी नारियाँ उत्कृष्ट हैं, वे भारत की ही नहीं अपितु विश्व की आदर्शता हैं। ऐसी ही नारियों के बारे में प्रस्तुत 'प्रेरणा' कृति में लिखने का प्रयास किया गया है। इस कृति में तेरह कहानियाँ हैं जो हमें संकेत करती हैं, कि इस दुनिया में मेरा कुछ नहीं है, जो कुछ है प्रभु तेरा ही तेरा है। क्योंकि इन सतियों ने सबसे पहले अपने 'मैं' को विसर्जित किया और दूसरों को ही महत्व दिया। ये सतियाँ त्याग की पराकाष्ठता हैं, समता और ममता की प्रतिमूर्ति हैं। इन सतियों की भक्ति और शक्ति के सामने मनुष्य ही क्या, देवता भी नतमस्तक हो चुके हैं।

रानी पद्मावती का शील, सुरसुंदरी का साहस, सती चंदनबाला की शक्ति, राजुल की प्रीति, अनन्तमति की दृढ़ता, सती मृगांकलेखा का धैर्य, मैनासुंदरी की श्रद्धा, सती द्रौपदी की पतिपरायणता, सीता की सहनशीलता, विद्युतप्रभा की क्षमाशीलता, विशल्या का तप, सती अंजना का समर्पण व अतिमब्बे का त्याग पूरे मानव समाज के लिए प्रेरणा है कि कैसे हर संकट, हर परिस्थिति व हर दुःख का सामना करते हुए भी इन सतियों ने कभी धर्म और अपने वास्तविक धन शील को नहीं छोड़ा; भले ही पुरुषों ने मानवता का परित्याग किया हो, परंतु कभी इन सतियों ने मानवीय व आत्मीय गुणों का त्याग नहीं किया। इन सभी की यशोगाथा हमें बोधि और समाधि में निमित्तभूत समता को प्रदान करती है, सहनशीलता व संकटों से निकलने का साहस दिलाती है, हमारा मोक्षमार्ग प्रशस्त करती है। अतः पाठकों को चाहिए कि इस पुस्तक का एक बार ही नहीं बल्कि जीवन में बार-बार स्वाध्याय करें। जिससे प्रत्येक घर में महाभारत के स्थान पर रामायण शुरू हो जाये।

प्रत्येक मानव उत्तम समाधि कर सके इस भावना को लेकर इस 'प्रेरणा' कृति का सृजन किया गया है। इस कृति के संकलन एवं सम्पादन में जो भी त्रुटि रह गयी हो तो आप सभी विज्ञजन हमें अवगत कराने का कष्ट करें, जिससे अगले प्रकाशन में सुधार किया जा सके। इस कृति में संघस्थ सभी त्यागी व्रतियों का सहयोग रहा, उनके लिए पूज्य गुरुदेव का पूर्ण आशीर्वाद है एवं इस कृति के प्रकाशन में अपनी चंचला लक्ष्मी का उपयोग करने वाले दिनेश जी सेठी परिवार को भी गुरुदेव का मंगलमय आशीर्वाद।

शताधिक वर्षों तक यह वसुधा पूज्य गुरुदेव की वाणी से गुंजायमान रहे एवं उनका आशीष सदैव हमारे साथ इसी प्रकार बना रहे, इन्हीं भावनाओं के साथ पूज्य आचार्यश्री के चरणों में सिद्ध, श्रुत, आचार्य भक्ति सहित बारम्बार नमोस्तु!

–गणिनी आर्यिका गुरुनंदनी माता जी

प्रस्तावना

पं. सनत कुमार, विनोद कुमार जैन
रजवाँस, सागर (म.प्र.)

सम्यक् दर्शन की उत्पत्ति में भगवान की देशना प्रमुख कारण होती है। जिसके कारण व्यक्ति अपने हिताहित के साथ आत्म कल्याण का मार्ग भी प्रशस्त करता है।

वह जिनेन्द्र वाणी भगवान महावीर स्वामी के मोक्ष जाने के बाद श्रुत रूप में प्रसारित रही एवं आचार्य पुष्पदन्त व भूतबली स्वामी के लेखन से प्रारंभ होकर आज तक अनवरत रूप से लिखी जा रही है। जो प्रथमतः सूत्र में चूर्णि सूत्र गाथा श्लोक वार्तिक टीका प्रवचन रूप में लिखी गई, जिसकी भाषा प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, ढूढ़ारी, ऊर्दू, ओग्ल एवं ब्रज, बुन्देली, कन्नड़, तमिल, मराठी, बंगाली आदि क्षेत्रीय लिपियों में देश काल की अपेक्षा से लिखी गई जिससे वह जन-जन का विषय बन सकी।

जिनवाणी को गणधर परमेष्ठी ने जहाँ बारह अंगों में गूंथा वहीं चार अनुयोगों में विभाजित कर सामान्य जन के प्रति परोपकार किया है। तदुपरांत परवर्ती आचार्य, उपाध्याय, साधु, आर्यिका, विद्वान एवं चिंतकों ने अपने-अपने सकारात्मक दृष्टिकोण से प्रस्तुत कर जैनागम को समृद्ध तो किया ही है साथ ही इस पंचम काल में मोक्षमार्ग में लगने की प्रेरणा भी की है।

चारों अनुयोगों का अपना-अपना विशेष महत्त्व है। कोई भी हिनाधिक नहीं है। जैसे गाय के चारों स्तनों से प्राप्त होने वाला दूध समान रूप से पुष्टिकारक होता है उसी प्रकार जिनवाणी के चारों अनुयोगों की विषय वस्तु जहाँ सम्यक्त्व कारण है वहीं आत्मावलोकन एवं परिणाम विशुद्धि का हेतु है। प्रथमानुयोग के विषय में आचार्य समन्तभन्द्र स्वामी लिखते हैं–

प्रथमानुयोग मर्थाख्यानं चरितं पुराणमपि पुण्यम्।
बोधि समाधि निधानं बोधति बोधः समीचीनम्।।43।।

अर्थात् सम्यक् श्रुतज्ञान परमार्थ विषय का कथन करने वाले एक पुरुषाश्रित कथा और पुराण त्रेसठ शलाका पुरुषों से संबंधी कथा रूप पुण्यवर्धक तथा बोधि समाधि के निधान प्रथमानुयोग को जानता है।

चरित-जिसमें एक पुरुष से संबंध रखने वाली कथा होती है उसे चरित कहते हैं।

पुराण-जिसमें त्रेसठ शलाका पुरुषों से संबंध रखने वाली कथा होती है उसे पुराण कहते हैं।

चरित और पुराण दोनों ही प्रथमानुयोग कहे जाते हैं।

कथा–अनेक प्रवक्ताओं के विचार का विषय और उनके वाक्य सन्दर्भ का नाम कथा है। न्याय दीपिका में कथा के भेद कहे हैं।

विजिगीषु कथा–वादी और प्रतिवादी में अपने पक्ष को स्थापित करने के लिए जीत-हार होने तक जो परस्पर में वचन प्रवृत्ति या चर्चा होती है वह विजिगीषु कथा है।

वीतराग कथा–गुरु तथा शिष्य में तथा राग द्वेष रहित विशेष विद्वानों में तत्त्व के निर्णय होने तक जो चर्चा चलती है वह वीतराग कथा है। महापुराण, धवला एवं गोम्मटसार आदि ग्रंथों में कथा के अनेकभेद कहे हैं।

धर्म कथा–जिससे जीवों को स्वर्गादि अभ्युदय तथा मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है वह धर्म कथा है। उससे संबंध रखने वाली कथा सद्धर्म कथा कहलाती है।

सत्कथा–जिसमें धर्म का विशेष निरुपण होता है उसे सत्कथा कहते हैं। गोमटसार जीवकाण्ड में प्रथमानुयोग रूप शास्त्र को धर्म कथा कहा है। भगवती आराधना में कथा चार प्रकार की है।

1. आक्षेपणी कथा–तत्त्व का निरुपण करने वाली आक्षेपणी कथा है।

2. विक्षेपणी कथा– परमत की एकान्त दृष्टियों का शोधन करके स्व समय की स्थापना करने वाली विक्षेपणी कथा है।

3. संवेगनी कथा–धर्म पुण्य के फल का कथन करने वाली संवेगनी कथा है।

4. निर्वेगनी कथा–वैराग्य उत्पन्न करने वाली निर्वेगनी कथा है।

इस प्रकार प्रथमानुयोग में सत्पुरुषों के चरित आदि का कथन है। यह जिनवाणी का प्रमुख अंग है। कथा के माध्यम से वस्तु स्वरूप का प्रतिपादन करने वाला यह अंग प्राथमिक रूप से जीवों के लिए अत्यन्त हितकारी है। इसे सुनकर जीवों को बोधि समाधि की प्राप्ति होती है।

बोधि–जो पहले प्राप्त नहीं थी ऐसे सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति बोधि है।

समाधि–प्राप्त तत्त्वों को अच्छी तरह जानना अथवा धर्म और शुक्लध्यान को प्राप्त होना समाधि है।

प्रथमानुयोग इन दोनों का भण्डार होता है। इसका कथानक वास्तविक होता है कपोल कल्पित नहीं होता है।

यह पढ़ने, सुनने वाले जीवों की मानसिक पवित्रता का कारण होने से पुण्य रूप होता है। इसमें अन्य अनुयोगों का विषय भी आ जाता है। इसके कथानक रूप होने से बाल, वृद्ध, युवा, स्त्री आदि को सरलता से समझ में आ जाता है। पुण्य कथाओं को सुनकर संसारी जीव पाप से छूटकर पुण्य प्रसाधक धर्म कार्यों में प्रवृत्त होता है।

प्रथमानुयोग के अध्ययन से जीव जहाँ पुण्य पाप में समता धारण कर सकता है वहीं महापुरुषों के जीवन का पुनः-पुनः चिन्तनकर अपने में कर्म शत्रुओं को पराजित करने का सम्बल प्राप्त करता है।

जिस समय पाप का उदय आता है उस समय सम्यग्दृष्टि जीव महापुरुषों के चरित्र का स्मरण कर धैर्य धारण करता है और पुण्य के उदय में आने पर विचारता है कि चक्रवर्ती तीर्थंकर आदि समस्त वैभव का त्यागकर वीतरागी बन गये।

समय की प्रतिकूलता में श्री गजकुमार मुनि और अनुकूलता में श्रीभरत चक्रवर्ती आदि आत्म कल्याण से विचलित नहीं हुए। यह समीचीन दृष्टि प्रथमानुयोग के स्वाध्याय से ही संभव है। अतः संसार के दुःखों से बचने के लिए हमें प्रथमानुयोग का स्वाध्याय अवश्य करना चाहिए।

शताब्दि पहले लिखे गये पुराण एवं चरित आज वर्तमान में कठिन प्रतीत होने लगे हैं। इनके सरलीकरण की आवश्यकता थी।

इस महान कार्य को आचार्य वसुनंदी जी महाराज की आज्ञानुवर्ती शिष्या गणिनी आर्यिका गुरुनन्दनी माताजी ने सतियों के चरित्र को सरल सुबोध तरीके से सुरुचिपूर्ण भाषा में प्रतिपादित किया है।

माताजी वात्सल्यता की प्रतिमूर्ति, दया की भण्डार हैं। आपके अन्तःकरण में ज्ञान सरिता प्रवाहमान है। जिसका लाभ जन सामान्य को प्राप्त होता रहता है। आपकी सरलता, निरभिमानता एवं गुण ग्राहिता अनुकरणीय ही नहीं श्लांघनीय भी है।

यह कृति महासतियों के जीवन वृत्त को प्रकाशित करती है जिससे उनके संघर्षमय जीवन और उनके सफल परिणामों का प्रतिफल प्रतिभासित होता है। जो प्रत्येक युवती, स्वाध्यायशील महिलाओं आदि को रत्नत्रय की प्राप्ति के लिए प्रेरित कर सन्मार्ग पर गतिमान होने का मार्ग दर्शन करते हुए प्रेरणा देती है।

भौतिक चकाचौंध एवं फैशन के युग में इस प्रकार की कृतियाँ अत्यन्त आवश्यक हैं। इसे पढ़कर श्रावक-श्राविकायें अपना मानव जीवन सफल बनायें ऐसी मंगल भावना के साथ माता जी के श्री चरणों में वन्दामि निवेदित करता हूँ।

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ सं.
1.	शील का माहात्म्य	01-18
2.	साहस की जीत	19-33
3.	भक्ति की शक्ति	34-40
4.	राग से वैराग्य	41-49
5.	दृढ़ता से सफलता	50-55
6.	धैर्यता ही साधना	56-71
7.	कर्मों की रेखा	72-85
8.	पतिपरायणता	86-98
9.	सीता की सहनशीलता	99-118
10.	आरामशोभा की क्षमा	119-127
11.	तप का प्रभाव	128-135
12.	श्रेष्ठ समर्पण	136-147
13.	त्याग की प्रतिमूर्ति	148-182

शील का माहात्म्य

भरत क्षेत्र के आर्यखण्ड में कलिंग नामक देश है, जो धन-धान्य से समृद्ध प्राकृतिक शोभा का केन्द्र है। इस देश में बसन्तपुर नामक नगर है, इस नगर के निवासीजन देव तुल्य थे। यहाँ के महाराज का नाम वीरसेन था। ये उत्तम शासक, बड़े ही नीति निपुण और जैन धर्म के परम उपासक थे। इनकी महारानी का नाम रत्नमाला था, जो जिनधर्म परायण और पति की आज्ञाकारिणी थी।

एक समय यह दम्पत्ति शयनागार में सोये हुए थे, पिछली रात्रि में रानी ने उत्तम स्वप्नों को देखा। प्रातःकाल होने पर वह अलंकारों से विभूषित होकर अपनी सखियों के साथ महाराज के निकट पहुँची और महाराज से निवेदन किया, ''प्राणनाथ! आज रात को मैंने पूर्णमासी का चंद्रमा, सफेद हंस, शुक्ल वर्ण गजराज और मुँह में प्रवेश करता हुआ सिंह देखा। कृप्या आप इन स्वप्नों का फल बतायें।'' महाराज ने प्रसन्न होकर कहा–''तुम्हारे गर्भ से पुत्ररत्न की उत्पत्ति होगी। पूर्ण चंद्र दर्शन का फल है कि पुत्र-चौंसठ कलाओं का धारी होगा, सफेद हंस का फल है कि पुत्र की निर्मल कीर्ति दिगन्त व्यापिनी होगी, शुक्ल गजराज का फल है पुत्र गंभीर होगा, सिंह देखने का फल पुत्र प्रतापी और पराक्रमी होगा।''

इस प्रकार स्वप्नों के फल को सुनकर महारानी को सीमातीत आनंद हुआ। रानी ने उसी दिन गर्भ धारण किया। धीरे-धीरे नौ माह बीत गये और शुभ मुहूर्त में रानी ने पुत्र को जन्म दिया। यह शुभ समाचार सुनकर राजा को बड़ा हर्ष हुआ, बड़े उत्साह के साथ जन्मोत्सव मनाया गया और शुभ मुहूर्त में राजकुमार का नामकरण हुआ, नाम रखा 'चित्रसेन'।

राजकुमार बाल चंद्रमा की तरह दिनों-दिन बढ़ने लगे और बाल चेष्टा से व तोतली बोली से माता के मन को प्रसन्न करने लगे। इसी क्रम से राजकुमार ने कुमार अवस्था में पदार्पण किया। शुभ मुहूर्त में योग्य उपाध्याय के पास राजकुमार का विद्या अभ्यास आरम्भ कराया गया। राजकुमार की बुद्धि अत्यन्त तीक्ष्ण थी, थोड़े ही दिनों में धर्मशास्त्र, व्याकरण, काव्य, राजनीति आदि में निपुण हो गये। बालक की चतुराई को देखकर पिता को पूर्ण विश्वास हो गया कि यह राज्य शासन अच्छा चलायेगा।

राजकुमार चित्रसेन ने थोड़े ही दिनों में अपने उत्तम गुणों से प्रजा के हृदय में तथा अपनी विद्वता से विद्वानों के हृदय में और अपनी अलौकिक सुंदरता से स्त्रियों के हृदय में स्थान पा लिया। वे सर्व प्रिय और सर्वमान्य हो गये थे।

राजा वीरसेन के मंत्री का नाम बुद्धिसार था, वह बड़ा बुद्धिमान था। उसकी स्त्री का नाम बुद्धिमती व पुत्र का नाम रत्नसार था। यह रत्नसार बहुत ही विनयी था। किसी समय मंत्रीपुत्र रत्नसार की चित्रसेन राजकुमार के साथ मैत्री हो गयी। हर वक्त दोनों का हृदय एक रहता था।

जब कभी राजकुमार नगर की गलियों में घूमने को निकलता था तो स्त्रियों के झुंड के झुंड उसे देखकर पागल से हो जाते थे, क्योंकि राजकुमार अत्यधिक सुंदर थे। उनके अनोखे रूप को देखकर स्त्रियाँ अपनी सुध-बुध भूल जाती थीं, गले का हार कमर में लटका लेतीं, करधनी को गले में पहन लेतीं आदि-आदि। नवल नारियों को ही नहीं, बड़ी-बूढ़ी स्त्रियों के मन को भी उसने चंचल कर दिया, वे भी उसे देखने उकताने लगतीं।

परंतु राजकुमार चित्रसेन सुशील व जितेन्द्रिय था। सच तो यह है कि स्त्रियाँ उस की तरफ देखती थीं पर वह उनकी तरफ नहीं देखता था। नगर के लोगों को कुलीन नैतिक चारित्र की निर्बलता देख दुःख हुआ, ऐसा होना अनिष्ट समझा गया। लोगों के मन में क्षोभातंक उत्पन्न हो गया।

सभी लोग राजा के पास गये, सिंहासन पर बैठे हुये राजा को प्रणाम कर नीचे मुँह करके बैठ गये। आगत मनुष्यों के आने का कारण राजा की समझ में नहीं आया, इसलिए राजा ने आने का कारण पूछा। राजा के पूछने पर उन सबका मुखिया कहने लगा–''राजन्! हम आने का कारण बतलाते हैं। जिस प्रजा का आप शासन करते हैं वह दुःखी हो, ऐसा हो ही नहीं सकता। पर दीनबंधु! हम लोगों का एक निवेदन है, कहते हुए लज्जा आती है, पर धर्मावतार! प्रजा पुत्र के समान होती है। इसलिये हम लोग जो कुछ भी वास्तविक घटना है, उसे जैसी की तैसी कह देना उचित समझते हैं।''

''आपके पुत्र गुणवान और सुशील हैं, यह सत्य है परंतु वह साक्षात् कामदेव के अवतार भी हैं, यह भी सच है और कारण है कि वे जब नगर में घूमते हैं तब उनको देखने मात्र से स्त्रियों के मन ठिकाने पर नहीं रहते, हम लोगों के मना करने पर भी वह नहीं मानतीं। सच तो यह है कि मनमोहनी सूरत को देखकर वे कामान्ध हो जाती हैं। ऐसा होने से हम लोगों को अनिष्ट होने की संभावना हो जाती है, इसलिए महाराज! राजकुमार से रक्षा का कोई प्रयत्न किया जाये यही हमारी प्रार्थना है।''

यह सुनकर राजा विचारने लगा, ''बड़ी कठिन समस्या है, जिस पुत्र का हमने उत्तम रीति से पालन किया, जिससे हमें अपनी वंश वृद्धि की आशा है, उसका निग्रह!'' राजा इस विषय में बड़ी देर तक मन में तर्क वितर्क करता रहा और अंत में

उसने यह निश्चय किया कि ''मैं ऐसा कोई काम नहीं करना चाहता जिससे प्रजा को कष्ट हो। उससे हमारा कोई वास्ता नहीं, जिससे प्रजा कष्ट भोगे। राजा की सत्ता प्रजा के अधीन है।'' धन्य हैं वे राजन् जो इस प्रकार विचार कर रहे थे। राजा राजकुमार की करतूत से नाराज भी हो गया था।

नगर से घूमकर पिता को प्रणाम करने के लिए राजकुमार राजदरबार में आया और विनय से पिता को नमस्कार कर पास में बैठ गया। राजा ने कहा–''तुम्हारे विषय में नागरिक लोगों से विलक्षण बात सुनी, वे तुम्हारा उलाहना देने आये थे। तुम्हारे लिये अब यही उचित है कि तुम हमारे राज्य से अति शीघ्र चले जाओ।'' यह सुन भोला चित्रसेन उठ बैठा और पिता को अंतिम प्रणाम कर माता के पास गया, माता के पैरों पर सिर रख दिया और पिता की आज्ञा माता को सुनायी। सुनते ही माता के सिर पर वज्र-सा टूट पड़ा, पर राजा की आज्ञा अनिवार्य थी। माता को भी अंतिम प्रणाम कर चित्रसेन चल दिया। माता ने चित्रसेन को जाते समय सात रत्न और रास्ते में खाने के लिए कुछ कलेवा दे दिया।

माता से विदा होकर और हाथ में तलवार लेकर चित्रसेन अपने मित्र रत्नसार के घर गया। राजकुमार को आया देख रत्नसार को बड़ा आनंद हुआ। रत्नसार चित्रसेन के मुँह की उदासीनता से बात को ताड़ गया। उसने पूछा–''मित्र! आप आज इस तरफ कैसे आये? जो भी बात हो मुझसे कह दो, क्योंकि नीतिकारों का भी कहना है कि–''विश्वासपात्र मित्र, गुणी सेवक, प्रेमवती स्त्री और सहृदय स्वामी से अपने दुःख को प्रगटकर मनुष्य को सुखी होना चाहिए।''

रत्नसार की बात सुनकर चित्रसेन ने सब वृत्तांत कह डाला और अंत में कहा–''मित्र रत्नसार! मैं जब तक विदेश से न लौटूँ तब तक तुम सुख से यहीं रहना, बस मैं यही कहने आया हूँ। क्योंकि मेरे भाग्य में जो बदा है सो होगा ही, तुम मेरे लिए दुःखी मत होना।'' यह सुनकर रत्नसार को बहुत दुःख हुआ, वह कहने लगा–''मित्र! भला बिना प्राणों के भी कहीं शरीर रह सकता है? तुम हमारे प्राण हो, चाहे सुख हो या दुःख, हम मिलकर के ही भोगेंगे।'' इस प्रकार दोनों मित्र विदेश को चले गए।

पुत्र को देश निकाला देकर राजा रनवास में गए। रानी तो पहले ही शोकातुर हो रही थी, राजा को देखकर वह और रोने लगी। राजा का भी धैर्य टूट गया, वह भी रोने लगा। रानी तो बेहोश हो गयी, शीतोपचार से ठीक किया गया, परन्तु वह पुत्र का वियोग नहीं भूली। ''हाय पुत्र! कहाँ चले गए? तेरे बिना कैसे रहूँ?'' इस प्रकार विलाप करके हृदय को पत्थर का बनाकर महारानी ने पुत्र वियोग सहा।

इधर चित्रसेन और रत्नसार दोनों मित्र मार्ग की प्राकृतिक शोभा, अनेक पक्षीगण आदि को देखकर प्रसन्न होते थे, रास्ते की थकावट दूर करते थे। इस तरह चलते-चलते दोनों सूर्यास्त के समय एक बड़े जंगल में पहुँचे, इसलिए वे वहीं ठहर गए। दोनों थके हुए थे, चित्रसेन वृक्ष के नीचे सो गया, पर रत्नसार जागता रहा। उसने कुछ दूरी पर किन्नर जाति के देवों का मधुर गान सुना। उसे अचंभा हुआ और उसने राजकुमार को जगाया, उसने भी मधुर ध्वनि सुनी। राजकुमार बोला–''रत्नसार! तुम यहीं रहो, मैं इसका पता लगाकर आता हूँ।'' रत्नसार कहने लगा–''जंगल बड़ा भयानक है, ऐसी काली रात में तुम्हारा अकेले जाना उचित नहीं है।'' राजकुमार बोला–''सच है, पर मैं क्षत्रिय वीर बालक हूँ, मुझे भय नहीं लगता।'' ऐसा कहकर राजकुमार जिधर से आवाज आ रही थी उसी ओर चला। रत्नसार भी पीछे आ गया। कुछ दूरी पर जिन चैत्यालय दिखायी दिया, जहाँ चारों निकायों के देव थे। अष्टाह्निका महापर्व का समय था, इन्द्रादिक देव महापूजा कर रहे थे।

चैत्यालय की अद्‌भुत शोभा देखकर दोनों मित्र बहुत प्रसन्न हुये, क्रमशः देव-शास्त्र-गुरु को नमस्कार करके वहीं बैठ गये। वहीं पर मण्डप में एक तरफ एक सुंदरी का शुभ लक्षण युक्त चित्रपट लगा था, उसे देखते ही चित्रसेन मोहित हो गया। उसे मूर्च्छा आ गयी और वह बेहोश हो गया। रत्नसार ने शीतोपचार किया, जैसे-तैसे उसे होश में लाया। रत्नसार ने मूर्च्छा का कारण पूछा। राजकुमार बोला–''जो सामने चित्रपट लटक रहा है, उसमें जिस कन्या का चित्र है, वह मेरे दिल में समा गयी है। रत्नसार! तुम यह सच समझना कि यदि यह कन्या मुझे मिल गयी तो ही मेरा जीना संभव है अन्यथा नहीं।''

यह सुनकर रत्नसार को बड़ी चिंता हुयी, ''मुश्किल काम कैसे हो सकता है? न मालूम किसने यह चित्र किस प्रयोजन से बनाया है और किसका है? यह कोई मनुष्य कन्या है या देवकन्या, अथवा विद्याधर कुमारी है और अभी जीवित है या नहीं। राजकुमार ने स्पष्ट कह दिया कि इसके बिना मैं जी नहीं सकता, क्या करूँ? इस कन्या का मिलना आग को ठंडा करने, पत्थर पर कमल पैदा करने और आकाश में पुष्प पैदा करने से कम नहीं है।'' रत्नसार इस प्रकार तर्क-वितर्क कर रहा था।

पुण्योदय से अनंत गुणों के भण्डार श्रुतसागर मुनिराज का शुभागमन हुआ और मुनिराज की धर्म सभा लगी। चित्रसेन और रत्नसार भी वहाँ गये और वंदना कर बैठ गये। धर्मोपदेश के उपरांत रत्नसार ने विनयपूर्वक प्रश्न किया–''मुनिराज! यह चित्रपट किसने, किस निमित्त से बनाया है? दया कर इसका वृत्तांत कहिये।'' मुनिराज बोले–''वत्स! सुनो मैं इसका सब वृत्तांत कहता हूँ।''

इसी भरतक्षेत्र में कांचनपुर नामक एक विशाल नगर है। उसी नगर में चित्रकला में प्रवीण गुणाधार नामक एक चित्रकार रहता है। उसकी गुणश्री नामक स्त्री व क्रमशः धनदेव, धनसार, गुणदेव, गुणाकर और गुणसागर नामक चित्रविद्या में प्रसिद्ध पाँच पुत्र हैं। सभी भाइयों में गुणसागर सचमुच गुणों का सागर ही है और जैन धर्मानुरागी है। उसकी पत्नी का नाम सत्यवती है। गुणसागर चित्रकला से लोगों को प्रसन्न करता हुआ सुख से रहता है।

इसी भरतक्षेत्र में एक रत्नपुर नामक नगर है। इसमें त्रैलोक्यतिलक नामक एक जिन चैत्यालय है, जिसमें शांतिनाथ भगवान की बहुत मनोज्ञ प्रतिमा है। यहाँ का राजा पद्मरथ व रानी का नाम पद्मश्री है। इनके पद्मावती नामक सर्वगुण सम्पन्न एक कन्या है। उसे देखने मात्र से लोगों का मन आतुर हो जाता है। वह साक्षात् लक्ष्मी है। उसकी यौवन अवस्था देखकर राजा पद्मरथ को उसकी शादी की चिंता हुयी। उसने निश्चय किया कि योग्य वर के मिलने पर राजकुमारी का विवाह कर देना चाहिए।

देश-देशांतरों से अनेक राजकुमारों के चित्रपट मँगवाये और पद्मावती को दिखाये परंतु उसे कोई भी राजकुमार पसंद नहीं आया। प्रत्युत पुरुषों से उसे एक तरह का बैर-सा हो गया।

कुछ दिनों बाद गुणसागर चित्रकार प्रियजनों के साथ शांतिनाथ भगवान की वंदना के लिये रत्नपुर आया। वह वहाँ भक्ति से पूजा, अभिषेक आदि करने लगा। इतने में ही पुरुष मात्र से द्वेष रखने वाली पद्मावती कुछ सहेलियों के साथ, हाथ में तलवार लिये, सिंह के समान गरजती हुयी वहाँ आयी। उसका भयंकर रूप देखकर लोग इधर-उधर भागने लगे। क्या है? क्या है? कोलाहल मच गया पर गुणसागर नासादृष्टि लगाये ध्यान में मग्न था, कोलाहल सुनकर भी विचलित नहीं हुआ। ध्यान कर चुकने के बाद गुणसागर की दृष्टि राजकुमारी पर पड़ी। यद्यपि वह पवित्र हृदय था पर कन्या पर मुग्ध हो गया।

जब गुणसागर को राजकुमारी का सब वृत्तांत मालूम हुआ तो उसने विचारा कि 'राजकुमारी ने पुरुषों से आजन्म बैर ठानकर अच्छा नहीं किया। कहाँ तो महादुर्लभ सौंदर्य और कहाँ पुरुषों से द्वेष? छिः छिः! सब व्यर्थ है।' गुणसागर इसी विचार में लीन था तभी राजकुमारी वंदना करके महल में चली गयी। गुणसागर भी सपरिवार घर लौट आया। उसी गुणसागर ने उस कन्या का यह हूबहू चित्रपट बनाकर प्रसिद्ध-प्रसिद्ध स्थानों में एक-एक चित्रपट लगा दिया। यही सब इस चित्रपट का वृत्तांत है।

चित्र लिखित राजकुमारी का हाल सुनकर राजकुमार फिर मूर्च्छित हो गया। रत्नसार उसे फिर से होश में लाया। रत्नसार ने फिर उन श्रुतकेवली से पूछा–''मुनिराज! दयाकर यह और बतायें कि यह हमारा मित्र इस चित्रपट को देखकर बार-बार मूर्च्छित क्यों हो रहा है?'' मुनिराज बोले, सुनो–

इसी भरतक्षेत्र में द्रविड़ देश है, उसमें चम्पा नामक बड़ी रमणीय नगरी है। उसी के पास परम सुंदर चम्पक वन है, उसमें निर्मल जल से भरा सरोवर है।

एक दिन इसी सरोवर के निकट एक साहूकार व्यापारी बहुत व्यक्तियों के साथ आया। उसने सरोवर के जल से नहाकर भगवान की पूजा की, रसोई तैयार की और सरोवर के किनारे खड़े होकर अतिथि की प्रतिक्षा करने लगा। पुण्योदय से मासोपवासी मुनिराज का शुभागमन हुआ, साहूकार ने मुनिराज का पड़गाहन कर नवधाभक्ति से आहार दिया। आहार दान के माहात्म्य से पंच आश्चर्य हुये। यह सब देख लोगों को बड़ा आनंद हुआ।

आहार दान के समय एक वृक्ष पर हंस-हंसनी बैठे थे, उन्होंने हृदय से आहार दान की अनुमोदना की। धर्म स्नेही बंधुओं! ''दान देने से जितना पुण्य होता है, दान की अनुमोदना करने से भी उतना ही पुण्य होता है।'' मुनि को आहार देने व अनुमोदन से उस साहूकार और हंस दम्पति को बराबर पुण्य हुआ।

आहार लेकर मुनि विहार कर गये, पर हंस दम्पति वहीं बैठे रहे। हंसनी गर्भवती थी, उसने उसी वन में एक विशाल वट वृक्ष पर पुत्र उत्पन्न किया। दोनों पति-पत्नी आनंद से दिन बिता रहे थे। बहुत दिन बीत गए पर मालूम नहीं पड़ा।

उनके अशुभ कर्मोदय से एक दिन उस वन में आग लग गयी, आग की लपटें बढ़ती हुयी ठीक वहाँ तक पहुँच गयी, जहाँ हंस कुल निवास करता था। हंसनी घबराकर बोली–''प्राणनाथ! जैसे बने बच्चे की रक्षा करनी चाहिए। जाओ, कहीं से पानी लाओ।'' हंस पानी लेने गया, हंसनी बच्चे के पास रही। हंस बेचारा आ ही नहीं पाया और आग बढ़ते-बढ़ते बच्चे के घोंसले तक पहुँच गयी। बेचारी हंसनी विचारने लगी, ''न मालूम वे कहाँ चले गये, अभी तक नहीं आये, और वे ऐसी विपदा में आते ही क्यों? सचमुच पुरुष जाति मौके पर बड़ी कठोर हो जाती है। ऐसी हालत में, इस मरणासन्न दशा में, वास्तविक प्रेम शून्य। वह कायर कहीं चल दिया, ऐसे पौरुष को शतबार-सहस्रबार धिक्कार! इन पापियों का मुँह भी देखने लायक नहीं'' और देखते-देखते अग्नि ने हंसनी और उसके बच्चे को जला डाला। सो हे रत्नसार! मुनि के आहार दान की अनुमोदना से हंसनी ने मनुष्य भव पाया और वह रत्नपुर नगर में राजा पद्मरथ की पद्मावती कन्या हुयी। और सुनो–

हंस तत्काल पानी लेकर उसके पास आया, उसने अपनी स्त्री और बच्चे को मरा पाया। हंस को दोनों के मरने का बड़ा दु:ख हुआ, अतिशय शोक के कारण थोड़ी देर में हंस भी मर गया और दान की अनुमोदना से वह हंस चित्रसेन राजकुमार हुआ। सत्पात्र के दान से सब सुलभ हो जाता है।

मुनिराज के वचन सुनकर राजकुमार को जातिस्मरण हो गया, पूर्व जन्म की सारी बातें याद आने लगीं। राजकुमार ने मुनिराज को प्रणाम कर विनय से कहा–''भगवन्! दया कर इतना और बतलाइये कि उस राजकुमारी की प्राप्ति मुझे कैसे होगी?'' मुनिराज ने कहा–''वह राजकुमारी तो पूर्व जन्म के बैर से पुरुषों की निंदा करती है, उनका मुँह भी नहीं देखती।'' राजकुमार ने पूछा–''राजकुमारी को पुरुषों से इतना द्वेष क्यों है?'' मुनिराज ने कहा–''पूर्व जन्म में जब वह हंसनी थी, उसका पति हंस पानी लेकर वापस नहीं आ पाया था कि इतने में वन की अग्नि से हंसनी और उसका बच्चा तड़फ-तड़फ कर मर गये। उसी समय से हंसनी को पुरुषों से द्वेष हो गया और अभी तक वह पुरुषों का मुँह तक नहीं देखती। वह अभी तक कन्या है, इस बात का उसके माता-पिता को बड़ा कष्ट है।''

''हाँ, एक उपाय है और वह यह कि यदि उसको पूर्व जन्म का सब वृत्तांत एक चित्रपट पर लिखकर किसी तरह दिखाया जाये तो उसे अवश्य ही जातिस्मरण हो जायेगा और वह पुरुषों से द्वेष करना छोड़ देगी व विवाह करने को भी तैयार हो जायेगी।''

उपाय सुनकर चित्रसेन को बड़ी प्रसन्नता हुयी। मुनिराज को नमस्कार कर दोनों मित्र रत्नपुर की ओर चले और नगर का मुख्य द्वार बंद होने से वहीं टिक कर सो गये। उस दरवाजे के ऊपर एक रसोईघर था और उसमें एक धनद नामक यक्ष रहता था, वह बड़ा सम्पत्तिशाली था। अनुचर देव और देवांगनाओं से वह घिरा रहता था। हर महीने की कृष्ण चतुर्दशी की रात व्यन्तर जाति के देव यक्ष के पास आकर आमोद प्रमोद करते थे। उस दिन भी चतुर्दशी थी, नियमानुसार संगीत प्रारम्भ हुआ। संगीत की मधुर ध्वनि चित्रसेन के कानों तक पहुँची, उसकी निद्रा भंग हुयी। वह हाथ में तलवार लेकर चला और पास ही में यक्षेन्द्र की सभा को देखकर कौतूहल वश सभा में जा बैठा। राजकुमार की सुंदरता देखकर सारे देवगण आश्चर्य में पड़ गये और कहने लगे–''क्या यह कोई देव है या कामदेव है? कुछ समझ नहीं आता।'' इतने में ही धनंजय यक्ष बोला–''कोई भी हो वह हमारा अतिथि है।'' सब देवों ने मिलकर राजकुमार का बहुत आतिथ्य सत्कार किया। उनका नायक धनद यक्षेन्द्र भी राजकुमार को देखकर बहुत खुश हुआ। कुछ सोचकर वह बोला–''राजकुमार! अपनी इच्छानुसार वर माँगो।'' राजकुमार ने बड़ी विनम्रता से कहा–''यक्षेन्द्र! आपके दर्शन से मेरा जन्म

सफल हो गया, अब मैं और कुछ नहीं चाहता।'' यक्षेन्द्र ने राजकुमार की इच्छा न रहने पर भी उसे वरदान दिया कि–'संगरे विजयी भव' तुम युद्ध में विजयी होगे। राजकुमार आशीर्वाद पाकर प्रसन्न हुआ और लौटकर सारा हाल मित्र रत्नसार को सुनाया। सवेरा हो गया, दोनों वहाँ से चलकर बीच नगर में आये। इसी समय राजा पद्मरथ ने राजकुमारी के विवाह के लिए घोषणा करवायी कि जो मेरी कन्या का पुरुषों से द्वेष करना मिटा देगा, उसी के साथ अपनी कन्या का विवाह करूँगा और अपना आधा राज्य भी उसे दूँगा।

घोषणा सुनकर राजकुमार ने कहा–''मित्र! देखो, जैसा मुनिराज से सुना था वही बात है। जिस कार्य के लिये हम आये हैं, उसकी सिद्धि अवश्य होगी। अब वह चित्रपट तैयार करा लेना चाहिए।'' दोनों चित्रकार के पास गए और पूर्व जन्म की घटना का चित्रपट तैयार कराया। चित्रपट को लेकर, गुप्त वेष बनाकर वे दोनों नगर में गाते हुए घूमने लगे। उनका गाना मधुर तो था ही परंतु उसमें पूर्व जन्म की घटना के भावों का भी समावेश था।

राजकुमार की इस गायन-चातुरी की बात रत्नपुर में फैल गयी। लोग उसे उसका गाना सुनने के लिए घेरे रहते थे। पद्मावती ने भी उसकी संगीतकला की प्रशंसा सुनी, इससे पद्मावती ने भी उस गायक को देखने की इच्छा की और उन दोनों को बुलवाया। वे दोनों आये और वह चित्रपट दिखलाया, उसे देखते ही राजकुमारी को चित्रसेन से अनुराग हो गया। राजकुमारी की दशा देखकर उसकी सहेलियाँ एक दूसरे को देखने लगीं और उन्हें निश्चय हो गया कि यह महापुरुष राजकुमारी के पुरुष द्वेष को मिटायेगा।

राजकुमारी ने उस चित्रपट को बड़ी उत्सुकता से देखा। वही बरगद का पेड़ और उसी पेड़ के नीचे आग में जलकर मरी हुयी हंसनी और बच्चे का होना, चोंच में पानी लाकर हंस का आना, हंसनी और बच्चे का मरण देखकर शोकातुर हो हंस का प्राण त्याग, यह सब देखकर राजकुमारी के हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ा। चित्रपट देखते ही वह मूर्च्छित हो गयी और होश आने पर एक-एक करके पूर्व जन्म की सब बातें उसे याद आने लगीं। अब उसे निश्चय हो गया कि चित्रसेन पूर्व जन्म का हंस है, मैं हंसनी हूँ, अपने बच्चे के, बिना पानी के आग में जलकर मर जाने से तथा हंस के समय पर न आने के कारण ही पूर्वजन्म की प्रबल वासना से मैं पुरुषों से द्वेष किया करती थी। यह सब बातें अपनी सहेलियों को भी उसने बतायीं।

राजकुमार ताड़ गया कि इसे जातिस्मरण हो गया है। कुछ विचार कर वे दोनों मित्र वहाँ से चले गये। दोनों को वहाँ न पाकर राजकुमारी बहुत दु:खी हुयी और उसने

स्पष्ट कह दिया कि, ''किसी भी तरह उनका पता लगाओ, यदि वे न मिले तो मेरा मरण समझो।'' सखियों ने उसे बहुत समझा-बुझाकर शांत किया, उन्होंने कहा–''आप निश्चय समझें, हम उन को ढूंढने में किसी बात की कसर नहीं रखेंगी।''

उसी समय सहेलियाँ पिता पद्मरथ के पास गयीं और सब वृत्तांत ज्यों का त्यों सुना दिया। सब सुनकर पद्मरथ बहुत खुश हुए और कहा–''पद्मावती को धीरज बंधाओ, हम उनकी खोज करके उन्हें बुलवा लेते हैं।'' तत्काल महाराज ने पद्मावती के स्वयंवर में आने के लिए निमंत्रण भेजे। निमंत्रण पाते ही देश-देशांतरों से राजा, राजकुमार आदि उपस्थित हो गए। पद्मरथ ने बड़ा ही सुंदर स्वयंवर मण्डप तैयार कराया। राजागण मण्डप की शोभा देखते हुए अपने-अपने सिंहासन पर आरुढ़ हो गये। पश्चात् पद्मरथ ने स्वयंवर मंडप में एक विशाल देवरक्षित धनुष लाकर रखा और उपस्थित सभ्यों को लक्ष्य करके कहा–''आप में से जो कोई भी इस धनुष को चढ़ायेगा, वही मेरी रूपवती कन्या का पति होगा।'' इतना कहकर महाराज पद्मरथ चुप हो गये।

सब राजाओं को अपनी धनुष विद्या का बड़ा गर्व था, वे कहने लगे–''बस, इस साधारण धनुष को चढ़ाने की बात है।'' इधर राजकुमारी भी मनोज्ञ वेष धारण कर सभा मंडप में आयी। धात्री ने पद्मावती को उपस्थित राजाओं का परिचय कराया और यह भी कह दिया कि, ''राजकुमारी! इनमें से जो कोई भी तेजस्वी राजा इस धनुष को चढ़ाये, उसी के गले में वरमाला डाल देना।'' राजकुमारी अपने नियत स्थान पर जा बैठी।

अब धनुष चढ़ाने की बारी आयी। पहले लाट देश के राजा धनुष के पास आते ही अंधे हो गये। पश्चात् कर्ण देश के राजा आये, उन्हें धनुष के पास नाग दिखा और भय से वह भी लौट आये। इसी प्रकार सभी राजा भागने लगे, कहने लगे–''यह धनुष नहीं महाकाल है।'' इधर राजा पद्मरथ भी शोकातुर हुए, सोचने लगे कि 'मेरी बेटी को अविवाहित ही रहना पड़ेगा।' पद्मावती को भी गहरी चोट लगी, उसने सोचा मेरे अशुभ कर्म के उदय से स्वयंवर निष्फल हुआ है।

इस स्वयंवर मंडप में चित्रसेन मित्र रत्नसार के साथ गुप्त वेष में बैठा था, यह सब देखकर मित्र से बोला–''देखा तमाशा? मुझे आशा नहीं पूर्ण विश्वास है कि मैं ये धनुष चढ़ा दूँगा, जिससे कार्यसिद्धि अवश्य होगी।'' रत्नसार ने उसे प्रोत्साहित किया। राजकुमार धनुष के पास गया और पंच परमेष्ठी को नमस्कार करके धनुष चढ़ा दिया। धनुष के चढ़ाने से समुद्र के समान भयंकर गर्जना हुयी, जीव जंतुओं में बड़ा कोलाहल मचा। यह सब देखकर पद्मावती को बहुत प्रसन्नता हुयी। उसने चित्रसेन के

गले में माला डाल दी। परंतु यह अन्य राजाओं को अच्छा नहीं लगा, कहने लगे–''इसकी जाति, कुल आदि का पता नहीं, ऐसा नहीं होना चाहिए।'' सब राजा चित्रसेन से लड़ने को तैयार हो गए। इस तरफ मात्र चित्रसेन और उसका मित्र रत्नसार था। धनद यक्षेन्द्र ने युद्ध में विजयी होने का आशीर्वाद दिया था, इसलिए रत्नसार के अतिरिक्त चित्रसेन के पक्ष में वह भी था। उस तरफ बहुत बड़ी सेना थी। भयंकर संग्राम मचा। चित्रसेन भी सिंह के समान गरजता हुआ उन सभी पर टूट पड़ा। उसने ऐसा पराक्रम दिखाया कि राजाओं और उनकी सेनाओं के छक्के छूट गये। थोड़ी ही देर में जिन्हें जिधर से रास्ता मिला वे उधर से भाग निकले। सभी राजाओं की हार और चित्रसेन की बड़े महत्व की जीत हुयी।

महाराज पद्मरथ भी यह सब देख रहे थे, इतने में ही एक भाट ने आकर चित्रसेन की विरुदावली का वर्णन इस प्रकार किया–''बसंतपुर के राजा वीरसेन के वीर पुत्र युवराज चित्रसेन की जय हो, आपके प्रताप का विस्तार चारों ओर फैले।'' इस प्रकार परिचय सुन महाराज के हर्ष की सीमा नहीं रही, सभी राजाओं को बुलाकर चित्रसेन का परिचय दिया। सबने कहा–''सच है, क्षत्रियों को छोड़कर ऐसा बल-पराक्रम और हो ही कहाँ सकता है!'' सबने युवराज से क्षमा माँगी। राजा पद्मरथ ने बड़ी प्रसन्नता से, बड़े समारोह के साथ राजकुमारी पद्मावती का युवराज चित्रसेन के साथ विवाह कराया। नगर के लोगों को भी बड़ा आनंद आया, यथोचित दान सम्मान आदि किया गया।

राजा पद्मरथ ने चित्रसेन को आधा राज्य, रहने के लिए एक बड़ा भवन आदि दिया। उसी भवन में चित्रसेन और पद्मावती रहते थे। दोनों का पूर्वजन्म संबंध तो था ही, जातिस्मरण होने से दोनों में असाधारण प्रेम हो गया। संसार के सुखों का अनुभव करते हुए दोनों का बहुत काल सुख से बीता।

धर्मस्नेही बंधुओं! यह सब पुण्य का फल है। चित्रसेन की पहले क्या दशा थी, जंगल में मारा-मारा फिरता था परंतु पुण्योदय से उसे राजकुमारी और राज्य की प्राप्ति हुयी, संसार में उसकी प्रतिष्ठा हुयी, इसलिए मनुष्य को हर समय पुण्य कार्य करना चाहिए।

चित्रसेन ने बहुत समय ससुराल में बिताया। एक दिन वह रात में अकस्मात् जाग पड़ा और विचारने लगा–''यहाँ सब कुछ अनुकूलता है परंतु यहाँ मेरे माता-पिता को कोई जानता तक नहीं, यहाँ मेरी प्रसिद्धि श्वसुर के नाम से है। ऐसी ख्याति लाभ प्राप्त करना नराधमों का काम है। मैं तो अब अपने पिता के घर जाऊँगा।''

इसी प्रकार विचार करते-करते सवेरा हो गया, उसी समय उसने रत्नसार को बुलाया और कहा–''मित्र! अब मैं यहाँ नहीं रहूँगा, समर्थ पुरुषों का श्वसुर के घर

रहना लज्जा की बात है। नीतिकार ठीक कहते हैं कि, 'उत्तम पुरुष तो अपने गुणों से ही संसार में मान्य होते हैं, पिता के नाम से प्रसिद्धी पाने वाले मध्यम होते हैं, मामा के नाम से प्रसिद्ध पुरुषों की गणना अधम श्रेणी में, परंतु श्वसुर के नाम से विख्यात पुरुषों की अधम से भी अधम पुरुषों में होती है।' इसलिए रत्नसार अब यहाँ से चलना चाहिए।'' रत्नसार ने कहा–''बहुत ठीक।'' निश्चय किया कि महाराज से आज्ञा लेकर बसंतपुर चलें।

तदनुसार रत्नसार राजा पद्मरथ के पास गया, विनम्रता से कहा–''यहाँ पर बहुत समय हो गया है, अब माता-पिता को देखने की उत्कृष्ट इच्छा है, कृपाकर अब हमें जाने की आज्ञा दीजिए।'' यह सुनकर महाराज को दु:ख हुआ परंतु रत्नसार का कहना ठीक था, दूसरा कोई उपाय नहीं था। महाराज ने रत्नसार का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।

चित्रसेन के जाने की तैयारी होने लगी। पद्मरथ ने बेशकीमती वस्त्र और अपार धन आदि दिया और बेटी से कहा कि, सास-श्वसुर की सेवा करना, पति की आज्ञा का पालन करना, सुख-दु:ख में साथी रहना यही पतिव्रता गृहिणी का कर्त्तव्य है। इसी से दोनों कुलों का यश बढ़ेगा। इत्यादि शिक्षा देकर बड़े सम्मान के साथ राजकुमारी को विदा किया।

राजकुमार ने बड़े दल-बल के साथ प्रयाण किया और चलते-चलते एक सघन वन में डेरा डाला। एक बरगद के पेड़ के नीचे राजकुमार के ठहरने की व्यवस्था की गयी, उसी पेड़ पर गोमुख यक्ष अपनी यक्षी चक्रेश्वरी के साथ रहता था। प्रसंगवश यक्षी ने यक्ष से पूछा–''प्राणनाथ! यह राजकुमार बड़ा धीर, वीर और पुण्यात्मा मालूम पड़ता है। इसके पिता वीरसेन इसको राज्य देंगे या नहीं?'' यक्ष ने विचार करके कहा–''यह राजकुमार माता-पिता को छोड़कर चला गया था, तब इसके वियोग में माता की मृत्यु हो गयी। माता की मृत्यु के बाद वीरसेन महाराज ने दूसरा विवाह कर लिया। उस स्त्री का नाम विमला है, उसके एक पुत्र भी है, जिसका नाम गुणसेन है। विमला ने हर तरह से राजा को काबू में कर रखा है। विमला को चित्रसेन के चले जाने की बात मालूम थी, इसलिए उसे संदेह भी था कि यदि वह आ जायेगा तो महाराज अपना राज्य उसी को देंगे। इसीलिए उसने महाराज से पहले ही प्रतिज्ञा करा ली थी कि आपके बाद राज्य का उत्तराधिकारी गुणसेन होगा। विमला को इतने ही से संतोष न हुआ। इसलिए चित्रसेन के यहाँ आने पर महाराज को उसे मारने के लिए राजी कर लिया है। उसके मारने के तीन उपाय रचे हैं, घोड़े से गिराकर, नगर का दरवाजा गिराकर और विष के लड्डू खिलाकर। यदि इन तीन उपायों से चित्रसेन न

मरा तो उसका राज्याभिषेक होगा। पश्चात् यदि चित्रसेन अपने पुण्योदय से सर्प के द्वारा डसे जाने से बच गया तो वह अवश्य ही सार्वभौमिक राजा बनकर चिरकाल तक राज्य शासन करेगा। देखो प्रिय, रत्नसार इन सब बातों को सुन रहा है, यदि वह इन बातों को किसी से कहेगा तो वह पत्थर का हो जायेगा।''

यक्ष की बातें रत्नसार ने सुन ली और वह अपने मित्र की रक्षा करने में सावधान हो गया। सवेरा हुआ और राजकुमार दल-बल के साथ चलकर बसंतपुर के निकट जा पहुँचा। महाराज वीरसेन को पुत्र आगमन की खबर मिली और वह सेना लेकर पुत्र की आगवानी के लिए चला, साथ में वह चपल घोड़ा भी लाया जिस पर बैठाकर चित्रसेन के प्राण लेने की बात थी। चित्रसेन ने पिता को देखकर, घोड़े से उतरकर पापी पिता के चरणों में मस्तक रख दिया।

पिता ने भी कृत्रिम प्यार से आलिंगन किया, कुशल पूछी और राज्य से निकालने का पश्चाताप किया। पर पिता के व्यवहार में मायाचार और कपट था। शिष्टाचार के बाद पिता ने पुत्र को चढ़ने के लिए उस घोड़े को दिया। रत्नसार पहले से तैयार था, उसने उस दुष्ट घोड़े को इस सफाई से बदला कि राजा को पता भी नहीं पड़ा। ठीक वैसा ही दूसरा घोड़ा लाकर कुमार के सामने खड़ा कर दिया। कुमार उस पर सवार होकर गाजे-बाजे के साथ आगे बढ़ा। वीरसेन का पहला प्रयत्न निष्फल हुआ। कुमार अब उस नगर के द्वार पर आया जिसे गिराकर मारने का उपाय रचा गया था। ठीक उस दरवाजे के पास आने पर रत्नसार ने घोड़े को एक चाबुक लगाया कि घोड़ा इस सफाई से निकल गया जिससे वह द्वार कुमार पर न गिरा। इस बार भी कुमार की रक्षा हुयी। कुमार नगर की शोभा देखता हुआ पद्मावती के साथ राजमहल में गया और दोनों ने उपमाता विमला की चरण वंदना की। विमला ने कुशल समाचार पूछे। पश्चात् राजकुमार और पद्मावती उसी महल में रहने लगे।

विमला को कुमार को मारने की बड़ी चिंता थी, उसने विष के लड्डू तैयार कर लिए और कुमार को निमंत्रण भेजा। रत्नसार को भी इस बात का पता लगा, उसने भी ठीक उसी तरह के लड्डू बनाये। कुमार रत्नसार के साथ विमला के यहाँ भोजन करने बैठा, रत्नसार कुमार के बिलकुल पास बैठा। रानी विमला ने महाराज की थाली में बिना विष के व कुमार को विष के लड्डू स्वयं परोसे।

रत्नसार अपने बनाये लड्डू साथ लाया था। महारानी दूसरी वस्तु लेने भीतर गयी इतने में ही रत्नसार अपने हाथ की सफाई खेल गया, अर्थात् विषमय लड्डूओं के स्थान पर अच्छे लड्डू रख दिये। कुमार रत्नसार के इस हस्तकौशल को ताड़ गया, पर उस समय बुद्धिमानी से चुप रहा। सभी ने आनंद के साथ भोजन किया। धर्मस्नेही

बंधुओं! पुण्य के उदय से जीवों को दु:खदायी सामग्री भी सुख का कारण हो जाती है।

इधर विमला ने देखा कि चित्रसेन ने लड्डू खा लिए, पर वह मरा नहीं। विमला को रत्नसार की करामात तो मालूम नहीं थी, इसलिए उसे राजा पर संदेह हुआ। उसने सोचा–''राजा अपने पुत्र से मिल गया है, इससे चित्रसेन किसी तरह बच गया, खैर मैं दोनों को देख लूँगी।'' इतने में राजा आ गया, उससे कहा–''तुम कुमार से मिल गये हो और मेरे मार्ग में बाधा उत्पन्न कर दी है।''

वास्तव में राजा ने चित्रसेन से कुछ नहीं कहा था। रानी की इस लताड़ना का राजा पर उलटा असर पड़ा। उसे अपने पुत्र के साथ किये व्यवहार का बड़ा पश्चाताप हुआ। महाराज ने विचारा–''मेरे इस पौरुष को धिक्कार! शतबार धिक्कार! मुझे अब राज्य से कुछ प्रयोजन नहीं, यह महल भी मुझे कारागार जैसा लग रहा है। स्त्री, पुत्र आदि तो मतलब के साथी हैं। यह विमला तो बड़ी ही पापिन है, मैं अब उसका सम्पर्क ही न करूँगा।'' इत्यादि स्त्री चरित्र विचार कर राजा को वैराग्य हो गया।

राजा इसी प्रकार के विचारों में लीन था, उसी समय बसंतपुर के उपवन में महावीर भगवान का समवशरण लगा। वनपाल ने समवशरण की सूचना महाराज वीरसेन को दी। राजा ने वनपाल को बहुत-सा धन दिया और नगर में भगवान की वंदना करने के लिए घोषणा करायी। पुरजन और परिवार के लोगों के साथ राजा ने उपवन को प्रयाण किया, समवशरण में जाकर बड़ी भक्ति से वंदना की और मनुष्यों के कोठे में बैठ गया। दिव्यध्वनि सुनकर राजा को बड़ा आनंद हुआ, संसार के विषय भोगों से इच्छा हट गयी और संसार को असार जानकर उसने जिन दीक्षा लेने का दृढ़ संकल्प किया। नगर में लौटकर राजा ने सभी मंत्रियों को बुलाया और अपना विचार सुनाया।

मंत्रियों ने जब देखा कि महाराज का दीक्षा लेने का भाव पक्का है, तब यह निश्चय किया गया कि चित्रसेन को राजगद्दी दी जाये। चित्रसेन का राज्याभिषेक बड़ी धूमधाम से हुआ। राजा वीरसेन ने कहा–''मेरा बुढ़ापा है, मैं दीक्षित होता हूँ। आज से युवराज चित्रसेन को इस साम्राज्य का अधिपति बनाता हूँ। मुझे विश्वास है कि आप सब अपनी मर्यादा का उल्लंघन नहीं करेंगे। जैसा मेरे प्रति अनुराग था, वैसा ही चित्रसेन के प्रति रखेंगे।''

पश्चात् वीरसेन रनवास में गये और विमला को सब समाचार सुनाया। विमला तो पहले से ही संसार से उदास हो चुकी थी। क्योंकि चित्रसेन के राजगद्दी पर बैठ जाने व अपने पुत्र गुणसेन को राज्य न मिलने से उसके चित्त में बड़ा वैराग्य आ गया था। उसने कहा–''प्राणनाथ! आप दीक्षा लेते हैं तो मैं भी दीक्षा लूँगी।'' महाराज ने बहुत

समझाया कि गुणसेन अभी बालक है, उसका पालन करो। महारानी बोली–''भला आपके बिना, पुत्र या राज्य की विभूतियों से मुझे क्षणमात्र भी सुख हो सकता है क्या?'' अंत में राजा और रानी ने समवशरण में जाकर दीक्षा ले ली और दुर्धर तप किया।

इधर चित्रसेन प्रजा का भली-भाँति पालन करने लगा। रत्नसार को सब मंत्रियों का प्रधानमंत्री बनाया। एक समय रत्नसार के मन में विचार आया कि ''चित्रसेन के पुण्योदय से मृत्यु के तीन कारण तो निष्फल हो गये, पर अब भी एक कारण बाकी है और उसकी मुझे बड़ी चिंता है। अस्तु, पुण्य के प्रभाव से सब अच्छा होगा।'' इस प्रकार विचार कर रत्नसार ने महाराज चित्रसेन को उपदेश दिया–''पुण्य से समस्त विघ्न बाधाओं का नाश और सम्पत्ति की प्राप्ति होती है।'' महाराज ने सुना ही नहीं बल्कि इसके अनुसार आचरण भी किया। नवीन जिनमंदिरों का निर्माण तथा प्राचीन जीर्ण मंदिरों का उद्धार करवाया, चार प्रकार का दान आदि दिया। इस प्रकार बहुत पुण्य किया।

राज दम्पत्ति व रत्नसार तीनों के स्वभाव एक से थे, परस्पर में प्रेम भी खूब था। रत्नसार सच्चा स्वामीभक्त मंत्री था। महाराज की रक्षा हेतु रात को उनके शयनागार में टहलता रहता था। एक दिन की बात है कि महाराज और महारानी रात को शयनागार में बेसुध सो रहे थे। जिस हिंडोले में दोनों सो रहे थे, उसी की सांकल पर नीचे महाराज के पास उतरते हुए काले सांप को रत्नसार ने देखा। रत्नसार को उस यक्ष की बात याद आयी, उसने तत्काल ही तलवार से सर्प को काट डाला। लहू की कुछ बूंदें महारानी की जांघ पर पड़ गयीं थीं, इसलिए रत्नसार कपड़े से उन बूंदों को पोंछने लगा। इतने में ही महाराज जाग गये और उन्होंने रत्नसार को लहू पोंछते देख लिया। महाराज ने पूछा–''रत्नसार! यह क्या है?'' अब तो रत्नसार बड़ी दुविधा में पड़ गया, सोचा–''यदि मैं इस घटना को सुनाता हूँ तो प्रसंगवश वे तीनों बातें भी सुनानी पड़ेंगी तथा ऐसा करने से मैं पत्थर का हो जाऊँगा। यदि मैं झूठ बोलूँ तो न जाने महाराज के मन में क्या ख्याल होगा?'' नीति में लिखा है कि 'समय पर राजा लोग उपकार, सेवा और पौरुष आदि की कुछ परवाह नहीं करते।'

अंत में रत्नसार ने कहा–''महाराज! यदि मैं इस संबंध की सारी बातें बताऊँ तो मैं पत्थर का हो जाऊँगा।'' महाराज ने कहा–''बात सुनाने से कोई पत्थर का नहीं हो जाता, मैं तो सारी बात सुनूँगा।'' यह सुनकर रत्नसार ने कहा–''अच्छा तो सुनिये, महाराज!''

जब हम रत्नपुर से बसंतपुर लौट रहे थे, तब रास्ते में एक वट वृक्ष के नीचे आप सोये थे। उसी वृक्ष पर यक्ष और यक्षिणी रहते थे, आपको देखकर यक्षिणी ने यक्ष से पूछा–''इस राजकुमार को इसके पिता राज्य देंगे या नहीं?'' तब यक्ष बोला–''सुनो, इसके पिता वीरसेन की नई महारानी विमला ने अपने पुत्र गुणसेन को राज्य देने के लिए महाराज से प्रतिज्ञा करा ली है, इसलिए इसको मारने के लिए विमला व इसके पिता ने तीन उपाय रचे हैं। पुण्य से यदि यह बच गया तो अवश्य ही राजा होगा। इसकी मृत्यु का एक कारण और भी है, वह यह कि सोते समय नाग इसे काटने आयेगा। यदि इससे भी बच गया तो अपने जीवन को धर्मपूर्वक आनंद से बितायेगा। लेकिन प्रिय! देखो, मंत्री पुत्र रत्नसार सब बातें सुन रहा है। यदि यह किसी से इन बातों को कहेगा तो यह पत्थर का हो जायेगा।'' नि:संदेह मैंने यह सब बातें सुनी थी, पर मैं उसी दिन से आपकी इन आपदाओं को समय पर टालता रहा।

आपके पिता जब आपको लेने आये थे, तब वे एक दुष्ट घोड़े को आपके चढ़ने के लिए लाये थे। किसी को मालूम नहीं पड़ पाया कि मैंने उसे उसी समय बदल दिया। यह कहते-कहते रत्नसार घुटनों तक पत्थर का हो गया। चित्रसेन ने कहा–''फिर आगे क्या हुआ?''

रत्नसार बोला–''फिर आप नगर द्वार के पास गये, जिसे गिराकर आपके प्राणों को लेने का विचार था। वहाँ मैंने घोड़े को एक तेज चाबुक मार कर दरवाजे से ऐसी फुर्ती से निकाला कि आप बाल-बाल बच गये।'' यह कहते-कहते रत्नसार कमर तक पत्थर का हो गया।

महाराज ने फिर भी कहा–''हाँ रत्नसार! फिर आगे क्या हुआ?''

रत्नसार बोला–''महाराज! इसके बाद विष के लड्डूओं की बात है और यह बात तो आपको भी मालूम है। जब आपकी उपमाता ने आपके थाल में विष के लड्डू परोसे थे और मैंने उन्हें बदल दिया था।'' महाराज बोले–''हाँ, यह मुझे याद है।'' इस बात को समाप्त करते-करते रत्नसार गले तक पत्थर का हो चुका था। महाराज ने फिर भी आगे कहने को कहा और रत्नसार इस प्रकार कहने लगा–''महाराज! जब आज रात को आप और महारानी झूले के पलंग पर सो रहे थे, उसी समय झूले की सांकल पर से एक काला सर्प आपके पास उतरा चला आ रहा था। मुझे यक्ष की बात याद आयी, इसलिए मैंने वहीं उसे तलवार से काट डाला। महारानी की जांघ पर लहू की बूंदें गिर गयीं थी और मैं उन्हें कपड़े से पौंछ रहा था, इसी बीच में आप जाग पड़े। बस यही मेरा सब वृतांत है।'' इतना कहने के बाद रत्नसार सर्वांग पाषाणमय हो गया और जमीन पर गिर गया। यक्ष की बातें सत्य हुयीं।

महाराज चित्रसेन से मित्र रत्नसार की यह अवस्था देखी न गयी। उसकी स्वामीभक्ति और अलौकिक गुणों को याद कर महाराज को बड़ी मर्म वेदना हुयी और वे भी बेहोश होकर गिर पड़े। शीतोपचार के पश्चात् सचेत होकर वे विलाप करने लगे। ''हाय! प्रिय मित्र! मैंने तुम्हारे उपकारों का यह बदला दिया, मैंने अपनी मूर्खता से तुम्हें पत्थर का बना दिया।'' इत्यादि विचार कर चित्रसेन ने आत्मघात करने का निश्चय किया। पद्मावती चित्रसेन के अभिप्राय को ताड़ गयी। अवसर देखकर उसने समझाया–''प्राणनाथ! मैं जानती हूँ कि रत्नसार के वियोग से आपके हृदय में गहरी चोट लगी है, पर आपने आत्मघात का जो विचार किया वह ठीक नहीं है। इससे आपकी कीर्ति में कलंक लगेगा और मित्र मिलन भी न होगा। रत्नसार का प्राणांत नहीं हुआ है, अतः मैं जो उपाय बताती हूँ वह कीजिये। उस यक्ष के श्राप से ही इसकी ऐसी दशा हुयी है। आप दान आदि दीजिये जिससे रत्नसार की दशा सुधर जाये।''

अनेक उपाय किये गये पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। दोनों बड़े हतोत्साहित हुये। महाराज की चिंता बढ़ने लगी, राज्य का सब कामकाज करना एकदम छोड़ दिया, निरंतर रत्नसार के विषय में चिंतित रहने लगे। एक समय चित्रसेन के मन में विचार आया कि जिस यक्ष ने मेरी उन चार आपत्तियों के विषय में भविष्यवाणी कही थी, वही यक्ष रत्नसार की इस आपत्ति का उपाय बतलायेगा।

सवेरा होते ही राज-काज मंत्रियों को सौंपकर शुभ मुहूर्त में चित्रसेन उस वटवृक्ष की ओर चला और कुछ ही दिनों में वहाँ पहुँच गया। वह रास्ते का थका तो था ही, अतः आते ही उसके नीचे सो गया।

उस यक्षिणी ने फिर पूछा–''प्राणनाथ! यह कौन पुरुष है जो इस वृक्ष की छाया में सो रहा है?'' यक्ष बोला–''प्रिय! यह वही राजकुमार है जो उस दिन अपनी पत्नी और मित्र के साथ यहाँ ठहरा था।'' यक्षिणी ने पूछा–''यह दुःखी क्यों है?'' यक्ष बोला–''यह अपने मित्र रत्नसार के वियोग से दुःखी है।'' वियोग का कारण पूछने पर यक्ष बोला–''प्रिय! तुम्हें याद होगा, इसी के विषय में तुमने पहले भी पूछा था कि इसका पिता इसको राज्य देगा या नहीं? तब मैंने कहा था इसकी मृत्यु के चार कारण हैं, यदि उन कारणों से मृत्यु न हुयी तो यह चिरकाल तक राज्य करेगा। रत्नसार ने सब बातें सुन लीं थीं, तब मैंने कहा था कि यदि इसने ये बातें किसी से कहीं तो पत्थर का हो जायेगा। रत्नसार के उद्योग व चित्रसेन के पुण्य से मृत्यु के चारों कारण टल गये, पर विवश होकर रत्नसार को सब बातें चित्रसेन को बतानी पड़ीं और तभी से वह पत्थर का हो गया। मित्र वियोग से ही यह चित्रसेन विकल है और इस आपत्ति के निस्तार का उपाय खोजता फिर रहा है।''

यह कथा सुनकर यक्षिणी को बड़ी दया आयी, बोली–''प्राणनाथ! कृपा कर शीघ्र इस आपत्ति का कोई प्रतिकार बतलाइये।'' यक्ष ने थोड़ी देर विचार करके कहा–''हाँ, एक उपाय है, यदि कोई पतिव्रता नारी अपने बच्चे को गोद में लेकर रत्नसार के पत्थर के शरीर का स्पर्श करे तो अवश्य ही रत्नसार ज्यों का त्यों हो जायेगा।'' चित्रसेन ने पेड़ के नीचे पड़े-पड़े सब बातें ध्यान से सुनीं। मित्र दर्शन का उपाय जानकर उसे बहुत आनंद हुआ। रातभर उसी पेड़ के नीचे सुख की नींद सोया।

सवेरा होते ही वह अपने नगर की ओर चला और कुछ ही दिनों में बसंतपुर पहुँच गया। अपने स्वामी के आ जाने से राज्यभर में आनंद हुआ। पद्मावती को भी पति दर्शन से अपार हर्ष हुआ, वह गर्भवती थी और प्रसव के दिन भी थोड़े ही बाकी थे। इससे चित्रसेन को भी प्रसन्नता हुयी। महाराज ने धीरे-धीरे राज का काम-काज करना प्रारंभ कर दिया, नित्यप्रति खूब दान देते और सदा अच्छे-अच्छे कामों में समय बिताते। कुछ दिनों बाद शुभ मुहूर्त में महारानी के गर्भ से एक पुत्ररत्न उत्पन्न हुआ। जन्मोत्सव मनाया गया, महाराज ने मंदिरों में महापूजा करवायी, याचकों को दान आदि दिया। पुत्र के नामकरण का विचार किया गया। सब लोगों ने निश्चय किया कि पुत्र की प्राप्ति धर्म के प्रभाव से हुयी है, इसलिए इसका नाम 'धर्मसेन' रखा जाये। सर्व सम्मत्ति से यही नाम रखा गया।

इस दिन भी महाराज ने बड़ा उत्सव मनाया, दानशालाओं में दान आदि दिया। इसी समय महाराज ने पद्मावती से यक्ष की वह सब कथा सुनायी और कहा–''अब तुम पुत्रवती भी हो, आज तुम्हारे शील की परीक्षा होगी। यदि तुम सच्ची पतिव्रता हो तो हमारा मित्र रत्नसार तुम्हारे स्पर्श से अच्छा हो जायेगा।'' पद्मावती ने कहा–''प्राणेश्वर! मैं अपने शील की परीक्षा देने को हर तरह और हर समय तैयार हूँ।'' यह सुनकर महाराज ने इस घटना को देखने के लिए सब नगर में घोषणा करा दी। सब लोगों के आ जाने पर एक ऊँचे स्थान पर खड़े होकर महाराज ने सब लोगों को रत्नसार की वह पाषाण मूर्ति दिखलायी, रत्नसार किस तरह पाषाणमय हो गया, इसका सब वृत्तांत ज्यों का त्यों बताया। तब लोगों के मन में बड़ा ही कौतूहल हुआ। फिर महाराज ने पद्मावती से कहा–''अब समय आ गया है, सब लोगों के सामने अपने शील की परीक्षा दो।''

महारानी तो पहले से ही तैयार थी, इतनी बात सुनते ही महारानी पहले जिन मंदिर में गयी, जिनेन्द्र भगवान की पूजा आदि की, पश्चात् सभा में आयी और धर्मसेन पुत्र को गोदी में लेकर महारानी रत्नसार की पाषाण मूर्ति के पास खड़ी हो गयी। उसने श्रद्धा से जिनेन्द्र भगवान का स्मरण किया और फिर उच्च स्वर में कहा–''हे शासन देवता! समस्त वैमानिक देव! रक्षक क्षेत्रपाल! आप मेरे इस नम्र निवेदन को सुनें, मैं

यदि सच्ची पतिव्रता हूँ और मेरा शील निर्दोष हो तो मेरे हाथ के स्पर्श मात्र से यह पाषाण मूर्ति रत्नसार हो जाये।''

इतना कहकर पद्मावती ने उस पाषाण मूर्ति को हाथ लगाया, हाथ लगाते ही वह पाषाण मूर्ति रत्नसार के रूप में बदल गयी। यह देखकर सबने मिलकर कहा–''वास्तव में हमारी महारानी पतिव्रता हैं, ये नारी नहीं साक्षात् देवी हैं।'' लोगों ने शील की बड़ी महिमा गायी, उन्होंने कहा–''शील के समान संसार में और कोई उत्कृष्ट वस्तु नहीं है। इसके प्रभाव से कठिन से कठिन रोग भी दूर हो जाते हैं, काला सांप भी माला हो जाता है और इस शील के प्रभाव से ही स्वर्ग व मोक्ष की प्राप्ति होती है। यह शील का ही प्रभाव है जो एक पाषाण मूर्ति से रत्नसार बन गया।''

चित्रसेन को रत्नसार मिल गया। दोनों ने मिलकर राज्य का काम संभाला। सभी धर्म में लीन होकर अपने दिन आनंद से बिताने लगे।

एक दिन दमवर मुनिराज का आगमन उपवन में हुआ, यह समाचार वनपाल ने महाराज चित्रसेन को दिया। सभी मुनिराज के दर्शनार्थ गये और धर्मोपदेश सुनने के पश्चात् घर लौटे। धर्मोपदेश का चित्रसेन के हृदय पर बहुत प्रभाव पड़ा, संसार के सब विषय तुच्छ लगने लगे। महाराज के हृदय में उत्कृष्ट वैराग्य आया, उन्होंने युवराज धर्मसेन को बड़े समारोह के साथ राजगद्दी पर बैठाया। रत्नसार मंत्री ने अपना पद अपने पुत्र सुमति को दिया। इस प्रकार मंत्री भी महाराज के साथ दीक्षित होने को तैयार हो गया। महाराज ने समस्त प्रजाजन से क्षमा माँगी तथा क्षमा प्रदान की। रानी पद्मावती ने भी दीक्षा लेने का संकल्प किया। तीनों ने दमवर मुनिराज के पास निवेदन किया, 'हमें दीक्षा देकर अनुगृहीत करें।' मुनिराज ने उनकी सब व्यवस्था पूछकर उन्हें दीक्षा प्रदान की। दीक्षा के बाद दोनों मुनियों ने घोर तपस्या करते हुये भव्यों को उपदेश दिया, अंत में समाधि मरणकर अच्युत स्वर्ग में गये और वहाँ से च्युत होकर मनुष्य भव धारण कर मुक्ति प्राप्त करेंगे। आर्यिका पद्मावती भी घोर तप कर अच्युत स्वर्ग गयीं और वहाँ से च्युत होकर मनुष्य भव धारण कर मुक्ति प्राप्त करेंगी।

हे ज्ञानी! शील के प्रभाव से तीनों ने उत्तम पद को प्राप्त किया। वास्तव में शील के प्रभाव से क्या नहीं होता? इच्छित वस्तुओं का मिलना, आज्ञाकारी पुत्र, स्त्री आदि गौरव, प्रतिष्ठा ये सब शील का प्रभाव जानो। शील व्रत का पालन करने वाले इस लोक में समस्त सुखों को भोगते हुये, परलोक में उत्तम गति को प्राप्त करते हैं।

धर्मस्नेही बंधुओ! प्रायः देखा जाता है कि जब-जब कोई पुरुष संकट से ग्रसित होता है तो किसी न किसी रूप में एक नारी ही उसे संकट से उभारने में समर्थ होती है। अतः नारी बला नहीं बल्कि सम्बल है।

साहस की जीत

गर्मी का मौसम था, दोपहर के समय विद्यार्थियों को छुट्टी मिली हुयी थी। कुछ खेल रहे थे तो कुछ मीठी नींद लेने में मस्त थे। एक दस वर्ष की बालिका फूल चुनती हुयी बैठ गयी और बैठे-बैठे ही नींद लेने लगी।

एक धनिक परिवार का लड़का जो पढ़ने-लिखने में होशियार था, वय में भी अधिक था, इसलिए गुरु जी ने उसको सबका मुखिया बना रखा था।

नींद लेती हुयी बालिका की साड़ी के पल्ले से एक लड़की ने कौतूहल वश सात कौड़ियाँ निकालीं। सबने सलाह करके मिष्टान्न मँगाया और चने के बराबर सबको हिस्सा बांटा। बालिका का हिस्सा भी एक तरफ रख दिया।

बालिका जागी। उस मुखिया लड़के ने दौड़कर उसका भाग उसके सामने रख दिया और कहा–''सुरसुंदरी! तुम्हारे हिस्से की मिठाई अलग रख दी थी, लो खाओ और पढ़ना शुरू करो।'' सुरसुंदरी ने पूछा–''आज मिठाई किसने बांटी है?'' उसने हँसते हुए उत्तर दिया ''तुम्हीं ने।'' सुरसुंदरी क्रोध करके बोली–''जाओ, झूठे कहीं के। सच कहो अमरकुमार, मिठाई किसने मँगवाई?'' अमरकुमार ने हँसते हुए कहा–''सच कहता हूँ, यह तुम्हारी ही कृपा का फल है।'' सुरसुंदरी क्रोध में बोली–''जाओ, मैं न खाऊँगी।'' अमरकुमार हँसी रोककर बोला–''नाराज क्यों होती हो? तुम्हारी साड़ी के पल्ले में जो सात कौड़ियाँ बंधी थीं, उन्हीं को खोलकर हमने मिठाई मँगवाई है।''

सुरसुंदरी के दिल में इस बात का बड़ा दुःख हुआ। उसका मिजाज बहुत गर्म हो गया। उसने कहा–''चोर कहीं का, बड़ा धन्ना सेठ आया है। तेरी अकल कहाँ मारी गई थी? सबका मुखिया बना है, क्या ऐसी हरकत के लिए? माँ-बाप तेरी इस बात को सुनेंगे तो कहेंगे–''अच्छा कपूत जन्मा।'' गुरुजी सुनेंगे तो कहेंगे–''सब परिश्रम पानी में गया।''

अब तो अमरकुमार की भौहें चढ़ गयीं। वह बोला–''बड़ी राजा जी की लड़की हुयी है। सात कौड़ियाँ क्या चीज हैं? जिनके लिए ऐसा गुस्सा कर रही है, मानो लाखों की दौलत लुट गयी हो।''

सुरसुंदरी कड़ककर बोली–''वो लाखों से भी ज्यादा थीं, उनसे तो मैं राजा का राज लेती।'' अमरकुमार कुछ कहता कि इतने में गुरुजी आ गये और बात समाप्त हो गयी। थोड़ी देर में सुरसुंदरी सारी बात भूल गयी, परंतु अमरकुमार के हृदय से

सुरसुंदरी के शब्द नहीं हटे कि, 'मैं सात कोड़ी में राज ले लेती।' उसने अपने मन को स्थिर किया कि अवकाश मिलते ही मैं अपने अपमान का बदला लूँगा।

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में चम्पा नामक नगरी थी, जो धन-धान्य से पूर्ण थी। उस नगरी के राजा का नाम रिपुमर्दन था। सारी प्रजा इनसे प्रेम करती थी। इंद्राणी के समान सुंदर रतिसुंदरी नामक उसकी रानी थी और उसके एक बालिका थी सुरसुंदरी।

इसी नगर में एक साहूकार रहता था, जिसका नाम धनवाह था। उसकी धनवती नामक स्त्री और लगभग बारह वर्ष का एक अमरकुमार नामक पुत्र था।

जिनका कथोपकथन चल रहा है, वे यही नृप और श्रेष्ठी के बालिका-बालक सुरसुंदरी और अमरकुमार हैं। दोनों ने गुरुजी के पास पूर्ण विद्या प्राप्त की।

एक दिन सुरसुंदरी अपनी माता के साथ जिनालय में देव दर्शन एवं साध्वी के दर्शनार्थ गयी। साध्वी जी ने सुरसुंदरी को पढ़ी-लिखी समझकर 'सम्यक् क्या है?' इत्यादि प्रश्न पूछे। सभी प्रश्नों के सही उत्तर सुनकर साध्वी जी सुरसुंदरी से बहुत प्रसन्न हुयीं और रानी से कहने लगीं ''रानी तुम ने उत्तम कन्या रत्न उत्पन्न किया है, इसको किसी सच्चे जौहरी के हाथ सौंपना। देखना किसी कौवे की चोंच में यह रत्न न चला जाये।'' रानी ने हाथ जोड़कर कहा–''मेरा रत्न अबोल चकाचौंध दिलाने वाला है ही नहीं। इसके मुँह में जबान है, शरीर के अंदर चेतना शक्ति है और दूसरों को अपने अनुसार बनाने की कला है। यदि आपकी दया होगी तो यह कौवे को भी राजहंस बना लेगी। बस आपका आशीर्वाद चाहिए।''

गुरुजी ने एक दिन राजसभा में अमरकुमार और सुरसुंदरी की परीक्षा ली। परीक्षा में दोनों ने सौ में से सौ अंक पाये। राजा बहुत प्रसन्न हुआ। राजा व अमरकुमार के पिता ने गुरुजी को धन देकर संतुष्ट किया।

सुरसुंदरी जब पूर्ण यौवनवती हुयी तब एक दिन उसकी माता ने राजा रिपुमर्दन से कहा–''लड़की अब सयानी हो गयी है, शीघ्र ही उसका ब्याह कर देना चाहिए।'' राजा ने कहा–''मुझे भी इसी चिंता में नींद नहीं आती, मगर क्या किया जाये? पुत्री के योग्य कोई वर नहीं दिखता।'' रानी ने कुछ सोचकर कहा–''मेरे ध्यान में एक वर आया है।'' राजा ने उत्सुकता से पूछा–''कौन?'' रानी ने कहा–''अमरकुमार।'' राजा ने कहा–''वणिक पुत्र।'' रानी ने पूछा–''क्या वह योग्य नहीं है?'' राजा बोला–''क्षत्रियोचित वीरता उसमें कहाँ से आयेगी?'' रानी ने कहा–''अवकाश मिलने पर वीरता आ जाती है, और उसको लड़ने भी कहाँ जाना है? राजा रक्षक है, प्रजा को क्या चिंता है?''

बहुत सोच विचार के बाद दोनों ने यही निश्चय किया कि अमरकुमार के साथ सुरसुंदरी का ब्याह कर दिया जाये।

अमरकुमार के पिता धनवाह बुलाये गये। राजा ने उनका आदर सत्कार किया और अपने मन की बात कही। धनवाह सशंक दृष्टि से राजा की ओर देखने लगा। यह देखकर राजा मुस्कराया और बोला–''तुम ऐसे भाव क्यों दिखा रहे हो, मानो कोई मधुर स्वप्न आया है। मैं सचमुच ही सुरसुंदरी का विवाह अमरकुमार के साथ करना चाहता हूँ। लड़का गुणी है, विद्वान है और सुरसुंदरी का सहपाठी एवं बालपन का मित्र है। वह सर्वथा हमारी पुत्री के योग्य वर है।''

धनवाह ने हाथ जोड़कर कहा–''प्रभो, मुझे आपकी आज्ञा शिरोधार्य है 'शुभस्य शीघ्रं' की कहावत को चरितार्थ करने के लिये हमें शीघ्र ही ब्याह कर देना चाहिए।''

धूमधाम से विवाह सम्पन्न हुआ। माता ने आंसू बहाते हुए और पिता ने दु:खी हृदय से अपनी कल्पवेली के समान प्रेम से पाली हुयी कन्या को दूसरे, स्वभाव से अपरिचित व्यक्ति के हाथ में सौंप दिया।

प्रभात का समय था। सुरसुंदरी और अमरकुमार अपनी छत पर बैठे हुए समुद्र की ओर देख रहे थे। तभी उन्हें जहाज दिखाई देते हैं, वे जहाज धनवाह के थे जो कि विदेशों से कमाई करके आज ही लौटकर आये थे। आज अमरकुमार का सारा दिन जहाजों का माल उतरवाने व सामान को व्यवस्थित करने में बीता। यह कार्य वह पहले भी करता था, परंतु आज न जाने क्यों उसके दिल में एक नवीन ही भावना का उदय हुआ। भावना यह कह रही थी, अमरकुमार स्वयं कुछ कमाई न करके बाप की कमाई पर ही जीवन बिताना कायरता है। उठ तू अपनी देख-रेख में जहाजों का लंगर उठा और विदेशों में जाकर कुछ कमाई कर।

संध्या के समय अमरकुमार ने पिता से जहाज लेकर विदेश जाने की बात कही। धनवाह को दु:ख भी हुआ और खुशी भी। बहुत हाँ, ना के बाद पिता ने अमरकुमार को आज्ञा दी।

वर्षाऋतु के बीतते ही सर्दी का मौसम आ चुका था। अमरकुमार विदेश जाने वाला है इसलिए जलयात्रा की तैयारियाँ होने लगीं। अमरकुमार ने सुरसुंदरी से कहा–''प्रिये! मैं विदेशों में व्यापार के लिये जाऊँगा, तुम आनंद के साथ धर्मध्यान में अपना समय बिताना और मुझे अपने आनंद के समाचार देती रहना। मैं भी तुम्हें जल्दी-जल्दी समाचार भेजूँगा।''

सुरसुंदरी की आँखों में आँसू आ गये। रोती आवाज में कहा–''मैं अकेली कैसे रहूँगी?'' अमरकुमार ने मुस्करा दिया, कोई उत्तर नहीं दिया। सुरसुंदरी हृदय को कड़ा करके बोली–''प्राणनाथ! आपके बिना मैं एक भी दिन न निकाल सकूँगी, जीवन में अंधेरा छा जायेगा। वैसे भी शास्त्रों में कहा है कि शय्या, आसन, भोजन, द्रव्य, राज्य,

रमणी व घर इन सातों को कभी सूना नहीं छोड़ना चाहिए, यदि ये सूने रहते हैं तो इन पर दूसरा अधिकार कर लेता है। अत: मैं आपके साथ ही चलूँगी।''

अमरकुमार ने कुछ देर सोचा और अंत में प्रेमपूर्वक चलने की अनुमति दे दी।

जहाज बंदरगाह पर तैयार खड़े अमरकुमार की प्रतीक्षा कर रहे थे। सुरसुंदरी अपने माता-पिता से मिली, तब माता ने कहा–''बेटी! संसार में नारी के लिये पति से बढ़कर और कोई नहीं है। पति के हृदय को प्रफुल्लित रखना ही स्त्री का सबसे बड़ा कर्त्तव्य है। धर्म क्रियाएँ निरंतर करना और संकट पड़ने पर विशेष रूप से तीनों योगों को सब तरह से रोककर भगवान में लगाना, यह दु:ख से छुड़ायेगा।''

सुरसुंदरी ने सास-ससुर के चरणों में सिर झुकाया। ससुर आशीर्वाद देकर चले गये। सास ने मस्तक पर हाथ रखा, कहा–''पुत्री! मैं आज अपना हृदय का लाल, आँखों का तारा तेरे भरोसे रवाना करती हूँ। तू इसका पूरा ख्याल रखना, इसी में तुम दोनों का सुख है।''

पिता ने पुत्र को यात्रा का शुभ शकुन नारियल देते हुये कहा–''ब्रह्ममुहूर्त में उठना, पंच परमेष्ठी का ध्यान करना, संतोष न छोड़ना। साम, दाम, दण्ड, भेद जैसे हो सके वैसे अपना काम कर लेना। अपनी कुशलता के समाचार भेजते रहना और सदा बहू को कष्ट न हो इस बात का ध्यान रखना।'' अमरकुमार और सुरसुंदरी अपने जहाज के कमरे में जा बैठे। तोपों की गर्जना के साथ जहाज के बेड़े ने लंगर उठाया। जहाज आगे बढ़ने लगे।

जहाज सिंहलद्वीप टापू में पहुँचे। इस टापू के सिवा दूसरी जगह बहुत दूर तक कोई टापू नहीं था। तीन-चार दिन तक जहाज जलराशि में ही तैरते रहेंगे इसलिए जहाजों के लंगर इसी द्वीप में डाले गये। वातावरण अनुकूल होने से सबके मन में दो-चार दिन वहीं रूकने की इच्छा हुयी, परंतु मालूम हुआ कि वहाँ पहाड़ में एक मानवभक्षी राक्षस रहता है। वह रात के समय बाहर निकलता है और मनुष्यों को खा जाता है। यह जानकर सब जल्दी-जल्दी जाने की तैयारी करने लगे।

अमरकुमार सुरसुंदरी भी एक वृक्ष के नीचे बैठ गये और बातें करने लगे। बाल्य जीवन की बातें, विद्यालय के आनंद व उल्लास का एक-एक करके वर्णन होने लगा। सुरसुंदरी बात करते-करते अपने पति की गोद में सिर रखकर सो गयी। वार्तालाप के सिलसिले में अमरकुमार को सुरसुंदरी की वह बात याद आयी कि, ''मैं सात कौड़ियों में राज्य लेती।'' ''बचपन में इस तिरस्कार का बदला न ले सका था, अभिमानिनी आज मैं तेरे अभिमान को चूर्ण करूँगा'' ऐसा मन में विचार कर अमरकुमार ने धीरे से सुरसुंदरी का सिर एक पत्थर पर रख दिया और उसके पल्ले में सात कौड़ियाँ बाँधकर कुछ लिख दिया।

अमरकुमार चला, परंतु उसके पैर नहीं उठे। विवेक आकर उसे इस दुष्ट काम के लिये फटकारता था, कहता था–''मूर्ख! बालक्रीड़ा के खेल का यह बदला! हजारों मनुष्यों के सामने सदा रक्षा की प्रतिज्ञा की थी, उस प्रतिज्ञा का यह पालन!''

अमरकुमार ने कहा–''सच है, अज्ञान में कही हुयी बात का क्या विचार? मुझे क्षुद्र कार्य नहीं करना चाहिए।'' अमरकुमार वापस सुरसुंदरी के पास आया, उसके सिर पर हाथ रखा, मगर उसकी आँख नहीं खुली। दुर्भाग्य का भयंकर विपाक उदय में आने वाला था फिर उसकी नींद क्यों खुलती? पुनः अमरकुमार को प्रतिज्ञा याद आयी। उसने सोचा–''जो जैसा करता है, उसे उसका प्रतिफल मिलता ही है। जो इसका भविष्य होगा सो होगा। मुझे अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करनी चाहिए। इस अभिमानिनी का दर्प चूर्ण करना ही श्रेष्ठ है।'' इत्यादि विचार कर अमरकुमार अपनी पत्नी, राजसुता, माता-पिता की आँखों की तारा, सास-ससुर की प्रिय वधू को अकेली भयानक वन में छोड़कर चला गया।

जब वह अपने जहाजों से थोड़ी दूर रहा तब रोने-चिल्लाने लगा, ''हाय सुरसुंदरी! अब मैं तेरे बिना कैसे रहूँगा? परिवार वालों को क्या मुँह दिखाऊँगा?'' लोग पूछने आने लगे तब अमरकुमार ने कहा–''राजसुता को राक्षस खा गया है।'' सबने यह बात मान ली, अमरकुमार को धीरज बंधाकर सब अपनी-अपनी जगह जा बैठे। जहाज आगे बढ़ गये।

सुरसुंदरी जागी, आँखें मली, इधर-उधर देखने लगी, मगर अमरकुमार कहीं नहीं दिखा। वह घबराई, भय से हृदय धड़कने लगा और वह समुद्र की ओर तेजी से भागी, मगर जहाज उसे बहुत दूर जाते हुये दिखाई दिये। सुरसुंदरी के हृदय पर मानो वज्रगिरा, एक हाय करके भूमि पर जा पड़ी।

हाय! जिसके सिर ठनकने से सारी चम्पापुरी व्याकुल हो उठती थी, वही राजसुता सुरसुंदरी आज मूर्च्छित पड़ी है और उसकी शुश्रुषा करने वाला कोई नहीं है। यही कर्म की गति है। जहाँ कोई साथ नहीं वहाँ प्रकृति मददगार होती है। मंद पवन ने बहकर सुरसुंदरी को जगाया। वह जागृति उसके लिये भयंकर थी।

वह 'नाथ! नाथ!' पुकारकर रोने लगी। वहाँ कोई नहीं था पर प्रकृति ने उसे धीरज बंधाया, अपने आश्रय में रखने की उत्सुकता और पुरुषों की तरह कृतघ्न नहीं बनने का अभिवचन दिया। सुरसुंदरी ने आँचल से आँसू पोंछे, पल्ला छोड़ते समय उसकी गांठ पर नजर आयी, खोलकर देखा तो उसमें सात कौड़ियाँ निकली। कौड़ियों के नीचे पल्ले पर लिखा था–''सात कौड़ी में राज्य लेकर रानी बनो।'' इस वाक्य का एक-एक अक्षर और उन कौड़ियों का एक-एक स्वरूप उसके हृदय में तपे हुए लोहे की सलाख की तरह चुभने और उसे जलाने लगा। उसकी आँखों का पानी सूख गया,

उसका सोया हुआ क्षत्रियत्व जाग उठा। उसने घृणा से उन अक्षरों को देखा और कहा–''यही है मेरे प्रेम और आत्मत्याग का बदला! छि:! माता ने मुझे कहाँ ढकेल दिया? मैं जान बूझकर उस बचपन के चोर के फंदे में फँस गयी। मैंने क्यों अपने आपको उसके हाथ सौंप दिया।''

धीरे-धीरे उसका क्रोध घटने लगा। उसका विवेक ज्ञान जागृत हुआ। वह बोली–''छि:! सुरसुंदरी! नारी होकर तेरे ये भाव। पुरुष का धर्म कठोरता है तो नारी का धर्म कोमलता है। पुरुष निर्दय है तो नारी दयामय है। इन विरोधी गुणों के बिना नारी का वास्तविक रूप कैसे प्रगट हो सकता है? मैं भी नारी हूँ, वास्तविक अर्थ में नारी रहूँगी।''

वह गाल पर हाथ रखकर कुछ देर सोचती रही, ''मैं क्षत्रिय संतान हूँ, इस प्रतारणा का बदला जरूर लूँगी, परंतु उनको इस तरह विपत्ति में डालकर नहीं, उनको विपत्ति से बचाकर। माना की स्त्री का धर्म क्षमा है, आत्मदान है, परंतु स्त्री जाति को तुच्छ समझकर पुरुष उनके साथ जो क्षुद्र व्यवहार करते हैं वह तो सर्वथा असह्य है, स्त्रियों के सद्‌गुणों का दुरुपयोग है। अब सात कौड़ियों से राज लेकर रानी बनना होगा और अपना नारी तेज दिखाकर उन्हें सन्मार्ग पर लाना होगा।''

सूर्य छिप गया, अंधकार के बढ़ने से सुरसुंदरी का भय भी बढ़ने लगा। उसने सीखा था कि णमोकार मंत्र सारे दु:खों को दूर करने वाला है, इसलिए उसे मन ही मन पढ़ने लगी और उसका भय जाता रहा। अचानक पत्थर के फटने की आवाज आयी। सुरसुंदरी ने आँखें खोलीं, उसे सामने एक फटी हुई पहाड़ी में से भयंकर मूर्ति निकलती हुयी दिखायी दी। उसका हृदय फिर भय से काँप उठा। वह भयंकर मूर्ति जब उसे अपनी ओर आते दिखी तो उसने रक्षाकवच नवकार का जाप पुन: प्रारम्भ किया।

राक्षस सुरसुंदरी के पास आया, परंतु उसकी भक्षण करने की प्रवृत्ति न हुयी। महान निर्दय जीव के हृदय में भी नवकार मंत्र के प्रभाव से दया का स्रोत फूट पड़ा। वह बोला–''बेटी! कौन हो? यहाँ क्यों आयी हो? कैसे आयी हो?'' बेटी शब्द में बड़ा जादू है। जैसे ही सुरसुंदरी ने सुना, उसने आपबीती सारी बातें सुना दीं। सुनकर राक्षस ने कहा–''कोई चिंता नहीं बेटी। आनंद से यहीं रहो और समय बिताओ।''

सुरसुंदरी वहीं रहने लगी। फल-फूल खाती, झरनों का पानी पीती, अहर्निश णमोकार मंत्र जपती और पति के कल्याण की भावना में निर्मग्न रहती।

कई महीने बीत गये। एक दिन किसी साहूकार के जहाज इस टापू पर आकर पानी लेने के लिये ठहरे। जहाजों के स्वामी सेठ ने उसे उस स्थान की अधिष्ठात्री देवी समझकर प्रणाम किया। सुरसुंदरी ने कहा–''पिता! मैं देवी नहीं हूँ, मानवी हूँ।'' सेठ बड़ा हतप्रभ हुआ, फिर बोला–''मानवी होकर यहाँ कैसे आयी और कैसे जीवित

हो?'' सुरसुंदरी ने सारी कथा सुनाई। सुनकर सेठ को दुःख, आश्चर्य और लोभ तीनों हुए। वह थोड़ी देर ललचाई आँखों से ताकता रहा, फिर बोला–''अब तुम यहाँ आनंद में हो? तुम्हें फिर से मनुष्य समाज में जाने की इच्छा नहीं है?'' सुरसुंदरी बोली–''भला परिवार को छोड़कर कौन सुखी रह सकता है? तो भी पुरुष समाज के साथ में रहने से तो मुझे घृणा हो गयी है, वह बेचारी अबलाओं को इसी तरह प्रताड़ित किया करता है।'' सेठ बोला–''पाँचों उंगलियाँ एक-सी नहीं होती, इसी तरह समस्त पुरुष समाज भी विश्वासघातक नहीं होता। तुम मेरे साथ चलो, मैं तुम्हें तुम्हारे देश छोड़ दूँगा।''

सोच-विचार करने के उपरांत सुरसुंदरी ने कहा–''मैं तुम्हारे साथ चलूँगी, पर जब तक मैं सात कौड़ियों से राज्य न ले लूँ तब तक बिना अपने पति के अपने देश न लौटूँगी। अपनी संतान समझकर मेरे साथ व्यवहार करने की और मुझे एकांत में रहने देने की स्वीकृति दो तथा धर्म को साक्षी मानकर अपना वचन पालने की प्रतिज्ञा करो तो मैं तुम्हारे साथ चल सकती हूँ।''

सेठ ने सभी को स्वीकार किया, प्रतिज्ञा भी की और मन ही मन हँसता हुआ सुरसुंदरी को अपने जहाज पर ले गया। सेठ के मन में पहले से पाप था, तीन-चार दिन तक स्वयं को रोके रहा, वह वासना से परेशान हो गया और सोचने लगा, ''पहले अपनी बनाने के लिए कहूँगा और यदि नहीं मानी तो बलात्कार करूँगा।'' वह सेठ सुरसुंदरी के पास जाकर बैठ गया। सुरसुंदरी को आश्चर्य और भय हुआ। वह दूर जाकर खड़ी हो गयी। सेठ ने कहा–''राजसुता! बैठो, खड़ी क्यों हो गयी? प्रसन्न तो हो न?'' सुरसुंदरी बोली–''प्रभु की दया से आनंद है।'' सेठ बोला–''राजसुता! मेरी एक प्रार्थना है, क्या स्वीकार होगी?'' सुरसुंदरी ने कहा–''मैं किस योग्य हूँ जो आपकी बात पूरी कर सकूँ?'' सेठ बोला–''आप सब कुछ करने की सामर्थ्य रखती हो।'' सुरसुंदरी ने कहा–''आप कहना क्या चाहते हैं? स्पष्ट कहिये।'' सेठ कहता है–''तुम जानती हो, मैं तुम्हें अपने जहाज में क्यों लाया था?'' सुरसुंदरी बोली–''सुरक्षित स्थान में पहुँचाने के लिए।'' सेठ बोला ''बड़ी भोली बातें करती हो। अच्छा सुनो, मैं तुम्हें हमेशा के लिए अपनी बनाने के लिए लाया था।'' सुरसुंदरी ने कहा–''मैं तो हमेशा आपकी पुत्री ही रहूँगी।'' सेठ झुंझलाकर बोला–''पुत्री नहीं, अपनी पत्नी बनाने के लिए।'' सुरसुंदरी ने घृणा से कहा–''छिः! कैसी अधर्म की बातें करते हो? क्या इसीलिए आश्वासन देकर और प्रतिज्ञा कर मुझे यहाँ लाये हो?'' ही ही करके पापी हँसा और बोला–''पारधी क्या चिड़िया को एक जंगल से ले जाकर दूसरे जंगल में छोड़ने के लिए जाल बिछाता है? उस समय की प्रतिज्ञा एक जाल था। उस जाल को बिछाये बिना क्या यह चिड़िया उसमें फँसती?'' इतना सुनते ही वह

तमतमाकर बोली–''चुप रह पापी।'' सेठ कहने लगा–''सब काम चुपचाप ही होगा।''

अब तो सुरसुंदरी क्रोध से कांपने लगी। उसका क्षत्रियत्व फुंकार उठा था। आँखों से भीषण दीप्ति निकल रही थी। गरजकर बोली–''चाण्डाल! जवान बंद कर। अगर एक भी शब्द आगे बोला तो.....।''

साहूकार भी क्रुद्ध हो उठा, कहने लगा–''नादान औरत! तू मेरे कब्जे में है। मेरी इच्छाओं के सामने तुझे सिर झुकाना चाहिए, सो तो एक तरफ रहा, उल्टा अपनी जान बचाने वाले पर गुर्राती है। देखो! तुम्हारी भलाई इसी में है कि मेरे साथ जीवन का सुख उठाओ, अन्यथा ध्यान रखो कि मुझे जबर्दस्ती अपनी इच्छा पूर्ण करनी होगी।''

सुरसुंदरी ने कहा–''नालायक! सोती सिंहनी को न जगा, नहीं तो वह तुझे कुचल देगी, तेरी इस भैंसे जैसी काया को मिट्टी में मिला देगी। एक पतिव्रता के सामने ऐसी बातें करना अपनी मौत को पुकारना है। सावधान!''

सेठ कहता है–''वाह! ये नाजुक हाथ मुझे मिट्टी में मिलाने के लिए आवें, यह कोमल शरीर मुझे कुचले यही तो मैं भी चाहता हूँ। सुरसुंदरी! ये व्यर्थ बातें बंद करो, आओ और जीवन सफल करो। तुम्हारी चिल्लाहट काम न देगी।''

सुरसुंदरी ने अपने आँचल में छुपी छुरी खींच ली और गरजकर बोली–''यदि एक कदम भी आगे बढ़ायेगा तो खुद को पृथ्वी में धूल चाटता पायेगा।''

बनिया छुरी देखकर भाग गया और बाहर से दरवाजा बंद कर बोला–''देखूँ कैसे मेरी आज्ञा का अनादर करोगी?''

सुरसुंदरी अकेली रह गयी, सोचने लगी–''अब क्या करना चाहिए? हे नाथ!, अबला की रक्षा करो। हाय! अब कैसे मैं अपने सतीत्व रत्न को इस लुटेरे से बचाऊँ? आह! दुनिया में पुरुष कितने नीच और विश्वासघाती होते हैं? माता, बहिन, बेटी का जिन्हें ख्याल नहीं, अपनी प्रतिज्ञा का विचार नहीं, वे क्या पुरुष हैं? छि:! इनसे तो सांप ही अच्छा है, वह कभी विश्वासघात तो नहीं करता। इसीलिए तो लोग कहते हैं कि–'सौंपा सांप भी नहीं खाता।'

हाँ एक उपाय है, आत्महत्या। अरे! आत्महत्या करना भी तो पाप है। आखिर क्या किया जाये?'' शीलभंग के विचार ने उसकी अजब दशा कर दी थी। वह इधर-उधर टहलने लगी। ''नहीं! समुद्र में कूदना ही अच्छा है। दुष्ट मेरे मृतक शरीर को छुए यह भी पाप है। यदि आत्मघात पाप है तो वह पाप का अंधेरा शील रक्षा के प्रकाश में लुप्त हो जायेगा। ओह! जीवन जाये, पति मिलन की इच्छा जाये, माता-पिता के दर्शन की अभिलाषा जाये, सात कौड़ी में राज लेकर पति प्राप्त करने का मनोरथ सदा के लिये मिट्टी में मिल जाये, परंतु मेरा शील अखंड रहे। प्रभो! मेरे शील की रक्षा

करो।'' इत्यादि कहकर सुरसुंदरी ने खिड़की खोली, नवकार मंत्र पढ़ा, पति का ध्यान किया और समुद्र में कूद गयी।

साहूकार थोड़ी देर में तीन-चार लोगों को लेकर वापिस आया, मगर वहाँ उसे सुरसुंदरी नहीं दिखी। उसने खिड़की के बाहर दृष्टिपात किया, समुद्र की उत्ताल तरंगों में सुरसुंदरी डूबूँ-तिरूँ स्थिति में पड़ी थी। यह देखकर उसने नाविकों को आज्ञा दी–''तत्काल ही किश्ती उतारकर उसकी रक्षा करो।''

इतने में बड़ी जोर से आँधी उठी। इस तूफान में नौका स्थिर न रह सकी, उलट गयी और पापी साहूकार के साथ अनेक प्राणी जल में विलीन हो गये। सती के अपमान का बदला हाथों हाथ मिल गया।

सुरसुंदरी का आयुकर्म अभी शेष था, इसलिए उसके हाथ में टूटे जहाज की लकड़ी का तख्ता आ गया और उसी के सहारे वह तैरने लगी। राजसुता आज अनंत समुद्र में तैर रही है, कहीं किनारा नहीं दिखता, हाथ-पैरों की शक्ति क्षीण हो गयी, फिर भी वह जीवन की रक्षा करना चाहती है। उसे सात कौड़ियों से राज्य लेकर पति के दर्शन करना है। इसी आशा को लेकर वह तैरती रही, अंत में थकान के कारण उसे मूर्च्छा आ गयी और वह समुद्र की तरंगों में डूबने-निकलने लगी।

एक जहाज उधर से आगे जा रहा था, उसके स्वामी ने सुरसुंदरी को देखा और तत्काल उसे निकलवा लिया। वैद्य ने उसको देखकर कहा कि प्राण अभी शेष हैं। दासियों ने सेवा-शुश्रूषा की जिससे उसे होश आया। सुरसुंदरी ने स्वयं को जहाज के कमरे में देखकर पूछा–''मैं कहाँ हूँ?'' दासियों ने कहा–''बहन! चिंता न करो, तुम सुरक्षित हो।'' उसने पूछा–''मैं समुद्र में गिरी थी, मुझे वापिस किसने निकाला?'' एक दासी ने कहा–''हमारे मालिक ने निकलवाया है।''

सुरसुंदरी अब स्वस्थ हो गयी थी। वह प्रतिक्रमण करने बैठना चाहती थी, उसी समय जहाज के स्वामी ने उसके कमरे में प्रवेश किया। सुरसुंदरी ने प्रणाम कर कहा–''मैं प्रतिक्रमण करने बैठती हूँ।'' जहाज का स्वामी बोला–''इस आयु में यह वैराग्य कैसा? प्रतिक्रमण की आवश्यकता पाप करने के बाद होती है, अभी नहीं। पाप रूपी मैल के चढ़े बिना प्रतिक्रमण रूपी साबुन से धोओगी किसे?'' सुरसुंदरी ने कहा–''मैं तुम से उपदेश सुनना नहीं चाहती।'' वह बोला–''तो मेरी आज्ञा सुनना चाहती हो?'' सुरसुंदरी बोली–''कुछ भी नहीं।'' वह बोला–''प्राण बचाये उसका यह बदला? एक तुच्छ सी बात भी प्राणों के बदले में नहीं हो सकती?'' सुरसुंदरी ने कहा–''मूर्ख! जिससे स्त्री का जीवन है, उसको तू छीनना चाहता है, उसी शील को, उसी सतीत्व को, पति की धरोहर को तू चाहता है और उसे तुच्छ बात बताता है! तुझे धिक्कार है।'' वह पापी कहता है–''यदि तू सीधे से न मानेगी तो मुझे बल का प्रयोग

करना पड़ेगा।'' सुरसुंदरी हँसकर कहने लगी–''विश्वासघातक पुरुषों को अपने बल का बड़ा घमंड रहता है और वही घमंड उनका सर्वनाश करता है। रावण ने सीता पर बल अजमाया, चूर हो गया; कीचक ने शैलन्श्री का सत लूटना चाहा, मगर वह खुद लुट गया, हमेशा के लिए संसार से उठ गया। अभी कुछ दिन पहले इसी अबला के पास से एक सेठ इसके पति की धरोहर छीनना चाहता था, वह समुद्र में सदा के लिये विलीन हो गया। लगता है आज तेरी बारी है, तू भी अपना जोर आजमा और देख कि क्या परिणाम होता है?''

सती की आँखों से भयंकर ज्योति निकल रही थी। जहाज का स्वामी उसके प्रभाव को न सह सका, ''अच्छी बात है'' कहकर चला गया। उसने सुरसुंदरी को बेचकर धन कमाने का निश्चय किया।

जहाज के स्वामी ने जहाज के लंगर सोवनकुल के किनारे डलवाये। उसने सुरसुंदरी को वहीं एक वेश्या के हाथ बेच दिया। वेश्या ने सुरसुंदरी की सुंदरता को देखकर मुँह माँगे पैसे दिये।

वेश्या सुरसुंदरी को अपने घर ले आयी। सुरसुंदरी यहाँ पर सब कुछ समझ गयी, उसकी आँखों से आँसू बहने लगे, ''हाय! एक दु:ख से छूटते ही दूसरे दु:ख में जा गिरती हूँ, भाग्य का यह विचित्र खेल है।''

वेश्या ने सुरसुंदरी को सुख भोग करने का उपदेश दिया। सुरसुंदरी ने सोचा इससे बात अच्छे से करना चाहिए और यहाँ से निकल भागने का मार्ग तलाशना चाहिए। वह बोली–''माँ! मेरी तबियत खराब हो रही है, मुझे दो-चार दिन आराम कर लेने दो।''

सुरसुंदरी एकांत में बैठी सोच रही थी कि यहाँ से कैसे भागूँ? तभी एक नवयुवती पास आई और कड़ी दृष्टि से ताकती हुयी बोली–''जान पड़ता है कि तू अपना यह अलौकिक सौंदर्य लेकर हमें लूटने आयी है। तुझे हम इस बुरी तरह से मारेंगे कि तू जन्म-जन्म तक न भूलेगी।''

सुरसुंदरी ने कहा–''नहीं-नहीं, मैं यहाँ रहने नहीं आयी हूँ, मैं जबरदस्ती इस नरक में ढकेल दी गयी हूँ। मैं यहाँ आग की भट्टी में भुन रही हूँ। इस भट्टी से निकलने का कोई रास्ता नहीं है। हाय! यदि तुम अपनी भलाई के लिए मुझे यहाँ से निकाल सकती हो, तो मैं तुम्हारा उपकार कभी नहीं भूलूँगी।''

सुरसुंदरी कहती-कहती रो पड़ी। उस युवती को आश्चर्य हुआ। उसने प्रश्न किया–''क्या तुम अपने रूप यौवन का सुख उठाना नहीं चाहती? सुरसुंदरी ने उत्तर दिया–''यदि हो सके तो मैं इसे सदा के लिए नष्ट कर देना चाहती हूँ।''

नवयुवती को सुरसुंदरी की दशा पर दया आ गयी, साथ ही उसने यह भी सोचा कि यदि यह यहाँ से निकल गयी तो मेरा अधिकार और आदर यहाँ रहेगा, अन्यथा

यह उन पर अधिकार कर लेगी। वह बोली–''यदि तुम्हें यहाँ से निकल ही भागना है तो अगली रात को तैयार रहना, मैं सब प्रबंध करके तुम्हें यहाँ से दूर पहुँचा दूँगी।'' सुरसुंदरी ने कहा–''मैं तुम्हारी कृतज्ञ रहूँगी।''

सुरसुंदरी जहाँ रहती थी, उस कमरे का गेट अगली रात को किसी ने खटखटाया। सुरसुंदरी ने दरवाजा खोल दिया। नवयुवती अंदर आयी। उसके हाथ में एक रस्सा था। वह बोली–''देखो, तुम अपनी रक्षा चाहती हो तो इसके सहारे उतर जाओ, सदर दरवाजे से जाना कठिन है। गली के नाके पर तुम्हें एक रथ खड़ा मिलेगा, उसमें बैठ जाना, रथवान तुम्हें सुरक्षित स्थान पर पहुँचा देगा।''

सुरसुंदरी रस्से के सहारे उतरकर चली गयी। नवयुवती ने एक शांति की श्वाँस ली। सुरसुंदरी जाकर रथ में बैठ गयी। रथ चला। सूर्य निकलने तक वह बहुत दूर जंगल में पहुँच गया। रथ थमा। सारथी ने कहा–''नीचे उतर जाओ।'' सुरसुंदरी ने रथ से उतरकर सामने एक काले कलूटे व्यक्ति को देखा तो डर गयी। सारथी उस रूपराशि को देखकर मुग्ध हो गया। उसने कहा–''डरो नहीं, मुझे तुम्हें मार डालने के लिए कहा गया है, परंतु मैं तुम्हें सुख से रखूँगा। रथ में बैठ जाओ। मैं तुम्हें अपने घर ले चलूँगा।''

सुरसुंदरी ''अच्छा'' कहकर रथ के पीछे की तरफ चली गयी। सारथी ने उसे समुद्र की ओर भागते देखा। इतना करीब था कि, वह उसे पकड़ ले पर उसे ठोकर लगी और वह गिर पड़ा। सारथी उठकर वहाँ पहुँचे इतने में सुरसुंदरी ण्मोकार मंत्र का जाप करती हुयी समुद्र में कूद पड़ी। एक मगरमच्छ उसको निगल गया। मगर सुरसुंदरी का जीवन तो अभी शेष है। उसे तो सात कौड़ी के सहारे राज्य लेना है।

जिस मगरमच्छ ने सुरसुंदरी को निगला था, वही मच्छ एक धीवर के जाल में फँस गया। धीवर ने मच्छ का पेट चीरा। सुरसुंदरी मूर्च्छित दशा में अंदर से निकली। धीवर की स्त्री ने उसे सचेत किया। धीवर ने इस देव-दुर्लभ रूप की मूर्ति को ले जाकर राजा को भेंट किया। उस राजा ने उसकी आद्योपान्त कथा सुनकर उसे अपने अंत:पुर में भिजवा दिया।

सुरसुंदरी के रूप से राजमहिषी को ईर्ष्या हो आयी, उसने सोचा–''यदि यह अंत:पुर में रहेगी तो मेरा सौभाग्य लूट लेगी, मेरे प्राणनाथ को अपने वश में कर लेगी, अत: किसी भी तरह से इसे अपने मार्ग से दूर करना चाहिए।'' महिषी ने अपने मनोभाव दबाकर सुरसुंदरी को अपने पास बैठाया और पूछा–''बहन! तुम कौन हो? कहाँ की रहने वाली हो? यहाँ कैसे आयी? तुम तो उच्च कुल की मालूम होती हो।''

ऐसे प्रेमपूर्ण शब्द सुनकर सुरसुंदरी का गला भर आया। महिषी को भी दया आ गयी। ''अहा! कैसा भोला चेहरा है।'' उसने सुरसुंदरी के आँसू पोंछे और कहा–''बहिन! तुम सब बातें कहो, मैं यथासंभव तुम्हारी सहायता करूँगी।''

सुरसुंदरी ने अपनी सारी कथा शुरू से आखिर तक कह सुनायी। उसे सुनकर राजमहिषी को दु:ख हुआ। उसने कहा–''बहिन! यहाँ भी तेरे शील को लूटने का प्रयत्न हुए बिना नहीं रहेगा, अत: यदि तुम अपनी भलाई चाहती हो तो यहाँ से जल्दी निकल जाओ। मैं तुम्हें किसी तरह अंत:पुर से निकलवा दूँगी।''

सुरसुंदरी वहाँ से निकल गयी, भयानक वन में भागी जा रही है, रास्ता छोड़ दिया है क्योंकि रास्ते-रास्ते जाने से वापिस पकड़े जाने का भय है। कर्मों ने किसी को नहीं छोड़ा, चाहे तीर्थंकर हों या सतियाँ। आज सुरसुंदरी भी इन्हीं कर्मों की मारी ऐसी विपत्तियाँ उठाती हुयी चली जा रही है।

वह चलते-चलते थककर गिर पड़ी। उसी समय कोई विद्याधर विमान में बैठकर उधर से जा रहा था। उसने सुरसुंदरी को इस दशा में पड़े देखा। उसने तत्काल ही विमान ठहराकर सुरसुंदरी को अपने विमान में बिठा लिया और फिर अपने घर की ओर चला।

शीतल पवन लगने से थोड़ी देर में सुरसुंदरी को होश आ गया। उसने विमान में अपने व एक पुरुष के सिवा और किसी को न देखा, वह समझी कि नई आपत्ति आ गयी। वह नीचे कूदने का प्रयास करती है, परंतु उठ नहीं पाती। तभी विद्याधर बोला–''बहिन! अभी उठने का प्रयत्न न करो। तुम्हारा शरीर बहुत शिथिल हो रहा है।''

सुरसुंदरी ने कहा–''मैं किसी पुरुष के साथ नहीं जाना चाहती। मुझे उतार दो, अन्यथा मैं जान दे दूँगी।'' विद्याधर बोला–''बहिन! मैं नहीं समझ पा रहा हूँ कि तुम्हें पुरुषों से ऐसी घृणा क्यों है?'' सुरसुंदरी उत्तेजित हो उठी और कहने लगी–''विश्वास घातक और दुराचारियों से जितना दूर रहा जाये उतना ही अच्छा है।'' विद्याधर बोला–''बहिन! मैं प्रभु को साक्षी मानकर प्रतिज्ञा करता हूँ कि, मैं तुम्हें अपनी सगी बहिन के सिवा और कुछ नहीं समझूँगा। तुम विश्वास करो और अपनी सारी कथा आद्योपांत सुनाओ।''

सुरसुंदरी ने उसे धर्मात्मा समझकर अपनी सारी कथा सुनायी। सुनकर विद्याधर की आँखों में आंसू आ गये। उसने कहा–''कोई भय नहीं है बहिन! अब तुम को कोई दु:ख नहीं होगा।''

विद्याधर और सुरसुंदरी ने ढाई द्वीप की यात्रा की। लौटते समय वे मुनि के दर्शनार्थ एक जगह उतरे। दर्शन के बाद सुरसुंदरी ने पूछा–''मैं कब अपने पति की

आज्ञा का पालन कर सकूँगी और कब मुझे उनके दर्शन होंगे? कहाँ होंगे?'' मुनिराज ने संक्षेप में उत्तर दिया–''बेनाट द्वीप में तुझे तेरा स्वामी मिलेगा।'' सुरसुंदरी और विद्याधर मुनि को नमस्कार कर विद्याधर के राज्य में गये।

विद्याधर और उसकी पत्नियाँ सुरसुंदरी का बड़ा आदर करते। उसने वहाँ रहकर तीन-चार विद्याएँ भी विद्याधर से सीख लीं। जब साधना से उसका विद्याओं पर पूर्ण अधिकार हो गया तब उसने विद्याधर से कहा–''अब मुझे अपना कार्य सिद्ध करने बेनाट द्वीप जाना है, वहाँ पहुँचाने की कृपा और कीजिए।'' विद्याधर बोला–''बहिन! मैं तुम्हारे स्वामी को खोज लाऊँगा। तुम्हारे जाने से हमारा घर शून्य हो जायेगा।'' सुरसुंदरी ने कहा–''बंधु! मुझे भी आप सबको छोड़ने में दु:ख हो रहा है, परंतु स्वामी के बिना यहाँ रहना इससे भी ज्यादा दु:खदायी है। अत: मुझे बेनाट द्वीप पहुँचा दीजिए।''

सुरसुंदरी बेनाट द्वीप आते ही रूप परिवर्तिनी विद्या के द्वारा पुरुष बनकर रहने लगी। उसने सात कौड़ियों के चने खरीदे, उन्हें लेकर शहर के बाहर जा बैठी। पहले ही दिन उसे तीन कौड़ियों का लाभ हुआ, दूसरे दिन पाँच कोड़ियों का और इसी तरह धीरे-धीरे व्यापार बढ़ा। अब उसने पानी का एक घड़ा भी रखना शुरू कर दिया। लकड़हारे आते और वहीं पानी पीते, बदले में एक लकड़ी का टुकड़ा निकाल कर डाल देते। इस तरह शाम तक पाँच-सात गट्ठों जितनी लकड़ियाँ हो जातीं। अब उसने लकड़ी का व्यापार भी शुरू कर दिया। थोड़े ही दिनों में वह एक बड़ी व्यापारी बन गयी। वहाँ रहते उसको कई वर्ष हो गये।

एक बार कहीं से एक चोर आया और विद्याबल से चोरियाँ करने लगा। लोग उससे बहुत परेशान हो गये। एक दिन वह चोर राजकन्या को भी उठा ले गया। राजा ने ढ़िंढोरा पिटवाया, जो कोई चोर को पकड़कर लायेगा, उसे राजसुता सहित आधा राज्य दिया जायेगा।

कई लोगों ने चोर को पकड़ने का प्रयास किया, परंतु सभी असफल रहे। अंत में विमलवाहन (सुरसुंदरी ने अपना नाम विमलवाहन रखा था) ने बीड़ा उठाया। रात में बैठकर उसने परविद्याहारिणी, शत-हस्तीबलदायिनी और अदृश्यकारिणी विद्या का स्मरण किया। उनका आश्रय लेकर वह चोर को पकड़ने चला। विमलवाहन चोर के गुप्त स्थान में अदृश्यकारिणी विद्या द्वारा अदृश्य होकर पहुँचा। वहाँ उसने चोर को कैद किया और राजसुता तथा चोर को राजा के सामने उपस्थित किया। राजा ने घोषणा के अनुसार विमलवाहन के साथ राजसुता का विवाह कर दिया और अपना आधा राज्य भी सौंप दिया।

विमलवाहन ने आधा राज्य लेकर सबसे पहले बंदरगाह का प्रबंध किया। उसने आज्ञा दी कि किसी भी जहाज के स्वामी को हमारे सामने उपस्थित किये बिना शहर में न आने दिया जाये और कर वसूल करने में शिथिलता न हो।

कार्य इसी तरह चलता रहा। एक दिन अमरकुमार के जहाज बेनाट के किनारे आ लगे। माल का कर चुकाकर जब वह शहर में जाने को तैयार हुआ तब कुछ आदमियों ने उसे रोका और कहा–''पहले तुम्हें राजा के पास चलना होगा।'' ''मुझे बाद में राजा के पास तो जाना ही है।'' कहकर अमरकुमार ने चलने को कदम बढ़ाया। सिपाही ने रोककर कहा–''हमारे नवीन राजा की यही आज्ञा है कि शहर में जाने से पहले जहाज के स्वामी उनके सामने पेश किये जायें।''

विवश हो अमरकुमार को सिपाही के साथ विमलवाहन के पास जाना पड़ा। विमलवाहन उसे देखकर चौंक पड़ा, सोचने लगा–''हाय! क्या यही मेरे स्वामी का मुख है?''

अमरकुमार के अंत:करण में भी आंदोलन उठा, ''यह वही मुख तो है, नेत्र भी वे ही हैं। वह मुख तो भुलाए नहीं भूलता। हा! मेरे ही कारण वह मुख सदा के लिए राक्षस के पेट में विलीन हो गया।'' उसकी आँखों से दो-चार आँसू गिर गये।

विमलवाहन ने भी उन आँसुओं को देखा। उसने निश्चय कर लिया कि यह अमरकुमार ही है, और कोई नहीं। विमलवाहन की आज्ञा से वहाँ एकांत हो गया। अमरकुमार से विमलवाहन ने बैठने का इशारा किया। वह बैठ गया। विमलवाहन ने पूछा–''आप कहाँ के रहने वाले हैं? आपका मुख ऐसा मलिन क्यों है?'' अमरकुमार के हृदय में यह प्रश्न तीर सा चुभा। क्या उत्तर देता कि इस दशा का क्या कारण है? जो उसकी निद्रा का स्वप्न हो रही थी। अंत:करण में हाहाकार उठ रहा था उसी को, हाय! उसी को, मैं राक्षस के आहार के लिए छोड़ आया हूँ। इसी दु:ख से मेरी यह दशा हो गयी है।

विमलवाहन के मन की दशा भी ठीक न थी, तो भी मन को रोक रखा था। उसने फिर पूछा–''सेठ! बताओ, तुम्हारी इस दशा का क्या कारण है? अगर हो सका तो मैं तुम्हारे उस कारण को हटाऊँगा, तुम्हारी सहायता करूँगा।''

अमरकुमार भर्राई आवाज में बोला–''असंभव! महाराज! असंभव! दु:ख का कारण मिटना असंभव है। जिसको मैंने मूर्खतावश राक्षस का आहार बनने दिया, हाय! अब कहाँ है? नहीं, चली गयी, वह हमेशा के लिए मुझे छोड़कर चली गयी। नहीं महाराज असंभव! सर्वथा असंभव है....।''

विमलवाहन अमरकुमार की दशा देख, उसकी बातें सुन दूसरे कमरे में चला गया। ''नहीं, सर्वथा संभव है।'' कहती हुयी सुरसुंदरी आकर अमरकुमार से लिपट गयी। आह! कैसा स्वर्गीय सुख है। बारह वर्ष के बाद आज बिछड़े हुए हृदय पुन: मिले हैं। दोनों एक-दूसरे से लिपटकर बहुत देर तक रोते रहे। अंत में अमरकुमार ने आँसू पोंछकर कहा–''प्रिये! अपराध मेरा अक्षम्य है तो भी क्षमा करो।''

सुरसुंदरी ने रोते-रोते कहा–''नाथ! फिर कभी ऐसी परीक्षा में मत डालना। आपकी आज्ञानुसार सात कौड़ियों द्वारा प्राप्त किया हुआ यह राज्य आपके चरणों में अर्पित है।''

तत्पश्चात् उन्होंने राजा को सर्व वृत्तांत बताया। राजा ने अपनी पुत्री गुणसुंदरी जिसका विवाह सुरसुंदरी (विमलवाहन) के साथ कराया था, का विवाह अमरकुमार के साथ कर दिया। अमरकुमार पत्नियों के साथ चम्पापुरी वापस आया और वहाँ आनंद से गृहस्थ धर्म पालते हुये अपना काल बिताने लगा।

एक दिन मुनि का उपदेश सुनकर उन्हें वैराग्य हुआ और उन्होंने दीक्षा ग्रहण कर ली। अंततः सुरसुंदरी और अमरकुमार ने संसार भ्रमण का दुःख मिटाने के लिए तपश्चरण करके अपना जीवन सफल किया।

धर्मस्नेही बंधुओं! एक नारी ही है जो विपत्ति में डालने वाले को भी सम्पत्ति के फूल खिलाकर देती है। अतः हमें कायरता का कार्य नहीं करना चाहिए, बल्कि सती सुरसुंदरी की भांति साहस व स्वाभिमान के साथ जीवन यापन करना चाहिए।

पुण्णे दएण कस्सइ गुणे, असंते वि होइ जसकित्ती।
पाओ दएण कस्सइ, सगुणस्स वि होइ जस धाओ॥728॥ भ.आ.

पुण्य के उदय से किसी में गुण न होते हुए भी उसका यश फैलता है और पाप के उदय में गुणवान का भी अपयश होता है।

भक्ति की शक्ति

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में सिंधु नामक देश था। उस देश में वैशाली नगरी थी। इस नगरी में चेटक राजा राज्य करते थे। इनकी रानी का नाम सुभद्रा था। चेटक के दस पुत्र थे और प्रियकारिणी, मृगावती, सुप्रभा, प्रभावती, चेलना, ज्येष्ठा व चंदनबाला ये सात पुत्रियाँ थीं।

पाँच पुत्रियों के विवाह हुये थे। ज्येष्ठा ने यशस्वती नामक आर्यिका के पास दीक्षा ली थी। चंदनबाला ने यशस्वती आर्यिका से धर्मोपदेश सुनकर सम्यग्दर्शन के साथ श्राविका के व्रत ग्रहण किये थे।

एक दिन चंदनबाला अशोक वन में खेल रही थी। उसी समय आकाश मार्ग से सुवर्णाम नगर का राजा मनोवेग अपनी मनोवेगा स्त्री के साथ जा रहा था। उसकी दृष्टि चंदनबाला पर पड़ी। उसे देखते ही वह पूर्व संस्कारों के कारण मोहित हो गया। उसने पत्नी को राजमहल में छोड़ा और रूपिणी विद्या के द्वारा अपना दूसरा रूप बनाकर अशोक वन में आया। खेलती हुयी चंदनबाला को लेकर वह अपने नगर की ओर चल दिया।

इधर मनोवेगा को अपने पति पर शक हुआ। उसने आलोकिनी विद्या से पति मनोवेग को रोती हुयी सुंदरी के साथ आते हुए देखा। वह तुरंत गुस्से में आ गयी। उसने अपने पति का पीछा किया। सबसे पहले उसने पति जिस सिंहासन पर बैठा था, उसमें लात मारी, जिससे रूपिणी विद्या वहाँ से भाग गयी। मनोवेग का असली रूप सामने आया। वह पत्नी से डरकर भागने लगा। मनोवेगा ने तेजी से पीछा किया और कहा–''जीवन चाहते हो तो इस सुंदरी को छोड़ दो।''

पत्नी से डरे हुए मनोवेग ने पर्णलघ्वी विद्या की सहायता से चंदनबाला को भूतरमण नामक वन में ऐरावती नदी के दाहिने किनारे पर छोड़ दिया। उस वन में चंदनबाला ने णमोकार मंत्र बोलते हुए रात्रि बितायी।

दूसरे दिन कालक नामक भील वहाँ आया। चंदनबाला ने डरकर आभूषण उतारकर उसे दे दिये और धर्म का उपदेश भी दिया। आभूषण पाकर भील बहुत संतुष्ट हुआ। वह भील चंदनबाला को भीमकूट पर्वत पर सिंह नामक भीलों के सरदार के पास ले गया।

भीलों का सरदार कामुक व पापी था। चंदनबाला को देखते ही उसका हृदय काम से भर गया। सरदार की माँ ने उसके भावों को समझकर उससे कहा–''यह देवी है।

इसे छूने का विचार भी मत करना, नहीं तो ये दु:ख संताप देगी।'' माँ की बात सुनकर भील डर गया। पश्चात् चंदनबाला कुछ दिन सरदार की माँ के साथ रही।

एक दिन वत्स देश के कौशाम्बी नगर के सेठ वृषभसेन का मित्रवीर नाम का कर्मचारी सरदार के पास आया और उसने चंदनबाला मित्रवीर को सौंप दी।

मित्रवीर वापस कौशाम्बी आया। उसने चंदनबाला को बेचना चाहा, तब भारी भीड़ में उसकी बोलियाँ लगायी जाने लगीं। संयोगवश सेठ वृषभसेन उधर से जा रहा था। उसने सबसे ज्यादा बोली लगाकर उसे खरीद लिया और उसे लेकर घर आया। उसने चंदनबाला से कहा–''बेटी! यह अपना ही घर समझो।'' चंदनबाला वृषभसेन को पिता और सेठानी सुभद्रा को माता समझती थी। सेठ भी उसे बेटी कहते-कहते न थकता था। समय निकलता जा रहा था।

एक दिन सेठ को चंदनबाला पानी का लोटा दे रही थी, उस समय उसके बाल खुलकर नीचे बैठे हुए सेठ पर फैल गये। संयोग से सेठानी ने दोनों को इस हाल में देख लिया। सेठानी सोचने लगी–''कितने बड़े धोखेबाज हैं वृषभसेन, मुँह से बेटी कहते हैं और मन में भाव खराब रखते हैं, और इस कलमुँही को देखो, पिता कहती है और गंदे खेल खेलती है।''

वह क्रोध से होंठ दबाकर चुपचाप चली गयी, परंतु प्रतिशोध लेने को तैयार थी। सेठ के घर से बाहर जाते ही उसने पहले चंदनबाला के बाल काट दिये, फिर उसे सांकलों से बांधकर तहखाने में डाल दिया।

सेठ घर आये, उन्होंने चंदनबाला के बारे में पूछा–''सेठानी! बेटी दिखायी नहीं दे रही, कहाँ है?'' सेठानी ने कहा–''मुझे नहीं पता।'' सेठ ने सोचा यहीं कहीं गयी होगी, परंतु जब वह शाम तक नहीं आयी, तब सेठ ने उसे कई जगह तलाश किया पर वह नहीं मिली। तब किसी अनहोनी के भय से सेठ चिंता में पड़ गये।

सेठ के जाने के बाद सेठानी चंदनबाला को कोदों का भोजन देती थी, स्वयं जाकर मारण ताड़न भी करती थी। चंदनबाला संस्कारित थी, इसलिए विचार करती 'मेरे पूर्व पाप कर्म का ऐसा ही उदय है, यह सेठानी तो निमित्त मात्र है।' इसलिए उसने अपने समाचार उस देश के राजा शतानीक के पास भी नहीं भेजे, जो उसकी बड़ी बहन मृगावती के पति थे। सब कर्मों का खेल शांतभाव से सहती रही।

एक दिन मुनि महावीर आहार के लिए कौशाम्बी आये। झरोखे से चंदनबाला को उनके दर्शन हुए और उन्हें आहार देने के भाव हुए। उसके आगे बढ़ते ही उसके सारे बंधन स्वत: टूट गए, सिर पर लंबे घने काले बाल आ गये। उसने विधिपूर्वक पड़गाहन कर आहार कराया। आहारदान के प्रभाव से मिट्टी का सकोरा सोने का हो गया और कोदों की दिव्य खीर बन गयी। देवों ने उसका सम्मान व पञ्च आश्चर्य किए।

चंदनबाला के आहारदान की चर्चा तुरंत ही चारों ओर फैल गयी। राजा शतानीक, रानी मृगावती समाचार सुनते ही वहाँ आये, चंदनबाला से मिले और पूछा–''यहाँ कैसे पहुँची?'' तब चंदनबाला ने उन्हें विस्तार से आपबीती सुनायी।

घबराये हुए सेठ-सेठानी चंदनबाला के चरणों पर गिरकर क्षमा याचना करने लगे। चंदनबाला ने कहा–''आपका कोई दोष नहीं।'' और क्षमा कर दिया। राजा चेटक भी समाचार मिलते ही आये, उन्होंने चंदनबाला से कहा–''बेटी! घर चलो।''

चंदनबाला ने कहा–''पिताजी! घर में ही तो थी, परंतु कर्मों ने रहने नहीं दिया। जो कुछ मेरे साथ हुआ सब कर्मों का खेल था। इसलिए हे पिताजी! अब इससे ज्यादा कर्मों को सहने की शक्ति मुझ में नहीं है।'' चेटक ने कहा–''बेटी! अब तो पाप का समय बीत गया है।'' चंदनबाला बोली–''आगे का पता नहीं, कर्म कब कैसे उदय में आये? कौन जानता है? पिताजी! मैं तो अब महावीर स्वामी की शरण में जाऊँगी और अपनी आत्मा का कल्याण करूँगी।''

इसके बाद चेटक, चंदनबाला आदि सभी श्री महावीर स्वामी के पास गये। चंदनबाला ने उन्हीं के पास दीक्षा ले ली। राजा चेटक ने गणधर से प्रश्न किया–''भगवन्! चंदना पर ऐसे कष्ट क्यों आये? राजपुत्री होकर भी उसे यातनाएं भोगनी पड़ीं।'' गणधर भगवान ने बताया–

जम्बूद्वीप के, भरतक्षेत्र के मगध देश में वत्सा नामक नगरी है। प्रसेनिक मगध का राजा था। इसी नगरी में अग्निभूति ब्राह्मण रहता था। उसकी दो पत्नियाँ थीं–एक ब्राह्मण और दूसरी वैश्य जाति की। ब्राह्मण जाति की स्त्री से उसे शिवभूति पुत्र और चित्रसेना नामक पुत्री की प्राप्ति हुयी।

शिवभूति (मनोवेग का जीव) का विवाह सोमशर्मा ब्राह्मण की बेटी सोमिला (चंदनबाला का जीव) से हुआ था तथा चित्रसेना का विवाह देवशर्मा ब्राह्मण से हुआ था।

कुछ वर्षों के बाद चित्रसेना विधवा हो गयी, इसलिए वह अपने पुत्रों को लेकर भाई शिवभूति के घर आ गयी। सोमिला को यह अच्छा नहीं लगा। सोमिला चित्रसेना को हमेशा ताने मारती थी। चित्रसेना कर्मों का उदय जानकर उसके अत्याचारों को सहन करती थी। सोमिला ने सब ओर यह कह दिया कि चित्रसेना का शिवभूति के साथ गलत संबंध है। चित्रसेना ने इस आरोप को भी सह लिया, परंतु मन में निदान बांधा कि इस झूठे आरोप का बदला अवश्य लूँगी।

एक दिन सोमिला ने शिवगुप्त मुनि को आहार दिया। शिवभूति ने इसके लिए उसे डांटा, तब सोमिला ने मुनि का स्वरूप समझाकर उसे शांत कर दिया। फिर शिवभूति स्वयं भी आहार देने लगा और आहारदान की अनुमोदना करने लगा।

शिवभूति मरकर बंगदेश के कांतपुर नगर में राजा सुवर्णवर्मा और रानी विद्युल्लेखा का महाबल नामक पुत्र हुआ। सोमिला मरकर अंगदेश के राजा श्रीषेण और रानी धनश्री की कनकलता नाम की बेटी हुयी।

सुवर्णवर्मा और धनश्री भाई-बहन थे। महाबल और कनकलता का विवाह होना तय किया गया था, परंतु उनके माता-पिता ने दोनों से कहा–''जब तक विवाह नहीं होता है तब तक आप दोनों अलग-अलग रहना।'' परंतु दोनों काम का ताप सहन न करने के कारण छिप-छिप कर आपस में मिलते रहे। जब दोनों के माता-पिता को पता लगा, तब उन्होंने कहा–''आप दोनों ने हमारी मर्जी के विरुद्ध कार्य किया है, इसलिए हमारे राज्यों से दूर चले जाइये।''

वे दोनों वहाँ से दूसरे देश चले गए और प्रत्यन्त नगर में रहने लगे। वे दोनों परिश्रम करके भोजनादि व्यवस्था कर प्रसन्न रहने लगे। एक दिन उन्होंने मुनिगुप्त मुनिराज को भक्तिपूर्वक आहार दान दिया।

एक दिन महाबल चैत्रमास में वन में घूमने गया। वहाँ एक सांप के काटने से उसकी मृत्यु हो गयी। महाबल की मृत्यु से कनकलता बहुत दु:खी हुयी और उसने भी तलवार से आत्मघात कर जीवन समाप्त किया।

पलाशद्वीप के पलाशनगर में महाबल नामक राजा था। उसकी रानी का नाम काञ्चनलता था। कनकलता के जीव ने इन दोनों की पद्मलता नाम की पुत्री के रूप में जन्म लिया। भरत क्षेत्र के अवन्ति देश में उज्जयिनी नामक नगर है। इस नगर में धनदेव सेठ रहता था। उसकी पत्नी का नाम धनमित्रा था। महाबल का जीव इनका नागदत्त नाम का पुत्र बना। नागदत्त की अर्थस्वामिनी नाम की छोटी बहन थी।

एक बार धनदेव ने धनमित्रा को छोड़ दिया और दूसरी स्त्री से विवाह कर लिया। धनमित्रा दु:खी होकर दोनों संतानों को लेकर दूसरे देश चली गयी। वहाँ उसे शीलदत्त मुनि के दर्शन हुए। धनमित्रा ने ज्ञान प्राप्त करने के लिए नागदत्त को मुनि चरणों में सौंप दिया। नागदत्त ने मुनिराज से श्रावक के व्रत लिए और श्रावक धर्म का पालन करते हुए शास्त्रों का अभ्यास करने लगा। धीरे-धीरे वह उत्तम विद्वान और महाकवि बन गया। उसने शास्त्रों की व्याख्या सुनाकर बहुत धन कमाया, माँ और बहिन का भरण पोषण करने लगा, नंदी गांव के सेठपुत्र से अपनी बहिन का विवाह कराया।

एक दिन नागदत्त माँ से आज्ञा लेकर पिता धनदेव से मिलने गया। पिता के चरण स्पर्श किए। पिता ने भी उसका स्वागत सत्कार किया। फिर नागदत्त ने पिता से अपने हिस्से का धन माँगा। तब पिता ने कहा–''हे पुत्र! अपना सारा धन पलाशद्वीप के पलाशनगर के राजा महाबल के पास रखा है, उनसे लाकर तू ले ले।''

नागदत्त अपने सौतेले भाई नकुल और सहदेव को लेकर पलाशद्वीप पहुँचा। वहाँ उसने देखा कि उस द्वीप में कोई मनुष्य नहीं है। वो महल में गया और उसने एक अकेली कन्या को बैठे देखा। उसने उससे पूछा–''यह नगर ऐसा क्यों हो गया और तुम कौन हो? इसके उत्तर में कन्या ने बताया कि–''पहले इस नगर के दो स्वामी थे, उनमें से एक क्रोधी था, उसने राक्षस विद्या सिद्ध की थी, इसलिए वह राक्षस नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसने क्रोध में आकर आधे हिस्सेदार राजा महाबल और नगर को नष्ट कर दिया। मैं राजा महाबल और रानी काञ्चनलता की पद्मलता पुत्री हूँ। उसने मुझे अपनी बेटी समझकर छोड़ दिया है। इस समय वह कहीं गया है, अभी मुझे लेने के लिए आयेगा।''

नागदत्त पास ही रखी तलवार को लेकर मुख्यद्वार के पास छिप गया। ज्योंहि वह राक्षस आया, उसने उस तलवार से उस पर प्रहार किया। वह घायल राक्षस णमोकार मंत्र बोलता हुआ पृथ्वी पर गिर पड़ा। मरणासन्न राक्षस से णमोकार मंत्र सुनकर नागदत्त सोचने लगा–''यह मैंने क्या किया? मैंने एक श्रद्धानी जैनी को मारा है, मुझसे कितना बड़ा पाप हो गया।'' यह सोचकर उसने तलवार को फेंका और राक्षस से पूछा–''हे भद्र! आप कौन हैं? आपका धर्म क्या है?''

उस मरणासन्न राक्षस ने कहा–''मैं विद्याधर हूँ, जैन धर्म का पक्का श्रद्धानी श्रावक हूँ, लेकिन क्रोधी हूँ। देखो, क्रोध के कारण मैं मृत्यु को प्राप्त हो रहा हूँ। इसलिए क्रोध नहीं करना चाहिए।'' राक्षस ने नागदत्त से पूछा–''आप कौन हैं?''

नागदत्त ने कहा–''मैं पिता के कहने से धन वापिस पाने को यहाँ आया था। महल के भीतर बैठी कन्या को दु:खी देखकर उसकी रक्षा की दृष्टि से आप पर प्रहार किया। मुझे खेद है।'' कहते हुए उसकी आँखों में आँसू आ गये। राक्षस ने कहा–''बेटा! रोओ मत, तुम्हारी जगह मैं होता तो मैं भी ऐसा ही करता।'' नागदत्त ने क्षमा माँगी। राक्षस ने कहा–''बेटा! तुम्हारा दोष नहीं बल्कि हमारे ही कर्म का उदय था।'' नागदत्त ने उसका समाधिमरण कराया, जिससे राक्षस स्वर्ग को प्राप्त हुआ।

इसके बाद नागदत्त अपना धन और पद्मलता को लेकर जहाज पर बैठकर आने वाला था, परंतु नकुल और सहदेव फुर्ती से जहाज में बैठकर धन और पद्मलता को लेकर चले गये। जब वे उज्जयिनी पहुँचे तब पिता धनदेव ने पूछा–''नागदत्त कहाँ है?'' उन्होंने कह दिया 'हमें नहीं पता।'

इधर नागदत्त की माँ पुत्र के लिए बेचैन थी। उसने शीलदत्त मुनिराज से पूछा–''मेरे बेटे नागदत्त के साथ क्या हुआ है?'' मुनिराज को दया आयी। उन्होंने अवधिज्ञान से जानकर कहा–''घबराओ मत, आपका पुत्र बिना कष्ट के शीघ्र ही आपके पास आयेगा।'' संतुष्ट होकर धनमित्रा घर गयी।

इधर नागदत्त विचार मग्न था कि ''मनुष्य धन के लिए क्या-क्या पाप नहीं करता? देखो, मेरे भाई धन के लालच में मुझे यहाँ छोड़कर चले गये। 'लालच बुरी बला है' इसमें भाइयों का क्या दोष? मैंने ही पूर्व जन्म में किसी को धोखा दिया होगा, उसी का परिणाम है।'' इत्यादि चिंताओं से घिरा वहीं बैठ गया।

संयोग से एक जैनी विद्याधर मंदिर में आया। उसने जिन दर्शन के पश्चात् जिनभक्त नागदत्त को चिंताग्रस्त देखकर पूछा–''हे साधर्मी बंधु! ऐसे उदास क्यों बैठे हो?'' उत्तर में नागदत्त ने आपबीती सुना दी। विद्याधर ने नागदत्त की सहायता की, उसे बहुत सारे रत्न दिये और अपने विमान में बिठाकर मनोहर उद्यान में उतार दिया।

नागदत्त वहाँ से बहन के घर गया। भाई-बहन प्रेम से मिले। एक दिन अर्थस्वामिनी के ससुर ने नागदत्त से कहा–''नागदत्त! धनदेव अपने पुत्र नकुल के लिए हमारी पुत्री का हाथ माँग रहे हैं, परंतु हम निर्धन कैसे जायें?'' नागदत्त ने उन्हें रत्न दिये और कहा–''जाइए और बेटी के विवाह की बात पक्की कीजिए।'' इस पर उन्होंने कहा–''जिसने आपके साथ धोखा किया है, ऐसे धोखेबाज के साथ कन्या ब्याहने की अपेक्षा उसका जीवनभर कुंवारी रहना ठीक है।'' नागदत्त बोला–''कन्या का विवाह कहीं न कहीं तो करना ही है। जब वे चलाकर हाथ माँग रहे हैं तो अपनी कन्या दे दीजिए।'' इसके बाद भी वे विवाह करने को तैयार नहीं हुए, तब नागदत्त ने कहा–''चलिए, मैं आपके साथ चलता हूँ।''

नागदत्त और अर्थस्वामिनी के ससुर ने उज्जयिनी पहुँचते ही मुनि के दर्शन किये। पश्चात् नागदत्त राजा के पास गया और उन्हें दिव्य रत्न भेंट किये। राजा ने प्रसन्न होकर पूछा–''हे नागदत्त! कहाँ से आ रहे हो? कहाँ गये थे?'' नागदत्त ने सारी घटना सुना दी। सुनकर राजा को धनदेव पर बहुत गुस्सा आया। उसने धनदेव और उसके पुत्रों को बंदी बनाने का आदेश दिया। परंतु नागदत्त ने उसे ऐसा करने के लिए मना किया। राजा ने नागदत्त की अच्छाइयाँ देखकर उसको बहुत सारे धन के साथ 'नगरसेठ' के पद से सम्मानित किया, नागदत्त की माँ को बुलवाया और पद्मलता के साथ नागदत्त का विवाह कराया।

नागदत्त का सम्मान देखकर धनदेव, उसकी स्त्री और बेटे राजसभा में आये तथा ''क्षमा करो–क्षमा करो'' कहने लगे। नागदत्त ने धर्म का उपदेश देकर उन्हें श्रावक बनाया। नागदत्त ने समुद्र यात्रा से पूर्व समुद्र के किनारे पर सकुशल लौटने पर भगवान की भव्य पूजा करने का निर्णय किया था। तदनुसार उसने भव्य जिनपूजन की, जीवन पर्यन्त श्रावक धर्म का पालन किया और अंत में सन्यास धारण किया। यहाँ देह छोड़कर सौधर्म स्वर्ग में ऋद्धिधारी बड़ा देव बना। पद्मलता भी उसी स्वर्ग में देवी बनी। अर्थस्वामिनी भी स्वर्ग गयी।

नागदत्त का जीव स्वर्ग से आकर भरतक्षेत्र के विजयार्ध पर्वत पर शिवशंकर नगर में विद्याधर राजा पवनवेग और रानी सुवेगा का जीव मनोवेग नामक पुत्र हुआ। नागदत्त की छोटी बहन स्वर्ग से आकर यहाँ मनोवेगा हुयी। देखो कर्म की लीला, पूर्व जन्म के भाई-बहन यहाँ पति-पत्नी बने हैं। राक्षस विद्याधर का जीव स्वर्ग से आकर राजा चेटक बना है। नागदत्त की माँ धनमित्रा स्वर्ग से आकर राजा चेटक की सुभद्रा रानी बनी है। पद्मलता का जीव स्वर्ग से आकर राजा चेटक की सबसे छोटी पुत्री चंदनबाला बना है। नकुल का जीव संसार में भटकता हुआ यहाँ सिंह नाम का भीलों का सरदार बना। सहदेव का जीव भटकता हुआ यहाँ मित्रवीर नाम से सेठ वृषभसेन का नौकर बना है। नागदत्त का पिता धनदेव का जीव स्वर्ग से आकर यहाँ सेठ वृषभसेन बना है। पूर्व में जो चित्रसेना थी, वह संसार में अनेक जन्म धारण करने के बाद अब यहाँ सेठ वृषभसेन की सुभद्रा नाम की पत्नी बनी है।

पूर्वभव के स्नेह के कारण मनोवेग ने चंदनबाला का अपहरण किया था। पूर्व के चित्रसेना के भव में बांधे निदान के कारण सेठानी सुभद्रा ने इस जन्म में चंदनबाला को कष्ट पहुँचाये थे।

मनोवेग इसी भव में वैराग्य धारण कर मोक्षपद प्राप्त करेगा। चंदनबाला ने ज्ञान व तप के प्रभाव से गणिनी आर्यिका का पद प्राप्त किया व समाधिपूर्वक देह त्यागकर अच्युत स्वर्ग में देव बनी और कुछ ही भवों के बाद मोक्ष-प्राप्त करेगी।

धर्मस्नेही बंधुओं! भक्ति में अचिन्त्य शक्ति है। हृदय में सच्ची भक्ति हो तो भगवान को भी भक्त के द्वारे आना पड़ता है। अतः हमें मन-वचन-काय से भक्ति में तल्लीन होना चाहिए।

पुण्यस्य फलं इच्छति, पुण्यं नेच्छति मानवाः।
फलं पापस्य नेच्छति, पापं करोति यत्नतः॥ आत्मानु

मानव पुण्य के फल की तो इच्छा करता है पर पुण्य को नहीं करता। पाप के फल की इच्छा तो नहीं करता पर यत्न पूर्वक पाप करता है।

राग से वैराग्य

पश्चिम पुष्करार्ध के पश्चिम विदेह क्षेत्र में रुप्य पर्वत की उत्तर श्रेणी में अरिंजयपुर नगर है, इस नगर में अरिंजय नामक राजा राज्य करता था। उसकी स्त्री का नाम था 'अजितसेना', उनके 'प्रीतिमति' नामक पुत्री थी, गुणरूपी आभूषणों को धारण करने वाली प्रीतिमति से राजा-रानी व सभी लोग प्रसन्न रहते थे।

एक दिन उसके पिता ने कहा–''योग्य वर को बेटी सौंपने पर पिता को खुशी होती है, बेटी पिता की धरोहर होती है।''

प्रीतिमति–''पिताजी! आपको जो योग्य लगे वह कीजिए।''

अरिंजय राजा ने कहा–''फिर भी बेटी हम आपको थोपना नहीं बल्कि सौंपना चाहते हैं, इसलिए आप अपनी इच्छा बताइए।''

प्रीतिमति को अनेक विद्याएं सिद्ध थीं, उन विद्याओं में से उसे 'गति विद्या' पर अभिमान था। उसने पिता से कहा–''पिताजी! अपने मुँह से हम कुछ नहीं कहना चाहते हैं, फिर भी मन में इतनी सी आशा है कि यदि कोई वीर हमें गति युद्ध में हराने में समर्थ हो तो वह हमारे विचार से वर के रूप में उचित रहेगा।''

पिताजी ने कहा–''बेटी! आपकी इच्छा जानकर हमें खुशी हुई, आपके योग्य वर के लिए 'गति युद्ध' नाम का स्वयंवर रचकर प्रसिद्ध राजकुमारों को आमंत्रित किया जायेगा।''

गति युद्ध का स्वरूप यह था कि एक पुष्पमाला को मेरु के शिखर से छोड़ा जायेगा और मेरु की तीन प्रदक्षिणाएं देकर माला को धरती पर गिरने से पूर्व पकड़ने में जो वीर समर्थ होगा वह प्रीतिमति के द्वारा पहनायी जाने वाली वरमाला के लिए योग्य समझा जायेगा।

इस स्वयंवर में पश्चिम पुष्करार्ध के, पश्चिम विदेह क्षेत्र के रुप्य पर्वत की उत्तर श्रेणी के, गण्यपुर नगर के सूर्यप्रभराजा के चिंतागति, मनोगति और चपलगति नाम के तीन पुत्र भी आये थे।

मनोगति और चपलगति दोनों प्रीतिमति के रूप की ओर ज्यादा आकर्षित थे। चिंतागति इस बात को समझ गया था, उसने दोनों से कहा–''मेरा प्रीतिमति में इतना मन नहीं है, मैं तो कौतूहलवश गतियुद्ध देखने आया हूँ, इसलिए आप दोनों इस युद्ध में हिस्सा लीजिए।''

उन्होंने भी उसकी हाँ में हाँ मिला दी। समय पर गतियुद्ध शुरू हुआ, सभी राजकुमार जाते गए, किंतु पुष्पमाला को धरती पर गिरने से पहले पकड़ने में समर्थ नहीं हुये, मनोगति और चपलगति भी गए परंतु इनके हाथ भी निराशा आई।

चिंतागति अपने भाइयों की असफलता पर दु:खी था, उसने गतियुद्ध में जाने का निर्णय लिया, तभी छोटे भाइयों ने कहा, ''यदि आप असफल हो गये तब? इसलिए रहने दीजिए, हम घर चलते हैं।''

यह सुनकर चिंतागति के स्वाभिमान को चोट पहुँची, उसने चपलगति से कहा–''नहीं, ऐसा नहीं होगा। यह युद्ध मैं तुम लोगों के लिए अवश्य जीतूगाँ, यह मेरी जिद है और इच्छा भी है कि यह युद्ध मैं आप लोगों के लिए जीत लूँ।'' इस पर मनोगति बोला–''भैय्या! मान लीजिए, आप जीत भी गए तो इससे क्या फायदा? क्योंकि आप तो इससे विवाह के इच्छुक ही नहीं। वह राजकुमारी तो कुंवारी ही रह जायेगी।''

सब बातें सुनकर चिंतागति ने कहा–''स्वयंवर जीतने के बाद राजकुमारी को हमारी इच्छा का ध्यान रखना पड़ेगा, जैसा हम कहेंगे वह वैसा ही करेगी, हमारी इच्छानुसार चलने को बाध्य होगी।''

दोनों भाइयों ने कहा–''जैसी आपकी इच्छा।''

चिंतागति उत्साह के साथ गया और पंचपरमेष्ठी को नमस्कार करके माला के साथ गतियुद्ध प्रारंभ किया, माला के धरती पर गिरने से पहले ही मेरु की तीन प्रदक्षिणाएं दीं तथा माला को धरती को छूने से पहले ही पकड़ लिया।

प्रीतिमति खुश हुई और दासियों के साथ वरमाला लेकर चिंतागति के पास गई। ज्योंही उसने चिंतागति के गले में वरमाला डालनी चाही, त्योंही चिंतागति ने उसकी वरमाला पहनने से इंकार कर दिया और कहा, ''मेरे छोटे भाई मनोगति और चपलगति आपकी ओर आकर्षित हैं, मैं नहीं।''

इस पर प्रीतिमति ने कहा–''मुझसे विवाह का जब आपका मन नहीं था तब आपने स्वयंवर में हिस्सा ही क्यों लिया? क्यों एक कन्या को लज्जित कर रहे हैं?

राजकुमार ने कहा–''हे देवी! आपके साथ विवाह का तो मेरा भी मन था, इसलिए तो स्वयंवर में आया था, परंतु अपने भाइयों की विशेष इच्छा को देखकर मेरी इच्छा अपने आप में सिमट गई, इसलिए न चाहते हुए भी आपको मना कर रहा हूँ।

गतियुद्ध में आपको जीता है, अब आप हमारे आधीन हो, इसलिए जैसा हम कहेंगे, वैसा आपको करना पड़ेगा। हमारे आदेश से इन दोनों में से किसी एक के गले में वरमाला डालनी होगी।''

विषम परिस्थिति देखकर वह दु:खी हुई पर उसने दृढ़ता से कहा–''आपने हमें गतियुद्ध में जीता है यह सब जानते हैं, हम अब आपके आधीन हैं। हमें आपकी आज्ञा माननी चाहिए, लेकिन आपकी आज्ञा हमारे कुलशील की रक्षा वाली होनी चाहिए।

स्वयंवर आपने जीता है इसलिए वरमाला के हकदार आप हैं, उन्होंने जीता होता तो वे होते, इसलिए कुल शील की मर्यादा के विरुद्ध आपकी आज्ञा मानने में हम असमर्थ हैं। आप हमें अग्नि में कूदने के लिए कहें या जहर पीने के लिए कहें, हम सब करने को तैयार हैं, परंतु यह आदेश अनुचित लग रहा है। आप जैसे कुलवंत व शीलवंत को दस बार सोचना चाहिए था, क्योंकि यह आदेश अकुलीन तथा शील नष्ट करने वाला है। हमने आपको ही पति के रूप में देखा है, छोटे भाई तो पुत्र के समान हैं। आप स्वयं विवेकवान हो, इससे ज्यादा मैं क्या कहूँ?''

चिंतागति ने अपने मन की दुविधा बताई कि, ''जिसे मैंने अपने छोटे भाई की पत्नी के रूप में देखा है, उससे अपने गले में वरमाला डलवाते हुए अपने आपसे शर्मिन्दा हूँ और अनुचित आदेश देते हुए भी शर्मिन्दा हूँ। इसे कर्म की विचित्र गति न कहूँ तो क्या कहूँ? कर्मोदय से स्थिति-परिस्थिति ही निमित्त कारण है।'' यह कहकर चिंतागति शांत हो गया। चिंतागति को असमंजस में देखकर प्रीतिमति ने कहा–''हे नाथ! गतियुद्ध जीतते ही मैंने आपको पति के रूप में देखा, इसमें आपका कोई दोष नहीं है, यह हमारे पूर्व कर्मों का ही परिणाम है। संसार में जितने पुरुष हैं, वो सब भाई और पिता हैं,पति भाव तो सिर्फ आपके प्रति ही है।''

चिंतागति को प्रीतिमति के व्यवहार से अचम्भा हुआ। जिसे अभिमानी समझा था वह तो सती, साध्वी, पतिव्रता नारी है। उसे लगा मैंने एक धर्मात्मा व आत्मसाधिका सुशीला नारी को समझने में गलती की है। वाकई में मनुष्य होता कुछ है और दिखता कुछ है, इसलिए कभी किसी को बुरा समझने की भूल नहीं करें।

उसके मुँह से शब्द नहीं निकल रहे थे, उसने जैसे-तैसे हिम्मत जुटाकर कहा–''देवी! मुझे आपसे बहुत ज्ञान मिला, आपके आचरण से सीखा ज्ञान मेरे जीवन में अमिट हो गया, इस दृष्टि से आप मेरी गुरु हो गई हो और साधर्मी तो पहले ही थीं।''

प्रीतिमति को संसार से वैराग्य हुआ। उसने चिंतागति से कहा–''हे देव! अब हमारा मन संसार से उदासीन हो चुका है, संसार का ऐसा स्वरूप देखकर हम दीक्षा लेना चाहते हैं, कृप्या हमें दीक्षा की अनुमति देकर अनुगृहीत करें।''

चिंतागति फिर सोचने लगा, ''जिसे कांच का टुकड़ा समझा था वो चिंतामणि रत्न निकला। प्रीतिमति ने सभी राजकुमारों को धर्मयुद्ध में पराजित कर दिया है, क्योंकि सभी राजकुमार अभी भोगों में हैं और यह आर्य कन्या वैराग्य के रथ पर सवार हो

चुकी है। मुझे भी इसने धर्मयुद्ध में पराजित कर दिया है, आज्ञा तो मेरे सम्मान के लिए माँग रही है, मन से तो दीक्षा ले चुकी है।'' यह सोचकर चिंतागति स्वयं भी अन्तर्मन से दीक्षा की तैयारी कर चुका था, फिर भी प्रीतिमति से कहा–''अभी तो तुम्हारे खेलने-कूदने के दिन हैं, अभी दीक्षा का विचार क्यों कर रही हो?'' प्रीतिमति ने कहा–''हे देव! विषय कषायों में खेलते-कूदते रहने से इस जीव ने अनादि से कर्मबंध ही किया है, ज्यादा क्या कहें? आप स्वयं ज्ञानी हैं, मनुष्य भव की दुर्लभता को जानते हैं, इसका एक-एक समय बहुमूल्य है। दीक्षा तो किसी अतिशय पुण्यवान के भाग्य में होती है, इसलिए हे नाथ! अनुमति देकर मेरे इस पुनीत कार्य की अनुमोदना करें।''

चिंतागति ने कहा–''हे देवी! आकाश या हवा को मुट्ठी में कौन बांध सका है? इसी तरह वैराग्य से भरे मन वाले को संसार में कौन रोक सका है? हमारी अनुमति तो केवल निमित्त मात्र है, यह तो आपका बड़प्पन है। आप जाइए, हम भी आपके रास्ते पर आने की कोशिश करेंगे।''

प्रीतिमति ने माता-पिता आदि बड़े जनों की आज्ञा ली और 'निर्वृत्ति' नाम की आर्यिका के पास आर्यिका दीक्षा ग्रहण कर ली। गतियुद्ध में हारे हुए मनोगति व चपलगति के मन में पूर्व में ही वैराग्य बस चुका था। चिंतागति और प्रीतिमति की वैराग्य भरी चर्चा सुनकर उनका वैराग्य और दृढ़ हो गया। उन्होंने बड़े भाई चिंतागति से कहा–''हे भैय्या! हम लोगों को भी दीक्षा की अनुमति दीजिए।''

चिंतागति ने गंभीर होकर कहा–''छोटे होकर आनंद के रास्ते पर जा रहे हो, यह अच्छी बात है, पर बड़े भाई को संसार के मार्ग पर छोड़कर जा रहे हो यह ठीक नहीं है। संसार में अब तक साथ रहे थे, इस वैराग्य के रास्ते पर भी साथ ही चलेंगे, रही पिताजी से कहने की बात तो यह समाचार सेवकों के द्वारा उन तक भिजवा देंगे।''

यह कहकर उन्होंने सेवकों के द्वारा पिताजी के पास दीक्षा का समाचार भिजवाया और दमवर मुनि के पास उन तीनों ने दीक्षा ले ली। सभी ने कठोर तपस्या की और आयु के अंत में समाधिमरणकर तीनों भाई माहेन्द्र स्वर्ग के अंतिम पटल में सात सागर की आयु वाले सामानिक जाति के देव बने।

चिंतागति माहेन्द्र स्वर्ग से आकर जम्बूद्वीप के विदेह क्षेत्र में, सीतोदा नदी के दक्षिण तट पर, सुपद्मा नामक देश में, सिंहपुरनगर के राजा अर्हद्दास का अपराजित नामक पुत्र हुआ और दीक्षा लेकर आयु के अंत में सल्लेखनापूर्वक मरण कर अच्युत स्वर्ग में बाईस सागर की आयु वाला इंद्र बना, अच्युत स्वर्ग से आकर नागपुर नामक नगर में राजा श्रीचंद व रानी श्रीमती के घर सुप्रतिष्ठ नाम का पुत्र हुआ।

राजा श्रीचंद ने पुत्र सुप्रतिष्ठ को राज्य देकर दीक्षा ले ली। राजा सुप्रतिष्ठ एक दिन कार्तिक की पूर्णिमा की रात्रि में महल की छत पर आठ सौ रानियों के मध्य बैठा था, उसी समय आकाश से उल्कापात हुआ, ''राज्य, जीवन, भोग आदि उल्कापात के समान क्षणभंगुर हैं'' ऐसा विचार आते ही उसे संसार से वैराग्य हो गया और उसने दीक्षा ले ली, अनेक प्रकार से कठिन तपस्या करके व निर्मल सोलहकरण भावनाओं के द्वारा तीर्थंकर प्रकृति का बंध किया, एक मास के आहार त्याग के साथ सल्लेखनापूर्वक शरीर त्यागकर जयंत नामक अनुत्तर विमान में 32 सागर की आयु वाला देव बना। वहाँ से आकर हरिवंश में राजा समुद्रविजय और रानी शिवादेवी के गर्भ से वैशाख शुक्ल त्रयोदशी के दिन, भरत क्षेत्र के बाईसवें तीर्थंकर 'नेमिनाथ' के रूप में जन्म लिया। उनका गर्भ व जन्मकल्याण मनाया गया।

नेमिनाथ भगवान की आयु एक हजार वर्ष की थी। कृष्ण उनके बड़े चचेरे भाई थे, पाण्डव बुआओं के पुत्र थे, बलदेव भी उनके चचेरे भाई थे। नेमीकुमार स्वर्ग से प्राप्त दिव्य भोगों को भोगते हुए युवा हुए। श्रीकृष्ण आदि सभी उनका सम्मान करते थे। श्रीकृष्ण ने जब जरासंध का वध करके नारायण पद प्राप्त किया, तब से उन्हें अभिमान आ गया था।

एक समय कुसुमचित्रा नामक राजसभा में सभी बैठे थे, उसी समय इस विषय पर चर्चा शुरू हुई कि इस क्षेत्र में सबसे बलवान कौन है? सभी का मत अलग-अलग था, कोई अर्जुन को, कोई भीम को तो कोई श्रीकृष्ण को बलवान बता रहा था। बलदेव को रहा नहीं गया उन्होंने मंद-मंद मुस्कुराते हुए नेमीकुमार की ओर देखकर कहा, ''श्रीकृष्ण ने कोटिशिला उठायी है परंतु नेमीकुमार एक अंगुली पर सुमेरु को, हथेली पर तीनों लोकों को उठा सकते हैं, समुद्रों को उठाकर फेंक सकते हैं। इनके समान बलशाली तीन लोक में दूसरा कोई नहीं है।''

बलदेव के द्वारा नेमीकुमार की प्रशंसा सुनकर श्रीकृष्ण को बुरा लगा और श्री कृष्ण ने कहा–''क्यों न नेमीकुमार और मुझमें बाहुयुद्ध किया जाये?'' नेमीकुमार ने कहा–''हे अग्रज! मैं बाहुयुद्ध नहीं कर पाऊँगा।'' कृष्ण ने कहा–''क्यों? इसमें क्या परेशानी है?'' इस पर नेमीकुमार ने कहा–''आज मेरी अंगुली में दर्द हो रहा है और अंगुली टेढ़ी हो गई है, देखो तो सही।''

श्रीकृष्ण को लगा नेमी बहाने बना रहा है, उन्होंने स्वयं नेमिकुमार की अंगुली सीधी करने की कोशिश की, जब उनसे नहीं हुई तब उन्होंने लोहे की मजबूत सांकल मँगवाकर अंगुली में फँसाई और स्वयं सांकल को खींचकर देखा, फिर भी नहीं हुई तो उन्होंने अपनी सहायता के लिए सभासदों को बुलाया, उनसे भी अंगुली सीधी नहीं हुई, तब नेमीकुमार के मन में मजाक सूझी।

उन्होंने चलाकर टेढ़ी की हुई अंगुली सीधी कर तुरंत टेढ़ी कर दी। अंगुली अचानक सीधी होने से सभी लुढ़क गए और एक के ऊपर एक गिर गये, फिर नेमीकुमार के द्वारा अपना हाथ ऊपर उठाने से सभी सांकल से लटक गए। थोड़ी देर तक नेमीकुमार ने हाथ ऊपर ही रखा, एक-एककर सभी नीचे गिर गए और कृष्ण सांकल से लटके रह गए। उन्हें देखकर नेमिकुमार आदि मंद-मंद मुस्काये। श्रीकृष्ण इस घटना से शर्मिन्दा हुए और नेमिकुमार के अतुल बल को समझ गए।

उस दिन से कृष्ण के मन में यह बात घर कर गई थी कि नेमी के बल का पार नहीं है, इसलिए उनके रहते हुए मेरा राज्य सुरक्षित नहीं है, इसलिए वे मन में नेमिकुमार से डरे-डरे रहते थे। बल्कि श्रीकृष्ण समझ नहीं पा रहे थे कि इन्द्रादि जिनके दास हैं उन्हें विश्व के वैभव से क्या प्रयोजन?

जो प्रायः अपने आत्मिक अमृत में डूबे हुए तृप्त रहते हैं उन्हें तीनों विश्व के शासन से भी क्या तृप्ति मिलेगी, परंतु श्रीकृष्ण की ये अपनी सोच थी इसमें कोई क्या करे?

नेमीकुमार अब तीन सौ वर्ष के हो चुके थे, उनका ज्यादातर समय आत्मचिंतन व आत्मानुभव में बीत रहा था, परंतु श्रीकृष्ण को राज्य की चिंता थी।

गर्मी के दिन थे। एक दिन श्रीकृष्ण अपनी रानियों के साथ जलक्रीड़ा के लिए जा रहे थे। श्रीकृष्ण आदि के अनुरोध से सदा गंभीर रहने वाले नेमीकुमार भी जल-क्रीड़ा में गए, उन्होंने भी जलक्रीड़ा की। जलक्रीड़ा के बाद नेमीकुमार के शरीर को पोंछा गया, उन्हें दूसरे वस्त्र पहनाए गए।

उस समय भगवान ने अपना गीला वस्त्र निचोड़ने के लिए श्री कृष्ण की प्रेमपात्र अनुपम सुंदरी 'सत्यभामा' से सहज ही कहा, ''भाभी! भैय्या के वस्त्र तो आपने अब तक निचोड़ दिये, परंतु हमारे वस्त्रों को कभी हाथ भी नहीं लगाया, आज एक दिन हमारे वस्त्र को भी निचोड़ दीजिए।''

देवर नेमी के आशय को समझने वाली सत्यभामा ने बनावटी क्रोध में कहा–''देवर जी! मैं नारायण की पत्नी हूँ, उनके पास 'कौस्तुभ' मणि है, वे महानाग शय्या पर सोते हैं, जिसके अनेक देव रक्षक हैं ऐसे 'शाङ्र्ग' नामक धनुष को धारण करते हैं, आकाश और समुद्र को अपनी आवाज से हिला दे ऐसी दैवी शंख को बजाते हैं। मैं उनकी सब रानियों में प्रमुख हूँ, वे भी मुझे कभी आज्ञा नहीं देते और आप उनसे छोटे होकर भी विचित्र पुरुष जान पड़ते हो, जो ऐसी आज्ञा दे रहे हो।'' सत्यभामा ने सारी बातें झूठे रोष और मजाक में कहीं थी, परन्तु श्रीकृष्ण की अन्य रानियों ने उसे खरी-खोटी सुनाई। किसी ने कहा, ''सत्यभामा! लगता है तेरी मति मारी गई है जो तेरे मुँह से ऐसे कठोर शब्द निकले।''

सत्यभामा सब कुछ जानकर भी आज त्रिलोकीनाथ के साथ ठिठोली की मुद्रा में थी और किसी की परवाह किये बिना उसने फिर मजाक करते हुए कहा–''अरे देवर जी! दूसरों से कपड़े निचोड़वाने का इतना ही शौक है तो विवाह क्यों नहीं कर लेते? वह आपकी अर्द्धांगिनी आपके गीले कपड़े निचोड़ देगी, आपकी सेवा करेगी, आप जैसे त्रिलोकीनाथ का साथ पाकर संसार से तर भी जायेगी।''

सत्यभामा की मजाक को सुनकर नेमीकुमार तीव्रगति से राजमहल में आये और आकर सबसे पहले नागशय्या पर चढ़े, उस शय्या की रक्षा करने वाले देवों ने उनकी आगवानी की, पूजा की। नागशय्या पर तेजी से चढ़ने से भूमि के भीतर कंपन हुआ।

बाद में उन्होंने शाङ्र्ग धनुष मोड़कर, उस पर प्रत्यंचा चढ़ाकर टंकार ध्वनि की। उसकी आवाज की धमक चारों ओर फैल गई। उसके बाद उन्होंने एक हाथ में सुदर्शन चक्र लेकर एक अंगुली पर तेजगति से घुमाया, उससे चिनगारियाँ निकलने लगीं, दूसरे हाथ में शंख लेकर उसे नाक से बजाया। उसकी आवाज से समुद्र का पानी भी हिलने लगा। धनुष आदि की आवाज से पूरे नगर में हाहाकार मच गया, आखिर में हुआ क्या है? द्वारिका नगरी में हाथी, घोड़े सांकल आदि बंधनों को तोड़कर भागने लगे, समुद्र में लहरें उछलने लगीं।

श्रीकृष्ण समझ गये कि मेरे सिवा शंख को फूंकने वाला, चक्ररत्न घुमाने वाला, शाङ्र्ग धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाने वाला, नागशय्या पर उछल सकने वाला नेमी ही हो सकता है।

श्रीकृष्ण को खुशी होने लगी कि सत्यभामा के मजाक से नेमी को कुछ तो कषाय उत्पन्न हुई और इसी कषाय के आवेश में शादी के लिए तो हाँ कहेगा, वरना जब भी शादी की चर्चा करते थे तो मना करता था या वहाँ से निकल जाता था। श्रीकृष्ण सीधे महल में आये और अनुज नेमी को गले से लगाया।

एक वर्तमान के तीर्थंकर को भावि तीर्थंकर ने गले लगाया और कहा–''हे देव! आप शूरवीर हो, आपकी वीरता कौन नहीं जानता? सत्यभामा ने आपको नहीं पहिचाना इसलिए उसने आपका अनादर किया, पहिचाना हो तो भी मात्र मजाक की भावना से ऐसा किया, उसके लिए हम आपसे क्षमा माँगते हैं। हे देव! क्षमा कर दीजिए।'' इसी प्रकार की और भी हल्की-फुल्की बातें करके श्रीकृष्ण ने उनसे शादी के लिए हाँ करवा ली और इधर भोजवंशी राजा उग्रसेन के पास उनकी पुत्री 'राजीमती' (राजुल) जो पूर्वभव में प्रीतिमति थी, की नेमीकुमार हेतु समुद्रविजय की सम्मति से विधिपूर्वक याचना की।

राजा उग्रसेन की स्वीकृति आयी कि, ''हे श्रीकृष्ण जी! हम आपके अधीनस्थ राजा हैं, हम स्वीकृति देने वाले कौन होते हैं? आपने हम पर व हमारी पुत्री पर बड़ा

उपकार ही किया है, जो हरिवंश लायक हमें समझा। आपका हमारे आँगन में हृदय से स्वागत है।'' राजुल ने जब से अपना विवाह संबंध नेमिकुंवर के साथ तय होना सुना था, तब से वह उनके राग में रंग गई थी, उठते-बैठते सिर्फ नेमि-नेमि का ही ध्यान करती थी।

ग्रीष्मकाल समाप्त होकर वर्षाकाल का चौमासा चल रहा था, बड़ी उमंग से विवाह की तैयारियाँ चल रहीं थीं और वह दिन भी आ गया जब नेमिकुमार दूल्हा बनकर जूनागढ़ की ओर चल दिए, सभी अपने सौभाग्य से अभिभूत थे, उमंग और उत्साह का चरम उस बारात में था।

परन्तु श्रीकृष्ण के मन की शल्य अभी समाप्त नहीं हुई थी, रह-रह कर श्रीकृष्ण को यह आशंका खाये जा रही थी कि ''शादी के बाद नेमि के मन में राज्य का विचार आया और मेरा राज्य छीन लिया तो मेरा राज्य जायेगा और मान-सम्मान भी जायेगा।'' तब श्रीकृष्ण ने बलदेव को सारी बातें कहीं।

बलदेव ने कहा–''तुम्हारे मन में ऐसे विचार कैसे आये? वे तुम्हारे धरती के छोटे से टुकड़े को क्यों चाहेंगे? हे कृष्ण! तुम्हें 'श्री नेमि मेरे राज्य को छीनेंगे' ऐसा सोचना ही नहीं चाहिए।'' बलदेव के समझाने से श्रीकृष्ण को कुछ शांति मिली। नेमीकुमार की बारात जूनागढ़ की ओर राजुल को वरने के लिए निकली। तीर्थंकर की बारात बहुत लम्बी थी, बीच में अंतराल नहीं था।

सद्यः प्रसूता कुछ गायें इस ओर रह गईं, कुछ उस ओर, कुछ माएं इधर तो उनके वत्स उस ओर। पशुओं की करुणा भरी आवाजें निकलने लगीं। कुछ पशुओं को बांधकर रखा गया था, उनकी आवाजें नेमीकुमार के कानों से टकराईं। उन्होंने जीवन में पहली बार ऐसी करुणा भरी आवाजें सुनी थीं, वे सोच में पड़ गए, ''अरे! संसार के स्वार्थीपन को देखो, अपने विषय-कषायों की पूर्ति के लिए दूसरों के दुःखों को भी नहीं गिनते।

मुझे ही देखो, विवाह जैसे सांसारिक कार्य के लिए इन पशुओं को कैसे दुःखी कर रहा हूँ? देखो इनको मार करके माँस खाया जायेगा। न मैं विवाह करूँ और न इन पशुओं का वध हो। धिक्कार हो ऐसे संसार के स्वार्थीपन को, मुझे तो वह मार्ग अपनाना चाहिए जिससे किसी को कष्ट न हो और इस आत्मा की संसार से मुक्ति हो।'' यह सोचकर उन्हें वैराग्य हो गया, उन्होंने सारथी से रुकने के लिए कहा और कहा–''मार्ग दो जिससे ये पशु आ-जा सकें।'' फिर उन्होंने बारह भावनाओं का चिंतन किया और उन्हें जातिस्मरण हो गया।

वहाँ स्वर्ग से देव आए, लौकान्तिक देवों ने उनके वैराग्य की अनुमोदना की। रथादि त्यागकर नेमिकुमार 'देवकुरु' पालकी में सवार होकर वन की ओर गए और

'नमः सिद्धेभ्यः' कहकर उन्होंने दीक्षा ले ली। जहाँ विवाह उत्सव होना था वहाँ देव-मानवों के द्वारा 'दीक्षा कल्याणक' उत्सव मनाया गया।

'श्रावण शुक्ला षष्ठी' जो नेमिकुमार का जन्मदिन था, वही उनका दीक्षा दिन भी हुआ। उनके साथ अनेक राजाओं ने दीक्षा ली। इधर राजुल को जैसे ही पता चला कि जिससे विवाह बंधन बंधना था, वे संसार बंधन को तोड़कर चले गए, तब उसने भी संसार का बंधन तोड़कर दीक्षा लेने का दृढ़ निर्णय लिया। वह पिताजी के पास गई और उनसे दीक्षा की अनुमति माँगी, तब पिताजी ने समझाया, ''बेटी! ऐसी नादानी क्यों कर रही हो? अभी सात फेरे नहीं हुए हैं, हम अन्य राजकुमार से तुम्हारा विवाह करा देंगे।''

इस पर राजुल बोली–''पिताजी! यह नादानी नहीं, समझदारी है। मैंने त्रिलोकीनाथ को पति माना था, सात फेरे केवल औपचारिक होते हैं, अन्य राजकुमार तीर्थंकर जैसे कैसे हो सकते हैं? अन्य राजकुमार मेरे लिए केवल पुद्गल का पिंड मात्र हैं, क्योंकि विवाह का राग समाप्त हो गया है। पत्नी का कर्तव्य है पति के सच्चे मार्ग पर चले, सो मुझे भी उनके वीतरागी मार्ग पर जाने की अनुमति दीजिए। मैं वीर पुत्री हूँ, मोक्षवीर की पत्नी हूँ, रो-धोकर संसार में नहीं रहूँगी। मैं भी अतिशीघ्र मोक्ष जाऊँगी, कृप्या दीक्षा की अनुमति दीजिए।''

राजुल ने पिता से अनुमति पाकर सैकड़ों कुमारिकाओं के साथ दीक्षा ली, गिरनार की गिरि गुफा में कठोर तपस्या की और आज वह गिरि गुफा 'राजुल की गुफा' के नाम से प्रसिद्ध है। वहाँ आत्म साधना कर सल्लेखनापूर्वक देह त्यागकर आर्यिका राजुल ने देवपद प्राप्त किया। वह आत्मा शीघ्र ही मोक्षपद प्राप्त करेगी।

धन्य हैं सती राजुल जिन्होंने नव भव की प्रीति का अनुकरण किया और दीक्षा को स्वीकार किया। अतः धर्मस्नेही बंधुओं! हम सभी को अपनी आतम की प्रीति को अमर करने के लिए दीक्षा को अंगीकार करना चाहिए।

दृढ़ता से सफलता

अंगदेश की चम्पा नगरी में वसुवर्धन राजा राज्य करता था, उसकी पटरानी का नाम लक्ष्मीमति था। राज्यश्रेष्ठ प्रियदत्त और उसकी पत्नी अंगवती थी। प्रियदत्त की 'अनंतमति' नाम की पुत्री थी, जो धार्मिक और संस्कारवान थी।

एक दिन अष्टाह्निका महापर्व के शुभ अवसर पर धर्मकीर्ति मुनिराज का संयोग हुआ था, सभी चंपापुरवासी उनके दर्शन करने के लिए जा रहे थे। तभी प्रियदत्त ने अनंतमति की सखी से पूछा, ''तेरी सखी अनंतमति कहाँ है?'' अनंगमति बोली–''वह गुड्डे के विवाह के बहाने से अपने विवाह का स्वप्न देख रही है और श्रेष्ठी जनों की लड़कियाँ मंगलगान कर रही हैं।''

प्रियदत्त ने पुत्री को बुलवाया। श्रेष्ठी प्रियदत्त परिहास करने में बड़ा पट्ट था, कन्या को आई देखकर बोला–''पुत्री! सदैव गुड्डे से खेलने के लिए विकल तुम्हारे हृदय में अभी से विवाह का मनोरथ हो चला है, अतः चलो श्रुत के ज्ञाता धर्मकीर्ति मुनिराज के पास और समस्त व्रतों में श्रेष्ठ ब्रह्मचर्य व्रत को स्वीकार करो।''

वहाँ जाकर उसने व्रत ले लिया और बोली–''इसमें केवल भगवान ही साक्षी नहीं, किंतु आप और माताजी भी साक्षी हैं।''

उक्त घटना को कई वर्ष बीत गए, अनंतमति पूर्ण युवती हो गई और घर में उसके विवाह की चर्चा शुरू हो गई। अनंतमति ने यह सब देखकर कहा–''पिताजी! आपने तो मुझे ब्रह्मचर्य व्रत दिलाया था, फिर विवाह की तैयारियाँ कैसे हो रही हैं?''

अनंतमति की बात सुनकर प्रियदत्त चौंक पड़ा, उसने अनंतमति से कहा–''बेटी! मैंने जो ब्रह्मचर्य व्रत दिलाया था वह तो बालिका देखकर मजाक में दिलाया था, जैसे हमने 8 दिन के लिए ब्रह्मचर्य व्रत लिया था वैसे ही तुम्हें दिलाया था, उस परिहास को क्या तुम यथार्थ समझ गई हो?''

इस पर गंभीर होकर अनंतमति बोली–''पिताजी! धर्म, व्रत व नियम के विषय में कभी भी मजाक नहीं करना चाहिए। नियम लेकर उसे तोड़ने का फल नरक-निगोद ही है। मैं व्रत-नियम के प्रति गंभीर हूँ, मैंने उसे मजाक नहीं समझा था, न कभी समझूँगी। उस व्रत को प्राण देकर भी आजीवन निभाऊँगी। इसमें न तो आपकी गलती है और न मेरी, होनि अटल होती है।''

अनंतमति की दृढ़ता, गंभीरता और ज्ञान की बातें सुनकर प्रियदत्त अचंभित थे और इतना ही कहा, ''बेटी! धन्य हो, धन्य है तुम्हारे व्रतों की आस्था। तुम्हारे जैसी बेटी पाकर हमारा कुल धन्य हो गया।'' और उसकी ब्रह्मचर्य की दृढ़ता देखकर उसके पिताजी ने उसके विवाह का विचार छोड़ दिया। अनंतमति भी धर्मध्यान व स्वाध्याय आदि शुभ कार्यों में व्यस्त रहने लगी।

एक दिन चैत्र महिने में अनंतमति महल के बाहर के उद्यान में अकेली झूला झूल रही थी, उसी समय कुण्डलमण्डित नामक विद्याधर अपनी पत्नी के साथ आकाश मार्ग से विमान में जा रहा था। यह विजयार्द्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी के विद्याधरों का राजा था, किन्नरपुर उसकी राजधानी थी।

कुण्डलमण्डित उसे देखकर ठगा सा रह गया। वह कामबाणों से घायल हो गया। उसने अपनी 'अवलोकिनी' विद्या से पता लगा लिया कि वह कन्या कौन है?

वह पत्नी को महल में छोड़कर, पत्नी से बिना कुछ कहे, वहाँ से अनंतमति को पाने के लिए चल दिया। पति के बिना कुछ कहे, शीघ्रतापूर्वक जाने से कुण्डलमण्डित की पत्नी को शक हो गया। वह भी चोरी छिपे उसके पीछे चली गई।

कुण्डलमण्डित जबरदस्ती करके अनंतमति को लेकर विमान में बिठाकर चल दिया। अनंतमति इस अकस्मात् घटना से बेचैन, व्याकुल होकर विलाप करने लगी। उसकी करुण चित्कारें सुनकर कुण्डलमण्डित की पत्नी को बहुत गुस्सा आया। उसकी आँखें लाल हो गईं, मुँह तमतमाने लगा। उसका पति जबरदस्ती करके उस शीलवती का शील भंग करना चाहता है, वह जोर से चिल्लाकर कहने लगी–''अरे दुष्ट! रुक, अधर्म का कार्य करके अपने को नरक में ले जा रहा है। तेरा मन पापी है, तुझे मैं ऐसा अधर्म, पाप करने नहीं दूँगी, शीलवती के शील से खिलवाड़ नहीं करने दूँगी। रुक, कहाँ जाता है? मैं तुझे नहीं छोड़ूँगी।''

पत्नी की आवाज सुनकर, उसकी क्रोधित आकृति देखकर कुण्डलमण्डित डर गया। डर के मारे अनंतमति को छोड़ने में ही उसने अपनी भलाई समझी। 'पर्णलघ्वी' विद्या के सहारे उसने अनन्तमति को घने जंगल में छोड़ा और सोचा पत्नी को शांत कर पुनः यहाँ आकर इसे ले जाऊँगा।

उस समय शाम हो गई थी, जंगल घना था, रास्ते का पता नहीं था, तब अनंतमति ने एक सुरक्षित स्थान देखकर, पंच परमेष्ठी के स्मरण में रात जैसे-तैसे हिंसक जानवरों के भय से जागते-जागते बितायी।

सुबह होने पर भीलों का राजा शिकार के लिए निकला, उसने रोती हुई एक सुंदर कन्या को देखा और वह भी उसकी सुंदरता से घायल हो गया। वासना को मन में दबाकर वह उसके पास गया और पूछा–''यहाँ कैसे आयी?'' पूछने पर उसने भोले मन से सारी हकीकत बता दी।

वह उसे उसके घर पहुँचाने की कहकर अपने घर ले गया और कहा, ''मैं तुम्हें अपनी पटरानी बनाऊँगा, मुझे पति के रूप में स्वीकार कर लो।'' उसकी बातों से तिलमिलाई अनंतमति ने कहा–''अरे धोखेबाज! तुमने मुझे घर पहुँचाने का वादा किया था। तुम्हारे साथ रहना व विवाह करना मैं तो स्वप्न में भी नहीं सोच सकती। मैं आजीवन ब्रह्मचर्य को धारण करने वाली कन्या हूँ, मुझे मरना पसंद है, पर व्रत को तोड़ना पसंद नहीं है।'' यह कहकर वह फूटफूट कर रोने लगी।

उस भील ने अनंतमति की अटल दृढ़ता देखकर उसे पाने की इच्छा से उसके साथ जोर जबरदस्ती करना शुरू कर दी। उसी समय वनदेवी ने आकर भीलराज को डराया, धमकाया और कहा–''यह देवी है, इसे छूना भी मत, नहीं तो जलकर राख हो जाओगे।'' इतना कहकर उसकी पिटाई की और कहा, ''इसे इसके सुरक्षित स्थान पर छोड़कर आओ।''

वनदेवी के डर, मार और धमकाने से डरा हुआ भीलराज उसी समय उसे लेकर गया। मार्ग में उसे एक पुष्पक नामक सेठ मिला, सेठ ने पूछा–''कहाँ जा रहे हो?'' भीलराजा ने सारी स्थिति बता दी और कहा–''इस शीलवती को उसके घर पहुँचाने जा रहा हूँ।'' सेठ ने कहा–''जंगल में रहने वाले तुम्हें रास्तों का पता नहीं, तुम्हें इसे पहुँचाने में बहुत देर लगेगी, मैं इसे इसके घर पहुँचा दूँगा।'' भीलराज ने कहा–''जरूर पहुँचा देना, इस काम में देरी मत करना।''

सेठ अनंतमति के सौंदर्यजाल में उलझ गया था, वह उसे अपने घर ले गया और एकांत देखकर उससे कहने लगा, ''मैं यहाँ का सबसे अमीर व्यक्ति हूँ। मेरे पास धन की कोई कमी नहीं है। मुझे पति के रूप में स्वीकार कर कृतार्थ करो।''

अनंतमति ने निडर होकर कहा–''अहो! सेठ आश्चर्य है, अपनी बेटी समान कन्या से वासना की इच्छा रखते हो। शर्म करो, वासना की पूर्ति के लिए तुमने कैसी मायाचारी की। तुम ने भील से मुझे घर पहुँचाने की बात कही थी, अब ये छल किसलिए? क्या तुम्हें पाप से डर नहीं लगता है? तुम मनुष्य नहीं, मनुष्य के रूप में राक्षस दिख रहे हो?''

इस प्रकार की भर्त्सना से सेठ घबरा गया। अपने पाप का घड़ा फूट न जाये इस डर से उसने क्षमायाचना की। परंतु उसके मन में अपमान के कारण प्रतिशोध की आग जल रही थी, इसलिए उसने कुटिलतापूर्वक कहा, ''चलो, मैं तुम्हें तुम्हारे घर पहुँचा आता हूँ।'' पुष्पक सेठ अनंतमति को लेकर घर से निकला और कामसेना नामक वेश्या के घर ले गया। वहाँ उसे देकर उसने अपनी प्रतिशोध की भावना पूरी की।

कामसेना ने अनंतमति को अनेक प्रलोभन दिये, बहुत यातनाएं दी, परन्तु वह समता से सब सहती गई। अंत में वह कामसेना को ही समझाने लगी–''हे माता! आप इस पाप के काम को छोड़ दीजिए, धर्म की शरण लेकर पाप को धो दीजिए और देखिए आपकी सोच मेरे द्वारा कभी पूरी नहीं होगी। मुझे पिता के घर या किसी आर्यिका माताजी के पास छोड़ दीजिये।''

कामसेना ने सोचा ''यह बिना खाये-पिये मर जायेगी तो राजा मुझे दण्डित करेगा।'' डरकर वह उसे उसके घर छोड़ने के लिए कहकर ले गई, परन्तु उसने रास्ते में अपना विचार बदल दिया और वह उसे दूसरे राज्य में ले गई, जहाँ का राजा सिंहराज था।

सिंहराज उसे देखकर आश्चर्य में पड़ गया, उसे देखते ही उसने कामसेना को मुँहमाँगा इनाम देकर विदा किया और अनंतमति के पास आकर कहने लगा–''मैं तुम्हें पटरानी का पद देता हूँ, एक बार हाँ कह दो।''

अनंतमति सोचने लगी–''हाय रे कर्म! जहाँ भी जा रही हूँ, वहाँ सभी चमड़ी के स्वादी ही मिल रहे हैं। इस पापी राजा को क्या जबाव दूँ? लेकिन मौन रहने से भी काम नहीं चलेगा।'' उसने हिम्मत जुटाकर कहा–''हे भाई! 'यथा राजा तथा प्रजा' यह कहावत आपने सुनी होगी, आप जैसे राजा लोग पराई स्त्री देखकर पाप की सोचते हो, यदि सामान्य प्रजा ऐसा करे तो इसमें उसका क्या दोष है? अतः हे राजन्! मुझ जैसी अबला की रक्षा करो, मुझे मेरे पिता के घर या किसी आर्यिका माताजी के पास छोड़ दो।''

सिंहराज के पापी मन में दया नहीं आई, सच है कि 'तीव्र कषायी को उपदेश नहीं देना चाहिए।' उसने अनंतमति के साथ जबरदस्ती करनी चाही, तब अनंतमति जोर-जोर से विलाप करने लगी, तभी वही वनदेवी आई, उसने सिंहराज को खूब खरी-खोटी सुनाई। उसने कहा–''इस सती को आँख उठाकर भी मत देखना, यदि इसको छुयेगा तो तेरा सर्वनाश कर दूँगी।'' देवी ने उसकी भयंकर पिटाई की। भयंकर स्वरूप से डरे हुए सिंहराज ने सेवकों को बुलाकर उसे उसी समय वन में छोड़कर आने की आज्ञा दी। सेवक आज्ञानुसार उसे जंगल में छोड़कर आ गए।

अनंतमति जंगल में भटकती, फल-फूल खाती, कर्मों का चिंतन करती हुई और पंच परमेष्ठी की आराधना के साथ समय व्यतीत कर रही थी। अनेक जंगल, पहाड़ व झरनों को पार करती हुई वह बाहर शहर के पास आई। जंगलों के अंत के साथ उसके पाप का भी अंत हो गया, तभी उसे एक नगर दिखा। वह उस नगर की ओर चली, नगर के बाहर ही बनी एक जैन नसिया जी थी, वहाँ 'पदम्श्री' आर्यिका ठहरी

हुईं थी। अब अनंतमति को लगा पाप का उदय समाप्त हुआ है, तभी मुझे आर्यिका माताजी के दर्शन हुए हैं।

दर्शन करने के उपरांत उसने माताजी से अपनी शरण में लेने का निवेदन किया। पद्मश्री माताजी ने पूछा–''बेटी! तुम कौन हो?'' तब अनंतमति ने अपने जीवन की सारी घटनाएं सुना दी। माताजी ने कहा–''धन्य हो बेटी! अब तुम्हारे पाप का उदय समाप्त हुआ है, हमारे साथ रहकर अपने नियम का पालन करो।''

उस दिन से वह माताजी के साथ रहकर धर्म की साधना करने लगी। इधर अनंतमति के माता-पिता को अनंतमति के अचानक खो जाने से बहुत दु:ख हुआ, उन्होंने उसे कई जगह खोजा, पर उसका कहीं पता नहीं लगा। सारा परिवार दु:खी होकर सिद्धक्षेत्रों और अतिशयक्षेत्रों की वंदना करता हुआ अयोध्या पहुँचा। अयोध्या में प्रियदत्त का साला जिनदत्त रहता था। वे जिनदत्त के घर गए, जिनदत्त ने सबका स्वागत किया।

प्रियदत्त से अनंतमति के बारे में सुनकर जिनदत्त के परिवार को बहुत दु:ख हुआ। प्रात:काल जिनदत्त उठकर मंदिर गए, उनकी पत्नी ने माताजी का चौका लगाया था, इसलिए माताजी के पास जो कन्या थी, उससे कहा–''बेटी, थोड़ा पहले आकर चौक में रंगोली बना देना।''

कन्या पहले आकर रंगोली बनाकर चली गई। प्रियदत्त की नजर चौक की रंगोली पर गई, तो उनको अनंतमति की याद आ गयी, उनकी आँखों से टपाटप आँसू गिरने लगे।

उन्होंने जिनदत्त की पत्नी से पूछा–''यह रंगोली किसने बनाई है? मुझे उससे जल्दी मिला दो।'' प्रियदत्त के कहने पर सभी नसियाजी में गए, आर्यिका माताजी के दर्शन किए और अनंतमति पर दृष्टि पड़ते ही सभी की आँखों से आँसुओं की धाराएँ निकलीं, सब उसके गले मिले और उसकी आपबीती की करुणकथा सुनी। परस्पर बातचीत करने के बाद प्रियदत्त ने कहा–''बेटी अनंतमति! घर चलो।'' तब वह हाथ जोड़कर बोली–''पिताजी! मैंने संसार का रूप देख लिया है, अब कहीं जाने-आने का मन नहीं है, सिर्फ पंचपरमेष्ठी की शरण में रहने का मन है। मैं सांसारिक कष्टों को देखकर डर गई हूँ। मेरी आप से प्रार्थना है कि मुझे दीक्षा लेने की आज्ञा दीजिए।''

प्रियदत्त को यह सुनकर अचम्भा हुआ और वे दु:खी होकर कहने लगे–''बेटी! दीक्षा का मार्ग बड़ा कठिन है, मेरा निवेदन है कि अभी घर चलो, कुछ दिन घर रहकर धर्मसाधना करो, बाद में दीक्षा ले लेना।''

अनंतमति बोली–''पिताजी! आयु का क्या भरोसा? कौन-सा दिन अंतिम दिन है, कोई नहीं जानता। अब मैं कर्मों के अधीन नहीं रहना चाहती, आप तो मुझे दीक्षा की अनुमति दीजिए।''

बेटी की दृढ़ता देखकर प्रियदत्त उसे अनुमति दे देता है। इसके बाद अनंतमति की दीक्षा की विधि सम्पन्न हुई, सबने उसकी अनुमोदना की। आर्यिका अनंतमति ने एक माह के उपवास आदि कर कठोर तपस्या की और कर्मों का क्षय करने के लिए संन्यास मरण किया।

स्त्रीपर्याय का नाश करके वह सहस्रार स्वर्ग में देव बनी और देव पर्याय से निकलकर शीघ्र ही मोक्षपद प्राप्त करेगी।

धर्मस्नेही बंधुओं! जिस प्रकार सती अनंतमति ने छोटी सी उम्र में लिये गये नियम का पालन भी दृढ़ता के साथ अनेक कष्टों, संकटों का सामना करते हुए भी जीवन पर्यंत किया, उसी प्रकार सभी को चाहिए कि नियम बचपन में लें या पचपन में परंतु किसी भी परस्थिति में व्रत को न तोड़ें और उसका दृढ़ता से पालन करें।

पुण्येन लभ्यते सौख्यम्, पापेन च दुः खिताः।
कर्मणा मुचितं लोकः सर्व फल मुपाश्नुते॥31/76 प.पु.

पुण्य से सुख की प्राप्ति और पाप से दुःख की प्राप्ति होती है।
लोक में सभी अपने कर्मों के अनुरूप ही सब प्रकार का फल प्राप्त करते हैं।

धैर्यता ही साधना

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में उज्जियनी नगरी है, वहाँ का राजा अवन्तिसेन था। उसकी जयावती नामक पत्नी थी। विशाल बुद्धि वाला मतिसागर (सागरदत्त) नामक उसका मंत्री था और सागरचंद्र मंत्रीपुत्र था।उसी नगर में धनसार नामक वणिक अपनी पत्नी रम्भा के साथ रहता था। रम्भा बड़ी धर्मपरायण थी, वैय्यावृत्ति में सदैव तत्पर रहती थी।

एक समय वह रम्भा रात्रि में स्वप्न देखती है कि मेरे गृहाँगण में कोमल-कोमल पल्लवों सहित अमृतबेलि उत्पन्न हुयी है तथा नभमण्डल से जलवृष्टि हो रही है। प्रात:काल जिनेन्द्र भगवान का स्मरण करती हुयी वह पति के पास गयी और बड़ी विनय से पूछा–''स्वामी! मैंने जो स्वप्न देखे हैं, उनका फल क्या है?'' श्रेष्ठी ने कहा–''प्रिये! आपके गर्भ में सुंदर लक्षण वाली पुत्री है।''

कुछ दिन व्यतीत हुए तभी सेठानी को दोहला हुआ कि मैं उत्तम आहारदान दूँ। दोहलापूर्ति हेतु उसने चतुर्विध संघ को आहार दिया। नवमास पूर्ण होने पर उसने एक सुंदर कन्या को जन्म दिया। उत्साहपूर्वक जन्मोत्सव मनाया गया और पुत्री का नाम 'मृगांकलेखा' रखा गया। धीरे-धीरे वह कन्या वृद्धि को प्राप्त हुयी।

एक दिन वह कन्या पिता द्वारा निर्मित जिनमंदिर में गयी। वहाँ भगवान की विविध द्रव्यों से पूजा की, पश्चात् पंचपरमेष्ठी का ध्यान करने लगी। तभी सागरचंद्र की दृष्टि उस पर पड़ी और बोला–''यह देव प्रतिमा धन्य है।'' उसने भावपूर्वक उत्तमाङ्ग से प्रणाम किया। यह देख उसका मित्र हँसते हुए बोला–''यह देव प्रतिमा नहीं, धनसार श्रेष्ठी की पुत्री मृगांकलेखा है।'' यह सुनकर सागरचंद्र बोला–''यदि यह कन्या मेरी पत्नी नहीं हुयी तो मेरा जीवन निष्फल है।'' ऐसा कहते हुए वह मूर्च्छित हो गया। शीतोपचार के द्वारा उसे ठीक किया गया।

सागरचंद्र के पिता ने पूछा–''पुत्र! तुम्हें कौन-सी शारीरिक व मानसिक पीड़ा है, जिससे तुम्हारी देह जल रही है?'' सागरचंद्र कुछ न बोला। उसके मित्र से सारी कहानी सुनकर पिता ने कहा–''बेटा! शोक को छोड़ो, ऐसा समझो वह तरूणी तुम्हारी ही हो चुकी।

एक निमित्तज्ञानी सागरदत्त के यहाँ आया। उससे पूछा गया कि मृगांकलेखा और सागरचंद्र का पाणिग्रहण कैसे होगा? निमित्तज्ञानी ने विचारकर कहा–''मैं उपाय बताता

हूँ जिससे वह कन्या प्राप्त हो जायेगी।'' सागरचंद्र बोला–''शीघ्र उपाय किया जाये अन्यथा मेरी मृत्यु निश्चित समझो।''

पुत्र की बात सुनकर सागरदत्त जिनमंदिर में गया और मुनिराज को नमस्कार कर प्रीतिपूर्वक निवेदन किया–''हे स्वामिन्! हम श्रावक के व्रत ग्रहण करते हैं।'' वह अहर्निश मंदिर में ठहर कर धर्मकथा करने लगा। कुछ ही दिनों में उसकी धनसार से मित्रता हो गयी।

एक दिन सागरदत्त उपवास करके धनसार श्रेष्ठी के जिनालय में रात्रि विश्राम हेतु ठहर गया। प्रातःकाल धनसार जिनालय आया, वहाँ भगवान की पूजा, गुरु की वंदना कर उसने धर्मकथा श्रवण की। तत्पश्चात् धनसार मंत्री सागरदत्त को आदरपूर्वक अपने घर भोजन के लिए ले गया। सेठ ने षट्रस युक्त भोजन क्षुधा निवारण हेतु सुंदर पात्रों में परोसा। अवसर पाकर सागरदत्त ने धनसार से कहा–''यदि आप मुझ पर स्नेह दिखाते हो तो मेरे पुत्र से अपने पुत्री का पाणिग्रहण कर दीजिए अन्यथा मेरा मन टूट जायेगा।'' मंत्री की बात सुनकर धनसार ने कहा–''हमें स्वीकार है।''

सागरचंद्र तन्द्रा रहित होकर अपने मित्र के साथ बैठा था। उसने मित्र से कहा–''धनमित्र! मेरी बात ध्यान से सुनो, मेरी चेतना मृगांकलेखा में है। जब से मैंने उसे मंदिर में देखा है तभी से मैं उसके बिना बहुत परेशान हूँ।'' फिर दोनों मित्र अंधेरी रात में तलवार लेकर चल दिये और उस उद्यान में पहुँचे जहाँ मृगांकलेखा अपनी चित्रलेखा और पत्रलेखा सखियों के साथ बैठी थी। दोनों खड़े होकर देखने लगे। मृगांकलेखा को देखकर सागरचंद्र को बड़ा संतोष हुआ।

इस बीच चित्रलेखा ने कहा–''हे सखी! तू धन्य है जो तुझे मकरध्वज जैसा श्रेष्ठ वर मिला, जो सभी गुणों में श्रेष्ठ है।'' यह सुन पत्रलेखा बोली–''हे सखी! तू तो बड़ी भोली-भाली है। वर के सारभूत गुण तुझे ज्ञात ही नहीं जो व्यापारी पुत्र अनंगसेन में हैं। सागरचंद्र मंत्रीपुत्र है, राजा की आज्ञा से नित्य ही विदेश में भ्रमण करता है।'' तब पुनः चित्रलेखा बोली–''अनंगसेन की आयु तो कुल बीस वर्ष है।'' मृगांकलेखा ने दोनों की चर्चा सुन लज्जावश कुछ जबाव नहीं दिया।

सागरचंद्र दोनों की वार्तालाप सुनकर क्रोध में आ गया। उसने म्यान से तलवार खींची और उनकी तरफ दौड़ पड़ा। तभी धनमित्र ने उसे ऐसा करने से रोका और सम्बोधित किया–''हे मित्र! सखियों ने जो कहा वह हँसी में कहा है, उसका विषाद मत कीजिए। वह लज्जावती निरापराध है।'' इस प्रकार समझाकर वह सागरचंद्र को घर ले गया।

सागरचंद्र के मन में कषाय बढ़ने लगी। परिजन के भय से पाणिग्रहण तो किया पर उसमें रागयुक्त नहीं हुआ। सभी आनंदित थे पर सागरचंद्र ने मृगांकलेखा से दृष्टि फेर ली।

प्रियविरह की पीड़ा से मृगांकलेखा संक्लिष्ट हो गयी। वह अपना मस्तक सागरचंद्र के चरणों में रखती है, सारी बात बता देती है, फिर भी वह उसकी तरफ नहीं देखता। ऐसे दु:ख में उसके इक्कीस वर्ष बीत गए।

एक दिन सागरचंद्र ने कहा–''इसे देखकर मेरे नेत्र जलने लगते हैं, इसलिए इसे इसके पिता के घर भेज दो।'' सागरदत्त बोला–''पुत्र! ज्यादा क्रोध अच्छा नहीं होता। बिना अपराध के दण्ड देना उचित नहीं है।'' सागरचंद्र ने कहा–''जो इसे घर में रखेगा वह मेरा शत्रु होगा और जो मुझसे इसके संबंध में बात करेगा वह शीघ्र ही मेरा मुख नहीं देखेगा।'' पुत्र के वचन सुनकर माता-पिता विलाप करने लगे।

मृगांकलेखा ने जब पति के वचनों को सुना तब सास से पूछा–''आप ही बतायें मुझे क्या करना चाहिए?'' सास ने कहा–''तेरे रहते मेरा पुत्र घर में नहीं रहेगा, तू शीघ्र ही पिता के घर चली जा। हे पाप राशे! अपना मुख मत दिखाना।'' मृगांकलेखा सास का आदेश ग्रहणकर पिता के घर चली गयी।

वह आकुल-व्याकुल होकर के माता-पिता के घर पहुँची। पिता ने पूछा–''हे पुत्री! तू यहाँ क्यों और किसलिए आयी है? स्पष्ट कह किसने तेरा तिरस्कार किया है?'' उसने सारी बातें बता दी और कहा–''मुझे बिना किसी दोष के परित्यक्त कर दिया है।'' पिता दु:खित हो बोले–''पुत्री! धर्मार्जन में समय बिताओ, सारा अशुभ कर्म टल जायेगा।'' धर्मध्यान में तल्लीन रहते हुये उसका समय बीत रहा था।

किसी दिन मृगांकलेखा के महल के निकट की कोई स्त्री ने कहा–''कुलवती स्त्रियों को पितृगृह में रहना ठीक नहीं है, पतिगृह में दासी बनकर रहना ठीक है।'' पड़ोसिन की बात सुनकर मृगांकलेखा अपनी सखी के साथ ससुराल आ गयी।

पतिगृह में कोई उसे पसंद नहीं करता था। सास ने कहा–''निर्लज्ज! क्या तू मुझे किसी का विनाश दिखलाएगी?'' उसने उसे कठोर लाठी से पीटा और अपमान युक्त वचन बोले। उसी समय सागरदत्त वहां आ पहुँचे और बहु को दु:खी देखकर पत्नी से बोले–''कुलपरम्परा में पुत्र वधुएँ रहती आयी हैं। वहीं भवन के भीतर कुलवधू को स्थान दो।'' मंत्रीपत्नी पद्मा बोली–''तुम्हारा पुत्र इसे रखना नहीं चाहता है। यह बिना आदर के यहाँ आयी है, इसलिए यहाँ द्वार पर बैठी है।''

पत्नी के वचन सुनकर सागरदत्त ने मृगांकलेखा से पूछा–''तेरा पराभव किसने किया है?'' मृगांकलेखा रोती हुयी बोली–''अब मैं पिता के घर नहीं जाऊँगी। आप दासी समझ कर रख लीजिए अथवा आज्ञा दीजिए कि मैं आर्यिका दीक्षा धारण करूँ

या अनशन तप करके प्राण त्याग दूँ।'' सागरदत्त ने कहा–''बेटी! धर्मध्यान करती हुयी घर पर ही रहो, सारी दासियाँ तुम्हारी सेवा करेंगी।'' इस तरह उसके सात वर्ष और बीत गये।

लाड़ देश का राजा भीम था। उस पर आक्रमण के लिए राजा अवन्तिसेन अपने भृत्यों का आह्वानन करता हुआ सागरचंद्र से बोला–''तुम साम, दाम, दण्ड, भेद चारों में निपुण हो, इसलिए तुम्हें हम इस युद्ध के लिए नियुक्त करते हैं।'' राजा ने युद्ध के निमित्त अपना सजा बीड़ा सागरचंद्र को दे दिया। सागरचंद्र ने सारा वृतान्त पिता को बताया और शीघ्र ही कटक तैयार करवाया।

शुभ मुहूर्त में युद्ध के लिए प्रस्थान की आज्ञा प्राप्त कर सागरचंद्र माता-पिता के चरण स्पर्श कर जाने लगा, इसी बीच मृगांकलेखा ने सोचा कि आज अल्प समय के लिए ही सही पति दर्शन करने का व संभाषण करने का सुअवसर प्राप्त होगा। वह सोलह श्रृंगार कर व हाथ में मंगल कलश लिए जाने लगी, तभी उसका दाहिना अंग फड़कने लगा, छींक आयी।'' हाय! मेरे भाग्य में स्वामी का समागम नहीं है, परन्तु यदि मैं आज नहीं जाती हूँ तो मुझे उनके दर्शन नहीं होंगे, क्योंकि वे आज ही युद्ध के लिए प्रस्थान करेंगे।'' ऐसा विचार करती हुयी वह चित्रलेखा सखी को लेकर सागरचंद्र के निकट पहुँच गयी।

सागरचंद्र मौन रहा, उसकी ओर देख अनदेखा कर दिया। मृगांकलेखा उसके चरणों में गिरकर बोली–''किस कारण बिलखती हुयी अपनी भार्या को छोड़कर जा रहे हो? आप विजयी हों और शीघ्र ही पुनः दर्शन दें।'' परन्तु सागरचंद्र उसका अनादर करता हुआ बिना कुछ कहे चला गया।

पति के द्वारा अपमानित होने पर उसका सारा शरीर विरह की अग्नि से जलने लगा और वह मूर्च्छित होकर गिर पड़ी। सचेत होने पर पति के मार्ग की ओर भागने लगी, तभी निमित्तज्ञानी चन्द्रसूरि ने कहा–''हे पुत्री! धैर्य धरो, तप आदि अनुष्ठान करो।'' यह सुनकर वह जिन प्रतिमा के समक्ष जा बैठी और संकल्प लिया कि, ''जब मेरे पति पारणा करायेंगे तभी भोजन करूँगी अन्यथा मेरा आजीवन अनशन का नियम है।'' तभी चक्रेश्वरी देवी का आसन कम्पायमान हुआ, उसने अवधिज्ञान से जाना कि यह शील और संयम से पवित्र होते हुए भी इतनी दुःखी है।

सागरचंद्र जहां ठहरा था, चक्रेश्वरी देवी वहां पहुंच गयी और उसने जोर-जोर से आक्रन्दन प्रारंभ कर दिया। उसे सुनकर सागरचंद्र अपने मित्र सहित तलवार लेकर उस ध्वनि की ओर चलने लगा, उसका दाहिना नेत्र फड़कने लगा। मन ही मन वह विचार करने लगा कि आज क्या शुभ होने वाला है? देवी के पास पहुँचकर उसने पूछा–''हे अम्बे! आप किस कारण से दुःखी हो? मुझसे कारण कहिये, मैं शीघ्र मिटाने का प्रयत्न करूँगा।''

देवी ने कहा–''मैं नवयौवन धारी हूँ और गोमुख नामक विद्याधर मेरा पति है। मेरा पति पाणिग्रहण करके हृदय से प्रीति तोड़कर कटक में चला गया। मेरे दु:ख का यही वृतान्त है।'' कुमार ने उसे समझाने का प्रयास किया, तभी वह बोली–''ओ अविवेकी तुम अपने भले-बुरे को क्यों नहीं जानते हो? हे प्रवीण! तुम्हारी प्रिया मरण का उपाय सोच रही है, उसने संन्यास क्रिया स्थापित कर ली है।'' यह सुनकर सागरचंद्र ने पूछा–''आप हमारी भार्या का सम्पूर्ण वृतान्त कैसे जानती हैं?'' तब उसने अपना चक्रेश्वरी रूप प्रगट किया और स्त्रीरूप बनने का कारण बतलाया। देवी ने कहा–''हे कुमार! तुम घर जाओ।'' सागरचंद्र ने कहा–''आज रात्रि हो गयी है, प्रात:काल होते ही चला जाऊँगा।'' फिर चक्रेश्वरी ने उसे आकाशगामनी गुटिका दी। कुमार ने प्रणाम किया और चक्रेश्वरी वहाँ से चली गयी।

मृगांकलेखा के मोह में घिरा सागरचंद्र ''हाय! मैंने अच्छा नहीं किया'' कहता हुआ मूर्च्छित हो गया। सचेत होकर अपनी निंदा करता हुआ मित्र से बोला–''मुझे अभी मिलना होगा अन्यथा वह अपने प्राण तज देगी।'' दोनों मृगांकलेखा के महल में पहुँच जाते हैं। महल के झरोखे में से सागरचंद्र देखता है कि मृगांकलेखा ने मेरे विरह में आँसू बहाकर बुरा हाल बना रखा है। तदुपरांत धनमित्र को उसके पास भेजता है।

धनमित्र को देखकर चित्रेलखा का शरीर कांपने लगा। वह भागती हुयी आयी और बोली–''तू भीतर कैसे आया? शीघ्र लौट जा। क्या तुझे नहीं पता कि इस महल में सागरचंद्र के अतिरिक्त सबका आना वर्जित है।'' तब धनमित्र बोला–''हे चित्रलेखा! तू यह नहीं जानती कि सागरचंद्र यहाँ आकर ठहरे हुये हैं।'' और उसने सारा वृतांत कह दिया।

सब सुनकर चित्रलेखा शीघ्रता से मृगांकलेखा के पास गयी। वह पति के आने का वृतांत बता ही रही थी, इतने में सागरचंद्र भीतर आ गये। मृगांकलेखा की आँखों से खुशी के आँसू झरने लगे, वह एक टक कुमार को देखती रही। कुमार उसके पास आकर बोला–''धन्य है आज की रात्रि जो मैं अपनी पतिव्रता पत्नी को जीवित देख रहा हूँ।'' सागरचंद्र अपने पापों की बार-बार क्षमा माँगता है और चक्रेश्वरी का सारा वृतान्त सुनाता है। मृगांकलेखा ने कहा–''आपका नहीं बल्कि मेरे कर्मों का ही दोष है।''

सच ही कहा है, ''जो नर-नारी निपुण होते हैं, उन पर सारी आपत्तियाँ आती हैं।''

रात्रि व्यतीत होने पर सागरचंद्र ने मधुर वचनों में मृगांकलेखा से कहा–''प्रिये! तुम यहीं रहना, मैं देशांतर को जाता हूँ।'' मृगांकलेखा ने कहा–''हे नाथ! आपके इस आगमन को कोई नहीं जानता और अभी मेरा ऋतु का समय था, अत: कुछ भी हो

गया तो मेरे वचनों को कौन सुनेगा? लोक में मेरी निंदा होगी, सासु माँ मुझे घर से निष्कासित कर देंगी, अतः आप बताकर जाइये।'' तब कुमार ने कहा–''मैं गुप्तरूप से आया हूँ, राजा मुझसे नाराज हो जायेंगे, अतः तुम मेरी नामांकित रत्नजड़ित मुद्रा रख लो, इसे सभी जानते हैं।'' इत्यादि समझाकर कुमार चला जाता है।

कुछ दिन पश्चात् सती का मुख पीला पड़ने लगा, गर्भ के चिन्ह प्रकट होने लगे। सात माह पूरे होने पर वह स्वप्न देखती है कि मुख में बालभानु प्रवेश कर रहा है, मैं देव विमान में चढ़ गयी हूँ और शीघ्र ही मेरा पतन हो गया। निद्रा भंग होते ही वह हर्ष-विषाद से भर जाती है। तभी एक दासी ने मृगांकलेखा को गर्भवती देखा और उसी क्षण सास पद्मा को बता दिया। सुनते ही उसकी क्रोधाग्नि भड़क उठी, जैसे अग्नि में घृत डाल दिया हो।

पद्मा मृगांकलेखा के पास पहुँची और बोली–''निर्लज्ज! तूने काला मुख कर दिया।'' मृगांकलेखा ने कहा–''हे अम्ब! आपके पुत्र गुप्तरूप से मित्र के साथ मिलने आये थे और रत्नजड़ित अपनी ये मुद्रा मुझे देकर गये हैं। यदि आपको विश्वास न हो तो किंकर को भेजकर कुमार से पूछवा लीजिए, फिर आप जो दण्ड देंगी मुझे स्वीकार होगा।'' सास गुस्से में बोली–''यह बता तूने यह मुद्रा किस देश से बनवाई है? उसने तो जाते समय भी तेरा मुँह नहीं देखा था, फिर रात्रि में कैसे आ सकता है। हे दुष्टा जा-जा, यहाँ मत ठहर, जहाँ इच्छा हो वहाँ जा।'' इत्यादि कटु वचन कह परिवार से उसे सखी सहित निष्कासित कर दिया।

पद्मा ने मृगांकलेखा की माता के पास दासी भेजकर कहलवाया–''इसे परीक्षा करके ही रखना।'' और सारी बात कहलवा दी। ससुराल से निकलकर मृगांकलेखा सीधी अपने माता-पिता के घर आयी, परंतु उन्होंने भी उसे निर्ममत्व भाव से छोड़ दिया।

तब उसका भाई धनञ्जय जो दया की मूर्ति ही था, पिता से बोला–''पति का स्नेह न होने से सास ने तिरस्कार किया, परंतु जब पुत्री को माता-पिता के घर भी स्थान नहीं मिलेगा तो बेचारी कहाँ जायेगी? मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ, जब तक संशय का निराकरण न हो तब तक इसे यहाँ रहने दीजिए।'' तभी एक कोतवाल ससुराल पक्ष से आया और बोला–''मुझे नरक में जाना पड़े, परंतु आप इस पुत्री को मत रखिये, जंगल में छुड़वा दीजिए।'' यह सुनकर सेठ ने पुत्री को भिखारियों की तरह बाहर निकाल दिया और कपाट बंद कर लिये।

मृगांकलेखा के साथ चित्रेलखा भी गयी। दोनों दुःखी होती हुयी चली जा रही थीं, तभी कोतवाल ने कहा–''हे सती! आप तन्द्रा और विकल्प छोड़कर वहाँ जाओ, जहाँ सागरचंद्र गया है।'' बेचारी बीहड़ जंगलों में भटकती हुयी जा रही थीं, तभी बहुत सारे बैलों पर विपुल धन लादकर कोई चित्रगुप्त नामक सार्थवाह वहाँ आ पहुँचा। उसकी

पत्नी ने सती को कुलदेवी के समान समझकर, उसके दु:ख से द्रवित हो पति से कहा–''हे नाथ! यह करूणाजनक विलाप क्यों कर रही है? चलिए, हम लोग चलकर पूछते हैं।'' वे सती के पास गए और पूछा–''तुम किसकी पुत्री हो? तुम्हारा पति कौन है? आवास कहाँ है?'' सार्थवाह के वचन सुन मृगांकलेखा ने कहा–''कर्म लिखी कौन मिटा सकता है? मेरे भर्तार अवन्तिसेन राजा की छावनी में हैं, मैं वहीं जा रही हूँ।'' सार्थवाह ने कहा–''पुत्री! हमारे साथ चलो, हम भी कटक की ओर जा रहे हैं। धैर्य रखो और धर्मध्यान में चित्त लगाओ।''

मृगांकलेखा धर्मध्यान करते हुये समय बिता रही थी। एक दिन चित्रलेखा ईंधन और जल लेने गयी हुयी थी, तभी एक भिलराज की दृष्टि उस पर पड़ी और वह उसे उठाकर ले गया। सर्वत्र खोज करने पर भी वह नहीं मिली तब मृगांकलेखा जोर-जोर से रोने लगी और बोली–''सखी! तुम ही मेरा दु:ख-दर्द समझती थीं, बोलो कहाँ हो? अब अपना दु:ख-दर्द किससे कहूँगी?'' सार्थवाह ने समझाया–''पुत्री! कर्म भोगे बिना क्षीण नहीं होते, कर्मों की गति न्यारी है। धैर्य रखो।''

सात दिन व्यतीत हुये। सार्थवाह का काफिला लाड़ देश के वन प्रदेश में पहुँचा। वन में तस्करों से भयानक युद्ध हुआ और लुटेरे सार्थवाह को मारकर इधर-उधर बिखर गये। सती मृगांकलेखा भयभीत होकर वटवृक्ष की ओट में छिप गयी। पश्चात् चार दिन तक भगवान का नाम लेती हुयी भटकती रही और बीच जंगल में उसने पुत्र को जन्म दिया। पुत्र को गोद में उठाकर वह रोने लगी, बोली–''हे वत्स! तू तो निर्दोष है किंतु इस जन्म में तू मुझ अभागिन की गोद में आया है। यदि तेरे पिता साथ होते तो तेरा जन्मोत्सव मनाते।'' इत्यादि वचनों के द्वारा करुणाजनक विलाप करने लगी। तभी सहसा वनदेवी प्रकट हुयी और कहने लगी–''सुंदरी! सूने जंगल में मत रो, रोने से कभी प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। हे बाले! तेरा प्रिय तुझे दानशाला में मिलेगा। तू कायर मत बन। तू अपने भर्तार सहित पुत्र की विशाल लक्ष्मी भोगेगी।'' इस प्रकार कहकर देवी चली गयी। देवी के वचन सुनकर सती विश्वस्त हुयी और उसने अपने पुत्र को कण्ठ से लगा लिया।

वह एक मंदिर के कोने में जहाँ छाया थी वहीं पर शिशु को रखकर नहाने चली गयी, इतने में वहाँ एक लोभी श्वान आया और उस बालक को मुख में दबाकर ले गया। वह श्वान सुमनपुर के निकट पहुँचा जहाँ वैश्रवण वणिक अपनी पत्नी धनवती के साथ निवास करता था। उस दिन वैश्रवण किंकरों सहित नगर के बाहर आया हुआ था। श्वान ने पोटली फाड़ने हेतु शिशु को जमीन पर रखा और शीघ्र ही दाँतों से पोटली खोलने लगा। वह बालक रो पड़ा, उसकी आवाज सुनकर वैश्रवण ने श्वान को ललकारा और पुत्र को गोद में उठा लिया।

वैश्रवण पुत्र को लेकर वहाँ पहुँचा जहाँ धनवती सो रही थी, उससे बोला–''हे चंदबदली! सुंदर शिशु को लीजिए।'' ऐसा कहकर उसे प्रसूतिगृह में स्थापित किया

और जन-मन को आश्चर्यचकित करने वाली जन्मोत्सव संबंधी बधाईयाँ करवायीं। कुछ दिन बीत जाने पर पुत्र की नामकरण क्रिया करवायी और सुरेन्द्रदत्त नाम रखा। बालक के प्रभाव से वैश्रवण उसी दिन से कुबेर के समान धनपति हो गया। धनवती भी सचमुच धन्यवती हो गयी अर्थात् गर्भवती हो गयी। उसने नरदेव और धनदेव नामक दो पुत्रों को जन्म दिया।

पुत्र क्रमशः तरुण अवस्था को प्राप्त हुए। सुरेन्द्रदत्त तो ऐसा लगता था मानो साक्षात् कामदेव हो। वैश्रवण ने बत्तीस कन्याओं के साथ उसका विवाह किया। वह भी देव-शास्त्र-गुरु की भक्ति करता हुआ सुख भोगने लगा। सुरेन्द्र अपने वैभव के द्वारा दीन-हीन अनाथों का पोषण करता।

इधर मृगांकलेखा तन को प्रक्षालित करके जब वापस आयी तो पुत्र को न पाकर मूर्च्छित होकर गिर पड़ी। वन की पवन द्वारा चेतन्यता को प्राप्त होकर बोली–''हे विधाता! मैंने ऐसा कौन-सा पाप किया था जो मैं पति और पुत्र दोनों से पृथक हो गयी।'' इस प्रकार उच्च स्वर में विलाप करती हुयी सती को ललिता नामक ग्वालिन ने देखा। वह उसे अपने घर ले आयी और बड़े प्रेम से रखा, उसे समझाया–''पुत्री! कोई सदा सुखी नहीं रहता, संसार में सूर्य-चंद्रमा की अवस्थाएं भी घटती-बढ़ती हैं। कर्माधीन मनुष्य संसार में सदा नट की भाँति नाचते रहते हैं।'' उसकी बात सुनकर मृगांकलेखा यह कहते हुए कि ''मैं सदैव विदेश में भ्रमण करने वाली वंजारिन हूँ'' वहीं ठहर जाती है। वह धर्मध्यानपूर्वक अपना समय व्यतीत करने लगी।

एक दिन बसंत सेठ वहाँ गोकुल निरीक्षण करने आया। वहाँ उसने मृगांकलेखा को देखा और उसके मन में पाप आ गया। वह ललिता ग्वालिन से पूछता है, ''यह कौन है?'' वह बोली–''यह वंजारिन है और मेरी धर्मपुत्री है।'' सेठ ने कहा–''इस सुंदरी को घर में रखकर तुझे भय नहीं है क्या? यदि राजा इसके बारे में सुनेगा तो महल में ले जायेगा।'' वह पापी मन में सोच रहा था कि, मेरे गृह में रहते-रहते ये मेरे अधीन हो जायेगी, इसमें कोई संदेह नहीं है। सेठ ने कहा–''तुम इसे मेरे घर भेज दो।'' ललिता बोली–''यह महासती है। इसे घर में आवास देकर क्या करोगे?'' सेठ बोला–''जैसे यह तुम्हारे घर सुखपूर्वक रह रही है, वैसे ही मेरे यहां रहेगी।'' सेठ की बात सुनकर ललिता ने मृगांकलेखा को उसे सौंप दिया। सेठ ने मृगांकलेखा को एकांत में गुप्तरीति से इस प्रकार रखा जिससे पत्नी को जरा भी शक न हो सके।

वहाँ रहते हुए बाईस दिन बीत गये। अर्द्धरात्रि में सेठ महल के शिखर पर अचानक ही चढ़ गया, परंतु वहाँ से अपनी पत्नी को देखकर काँप उठा, हृदय गति रुक सी गयी। वह शिखर में छेदकर नीचे उतरा और उसका सिर फूट गया, जिससे मृत्यु को प्राप्त हो गया। आवाज सुन सेठानी आयी और समझ गयी कि सेठ पापी हो गया था। सती को देख सेठानी भयभीत हुयी, सोचने लगी यदि राजा को पता चला तो

निश्चित ही दण्ड देगा। इसलिए उसने अर्द्धरात्रि में ही सुंदरी मृगांकलेखा को भवन से निकाल दिया।

बसंतसेठ की पत्नी रोती हुयी परिवारीजनों को पुकारने लगी, ''हाय! स्वामी आप हमें छोड़कर कहाँ चले गये?'' इत्यादि विलाप करने लगी। इससे मृत्यु के रहस्य को किसी ने नहीं जाना। अंत में दाह संस्कार किया गया।

इधर सती गोकुल का मार्ग भूल गयी, एक वृक्ष के नीचे रात्रि व्यतीत कर प्रातः चल दी और मतिरेख तपस्वी के मठ के निकट विराम हेतु ठहर गयी। तपस्वी ने पूछा–''हे पुत्री! तेरे साथ कोई नहीं है क्या? सती अपना वृतांत बता ही रही थी, इतने में ग्राम के स्वामी के किंकर हाथ में तलवार लिये आये और सुंदरी को पकड़कर चण्डी के मंदिर में ले गये।

उस मंदिर में उपस्थित नव नारियाँ और दस पुरुष मृगांकलेखा को देखकर आक्रन्दन करने लगे, काँप उठे। एक स्त्री ने कहा–''रानी पुत्र के जन्मोत्सव पर दस युगलों की बलि चढ़ाना चाहती है। हम अपना मरण जानकर रो रहे हैं, क्योंकि अभी तक हम 19 थे पर आपके आने से बीस पूरे हो गये।'' मृगांकलेखा ने कहा–''धैर्य रखिए, मैं उपाय द्वारा सबको छुड़वाऊँगी।''

सभी को चण्डी देवी के सामने वध के लिए खड़ा कर दिया गया। मृगांकलेखा बोली–''हे राजन्! सबसे पहले मेरी बलि दीजिए।'' राजा बोला–''पहले मरो या बाद में इसमें क्या अंतर है?'' मृगांकलेखा ने कहा–''पहले मरने से अपनी आँखों के सामने इन सबको मरते हुये तो नहीं देखूँगी। हे नरेश! आँखों से देखा जाने वाला पाप कानों से सुने जाने वाले पाप की अपेक्षा अधिक होता है।'' सती की बात सुनकर राजा ने कहा–''तेरी बुद्धि दयायुक्त है, इसलिए तुझे मेरे द्वारा मुक्ति दी जाती है।'' सती बोली–''हे भ्रात! मैं अकेली रहकर क्या करूँगी? आप इन सबको छोड़कर मुझे मार दीजिए।'' सती की बात सुनकर राजा मन में निराकरण का उपाय सोचता है और विचारता है कि, यह साक्षात् अनुकम्पा की मूर्ति है। फिर उस सुंदर नामक राजा ने अपने मंत्रियों और परिजनों सहित हिंसा कर्म छोड़ दिया।

मृगांकलेखा नगर की ओर गमन करती हुयी चली जा रही थी, मार्ग में दीर्घकाय सिंह को देखकर काँप गई, णमोकार मंत्र का स्मरण करते हुये वहाँ से निकली और सिद्धार्थ नामक नगर में पहुँची, वहीं रात्रि विश्राम किया। प्रातःकाल वह उठी और देखा एक महिला रो रही है। रोते हुए वह महिला सती के गले से लिपट गयी और कहने लगी–''हे पुत्री! क्या तू मुझे नहीं पहचानती? मैं तेरे विवाह के समय असाध्य तथा मरणासन्न थी, उस समय मेरा-तेरा समागम अल्प समय के लिए हुआ था।'' इस प्रकार कहकर वह मृगांकलेखा को अपने साथ घर ले गयी और बोली–''मेरे भवन में तेरे समान उम्रवाली समूची दासियाँ हैं। ये उत्तम वस्त्राभूषण लो और मेरे वचनानुसार कार्य करो।'' उस कामसेना वेश्या के पापयुक्त वचन सुनकर सती ने कहा–''शील के

साथ मर जाना श्रेष्ठ है।'' क्रोधित हो वेश्या बोली–''तू मेरी दासी है।'' उसने सती को सांकल से बांध दिया।

उसी दिन चोर वेश्या को मारकर धन लूटकर ले गये और सती की सांकल क्षणभर में छूट गयीं। तब वेश्या की माता सती के चरणों में गिरकर रुदन करने लगी और क्षमा माँगने लगी। पश्चात् वह गुप्तरूप से राजभवन में गयी और राजा कनकध्वज से बोली–''मेरे यहाँ रूपवती नारी है जो आपके स्नेह योग्य है।''

राजा ने शीघ्र ही एक चतुर प्रातिहारी को सती को बुलाने हेतु भेजा। वह सती से बोली–''तुम राजमहल चलो।'' सती ने कहा–''राजपिता ने मुझे क्यों बुलाया है? यदि गलत दृष्टि से बुलाया है और दुराग्रह पूर्वक ले जायी गयी तो यमलोक को गमन कर जाऊँगी।'' प्रातिहारी ने राजा के पास आकर सब बात बतायी। राजन् ने पुनः मंत्री को भेजा। मंत्री ने सती से कहा–''बेटी! राजा का आदेश है, तुम राजमहल में चलो। राजा सबका पिता है।'' सती मंत्री के साथ चली गयी, परंतु राजा का भाव समझकर उसने शील की रक्षा के लिए अपना रूप पागल जैसा बना लिया, कुचेष्टाएँ करती हुयी राजमहल में पहुँची।

राजा ने घोषणा करवायी जो इस कन्या को ठीक करेगा, उसे आधा राज्य दूँगा। राजा के वचनों को सुनकर तंत्रवादी कनकवाहू ने एकांत में मृगांकलेखा के शरीर में ज्वालामालिनी को प्रवेश कराकर उसके बारे में पूछा। देवी ने कहा–''यह मनस्विनी है, शील की रक्षा चाहती है, इसलिए ऐसा रूप धारण किया है। इसे कोई बाधा नहीं है।'' देवी के वचनों को सुनकर तंत्रवादी ने उसे विदा किया।

सत्य जानकर राजा ने सती को बुलाया और उससे कहा–''आप निशंक होकर राजमंदिर में रहो।'' कुछ समय बाद वहाँ परमावधिज्ञान के धारक मुनिराज का आगमन हुआ। राजा ने उनकी चरण वंदना कर आत्म निंदा की और धर्मोपदेश के लिये निवेदन किया। उपदेश सुनकर राजा ने श्रावक के व्रत ग्रहण किये। इसके उपरांत राजा ने पूछा–''हे स्वामिन्! इस मृगांकलेखा को पति और पुत्र का समागम कैसे होगा?'' मुनिराज ने कहा–''सिद्धार्थपुर की दानशाला में इसे पति और पुत्र का समागम होगा।''

दानशाला का निर्माण कराया गया। राजा ने सती को कहा–''तुम दानशाला में रहो। यहीं तुम्हारे पति और पुत्र आयेंगे।'' जिनभक्त विमलपति सेठ ने कहा–''राजन्! इस सती को हमारे घर भेज दो। मेरी पत्नी निशदिन इसके समीप रहेगी।'' सेठ के वचन सुनकर मृगांकलेखा उसके घर रहने के लिए तैयार हो गयी।

मृगांकलेखा मुनिजनों को आहार देती, दुःखी जनों की नाना प्रकार से सेवा करती, इस प्रकार अपना समय व्यतीत कर रही थी। एक दिन अचानक उसे पुत्र का समाचार प्राप्त हुआ कि सेठ वैश्रवण के यहाँ उसका पालन हुआ, उसका नाम सुरेन्द्रदत्त है और पिता के व्यापार को कुशलता से संभालते हुए कुबेर की गणना में उसका नाम गिना जाने लगा है।

एक दिन वणिक श्रेष्ठी वैश्रवण के महल में एक राजपुरोहित आया और सेठ से बोला–''हमारे राजा आपके पुत्र को अपनी पुत्री देना चाहते हैं।'' सेठ से संबंध की स्वीकृति प्राप्त कर पुरोहित आनंदित हो शीघ्र ही चला गया। सेठानी विवाह की बात सुनकर ईर्ष्या से भर गयी, विचार करती है कि, ''दूसरी स्त्री का जाया बेटा मेरा घर का प्रधान है, राजा उसे अपनी कन्या देना चाहता है। उसके आगे मेरे पुत्र हीन और तुच्छ हैं।'' ऐसा विचार करती हुयी उसने मन में ठान लिया कि किसी भी उपाय से सुरेन्द्रदत्त को मारना चाहिए।

सेठानी ने विष मिश्रित मोदक बनाये और दासी से कहा–''जाओ, ये बड़ा मोदक सुरेन्द्रदत्त को और क्रमशः छोटे मोदक नरदेव और धनदेव को देना।'' दासी ने पुत्रों को मोदक दिये, परंतु उस दिन सुरेन्द्रदत्त का एक भुक्ति का नियम था, इसलिए उसने मोदक नहीं खाया। सुरेन्द्रदत्त का लड्डू लघु भ्राताओं ने खा लिया, खाते ही सारे शरीर में जहर फैल गया और दोनों पुत्रों की मृत्यु हो गयी। हाहाकार सुनकर सेठ वहाँ पहुँचा और सेठानी का सारा प्रपञ्च समझ गया। भाइयों के मरण से दुःखी सुरेन्द्रदत्त को सेठ ने एकांत में बुलाया और कहा–''पुत्र! आज मैं तुमसे तुम्हारा वृतान्त कहता हूँ। तुम मेरे पुत्र नहीं हो और न मैं तुम्हारा पिता हूँ, यही सत्य है। इन दोनों पुत्रों को प्राण रहित करने वाली इन ही की माता धनवती है। अब तुम्हारी कुशलता इसी में है कि तुम अपने असली माता-पिता के नगर की ओर गमन करो।'' सेठ ने सुरेन्द्र को उसके पिता की मुद्रा सौंपकर कहा–''यही तुम्हारे माता-पिता की निशानी है।''

सेठ के समझाने पर सुरेन्द्रदत्त वहाँ से चला गया, निष्पाप यत्र-तत्र पिता को खोजता हुआ ताम्रलिप्त नगर में पहुँचा, वहाँ ऋषभदेव भगवान के चैत्यालय में जाकर चारों प्रकार के आहार का त्याग किया और वहीं माता-पिता के आवास का स्मरण करता हुआ ध्यान में बैठ गया। तभी चक्रेश्वरी देवी प्रकट हुयी और बोली–''हे विज्ञ! तुम दक्षिण दिशा की ओर जाओ। तुम्हारी माता सिद्धार्थपुर नगर में है, वहीं राजा कनकध्वज द्वारा बनाई 'मृगांकलेखा' नाम की दानशाला है, वहीं पर तुम्हारे पिता आयेंगे और अतिशीघ्र मध्यान्ह बेला में तुम्हारा उनसे मिलन होगा। किंतु अभी एक माह की अवधि शेष मानो। हे वत्स! शोक छोड़ो और शीघ्र उसी स्थान पर चले जाओ।'' इतना कहकर देवी अन्तर्ध्यान हो गयी और सुरेन्द्र भी सिद्धार्थ नगर की ओर चल दिया।

उधर लाट देश में अवन्तिसेन राजा ने युद्ध को जीतकर शत्रुंजय के नरेश को वश में कर लिया और 16 वर्ष तक निर्विघ्नरूप से वहीं ठहरा रहा। राजा के आदेश से सागरचंद्र भी वहीं ठहरा। कुछ समय उपरांत मृगांकलेखा का स्मरण आते ही सागरचंद्र कटक से चल पड़ा। मार्ग में उसने किसी पुरुष के पुकारने की आवाज सुनी कि, ''बचाओ यह पिशाच मुझ निरापराध को कपाली विद्या साधकर मार रहा है।'' इन वचनों को सुनकर सागरचंद्र हाथ में तलवार ले पर्वत की ओर दौड़ा और वहाँ पर्वत पर कण्ठगत प्राणों वाले एक सुभट को देखा। कापालिक उस सुभट से कह रहा था

कि, ''मैंने तुझे उपवासपूर्वक प्राप्त किया है, इस समय तू मृत्यु की दाड़ में पड़ा मन में स्वामी को धारण कर।'' इतना कहकर ज्योंही कापालिक ने तलवार निकाली तभी सागरचंद्र ने कहा–''ठहर जा, मेरे होते तू इसे नहीं मार सकता।'' कुमार के वचन सुनकर कापालिक कुमार की ओर भागा और कुमार ने तलवार से उसकी जंघा पर प्रहार कर दिया, जिससे वह जमीन पर गिर गया। कुमार ने उस मरणासन्न कापालिक को णमोकार मंत्र सुनाया और उससे उसका ध्यान करने को कहा। कुमार के वचन सुनकर कापालिक ने श्रद्धा से मंत्र पड़ा और शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त होकर देवलोक में व्यतंर देव हुआ।

कुमार ने अपने नगर में पहुँचकर अपनी अर्जित सम्पत्ति पिता सागरदत्त को सौंपी और मृगांकलेखा से मिलने उसके भवन में गया। उसे वहाँ न पाकर सोचा कि, कहीं पिता के घर तो नहीं चली गयी, जाकर माता से पूछा। माँ ने कहा–''उसका नाम भी मत लो, तुम्हारे जाने के पश्चात् कुल को कलंकित करके गर्भवती हो गयी।'' माँ के वचन सुनकर कुमार पर वज्रपात सा हुआ और वह मूर्च्छित हो गया। सब जगह हाहाकार मच गया। कुमार सचेत होते ही मृगांकलेखा को पुकारने लगा, माँ से पूछा–''वह सती कहाँ तिष्ठति है?'' माँ ने कहा–''उस पापिनी को धाय सहित घर से निकाल दिया था और उसके माता-पिता ने भी निरादर से निकाल दिया।'' कुमार ने पूछा–''माँ! तुमने मेरी मुद्रा क्यों नहीं देखी? क्यों उसे निष्कासित कर दिया?''

कुमार मृगांकलेखा के कष्टों का चिंतवन करता हुआ विशाल अटवी में पहुँचकर विलाप करने लगा और पर्वत से नीचे गिर पड़ा। एक देव ने उसकी रक्षा करके उसे चट्टान पर रख दिया। देव ने प्रत्यक्ष प्रकट होकर कुमार से कहा–''मैं वही कापालिक हूँ जिसे आपने णमोकार मंत्र सुनाया था। आपके प्रसाद से मैं व्यंतर हुआ हूँ। ध्यान से सुनिए, आपको आपकी प्रिया सिद्धार्थ नगर में अवश्य मिलेगी।''

देव के वचन सुनकर कुमार चलने लगा तब किसी कौतूहली देव ने मार्ग में बाधा उत्पन्न कर दी। कुमार की वाम आँख और भुजा फड़कने लगी। वह विचार करने लगा, मेरा पवित्र मनोरथ भग्न हो गया। वह बढ़ता हुआ जा रहा था, इसी बीच कामरूपी पिशाच से उन्मत्त हेडब नामक राक्षस कुमार के समक्ष प्रगट होकर बोला–''हे मूढ़! सूर्य चंद्र से क्यों पूछते हो? तेरी मृगनयनी मेरे द्वारा निगल ली गयी है।'' इतना सुनते ही कुमार राक्षस से भिड़ गया, वृक्ष उखाड़ कर उसके सिर पर मार दिया। जिससे वह राक्षस दुगुना हो गया। कुमार उसे जितना मारता राक्षस उतना ही दुगुना हो जाता। फिर कुमार ने णमोकार मंत्र का स्मरण किया जिसके प्रभाव से राक्षस का उत्साह नष्ट हो गया।

कुमार सिद्धार्थ नगर की ओर बढ़ा, परंतु प्रिया को खोजते हुये बहुत समय बीत जाने से वह हताश हो गया और उसने लकड़ी एकत्रित कर चिताग्नि प्रज्ज्वलित कर ली। वह धधकती अग्नि में कूदने ही वाला था कि वहाँ के स्थित देव ने उसे तत्काल

पकड़ लिया और कहा–''हे श्रेष्ठ! नरपुगंवों को आत्मघात करना शोभा नहीं देता। आप निश्चित ही सिद्धार्थ नगर में अपनी प्रिया से मिलेंगे।'' इतना कहकर वह चला गया।

कुमार की टूटी हुयी शक्ति पुनः वापस आ गयी और वह आगे बढ़ा, थोड़ी दूरी पर उसने विलाप करती हुयी स्त्री का स्वर सुना ''हाय! सागरचंद्र! हाय सखी! मैं इस निर्जन वन में आप लोगों को कैसे प्राप्त करूँ?'' वह सारा वृतान्त कहती हुयी रो रही थी। सागरचंद्र चित्रलेखा के शब्दों से सब कुछ समझ गया और उसके निकट जाकर बोला–''हे भद्रे! कहो मेरी प्रिया कहाँ है?'' वे दोनों एक-दूसरे को समस्त वृतान्त सुनाते हैं, और सिद्धार्थपुर की ओर बढ़ जाते हैं।

सिद्धार्थपुर के ऋषभदेव जिनालय में सुरेन्द्रदत्त ने अष्टान्हिका पर्व में महापूजा को रचा, जिसे देखने नगर के सभी लोग आये। मृगांकलेखा भी भक्तिवश वहाँ पर आयी, वहाँ सुरेन्द्रदत्त का हँसता हुआ चेहरा देखकर उसे ऐसा लगा जैसे यह कोई मेरा आत्मीय है, तभी उसके उरोजों से दूध आ गया। इधर कुमार भी अनिमेष उसे निहारता रहा। तभी चक्रेश्वरी देवी प्रकट होकर बोली–''हे भद्रे! यह तुम्हारा पुत्र है जो तुम्हारे द्वारा भूमि पर छोड़ा गया था।'' सुरेन्द्रदत्त से कहा–''पुत्र! संशय में मत डूबो, माँ को पाकर चरणों में प्रवास करो।'' जैसे ही सुरेन्द्र झुका मृगांकलेखा ने सहसा उसे अपने अंक में भर लिया और सारा वृतांत पूछा। पुत्र ने अपनी सारी कथा सुनायी। चक्रेश्वरी ने कहा–''हे सुत! तेरे पिता का मिलाप भी इसी दानशाला में होगा, सो तू उनकी प्रतिक्षा कर।'' चक्रेश्वरी के वचन सुन मृगांकलेखा की देह पुलकित हो जाती है। उसी समय उसकी बायीं भुजा और बायां स्कन्ध फड़कने लगा। अपनी वार्ता से पुत्र को स्वस्थ चित्तकर वह वापस चली गयी।

इधर दूसरी ओर सागरचंद्र अपनी प्रिया को नगरी में पूछता निहारता फिर रहा था। उसने सामने एक बालक को देखकर विचारा यह कोई सामान्य बालक नहीं है। उसे निहारते हुए वह उसके निकट पहुँचा। सुरेन्द्रदत्त भी मन में बढ़ रहे असामान्य स्नेह से उठकर उसकी विनय करने लगा। दोनों अपने अंतरंग में एक दूसरे को पहचान लेते हैं। तत्पश्चात् सुरेन्द्रदत्त ने सागरचंद्र से उसका स्थान क्षेत्रादि पूछा। सागरचंद्र ने कहा–''मैं मृगांकलेखा का प्राणवल्लभ हूँ, उसके वियोग में भटकता हुआ यहाँ पर आया हूँ।'' सागरचंद्र के द्वारा परिचय पूछे जाने पर सुरेन्द्रदत्त ने अपनी मुद्रा दिखलायी और निश्चित ही ये मेरे पिता हैं, ऐसा जानकर उसके चरणों में शीश रख दिया। मुद्रा देखकर सागरचंद्र हर्ष से भर गया, उसने तुरंत ही पुत्र को गले लगाया। फिर पुत्र ने अपना सारा वृतान्त सुनाया। तभी उन्होंने सामने से आती हुयी दो स्त्रियों को देखा, वे मृगांकलेखा और चित्रलेखा थीं। सागरचंद्र अपनी प्रिया को देखकर बड़ा हर्षित हुआ, मृगांकलेखा भी पति के चरणों में गिर पड़ी। पति और पुत्र का मुख देखकर मृगांकलेखा स्वयं को कृतार्थ मान रही थी।

सागरचंद्र, मृगांकलेखा, चित्रलेखा और सुरेन्द्रदत्त चारों अमृत के रस से ऐसे भर गये मानो दिन में सूर्य से कमल ने जन्म पा लिया हो।

तदनंतर राजा कनकध्वज वहाँ आये, उन्होंने पिता-पुत्र का आलिंगन कर कुशलवार्ता पूछी। पुरजन सहित दोनों ने नगर में प्रवेश किया। कनकध्वज के आवास पर एक माह ठहर कर जब सागरचंद्र चलने लगा तब नृप ने सुरेन्द्रदत्त को अपनी कन्या सौंप दी।

राजा अवन्तिसेन और मंत्री सागरदत्त सागरचंद्र के समीप पहुँचे। सभी परस्पर प्रेम से मिले। सागरचंद्र पत्नी पुत्र सहित अपने आवास को प्राप्त हुए। सासु पद्मा भी मृगांकलेखा पर अनुरक्त होने लगी।

राजा की प्रसन्नता को प्राप्त कर सागरचंद्र बहुत हर्षित हुआ। उसने सप्त स्थानों पर विपुल विभूति समर्पित की, जिनबिंब प्रतिष्ठा करायी, चतुर्विध संघ को आहार दान आदि दिया।

समय सुखपूर्वक बीत रहा था। एक दिन मृगांकलेखा ने पति से कहा–''मैं अब दीक्षा लेकर आत्मकल्याण करना चाहती हूँ।'' सागरचंद्र ने कहा–''देवी! मेरी भी यही इच्छा है।'' तदनंतर अवन्ती नगर के उद्यान में केवलज्ञानी अर्हन्त देव का समवशरण आया। सभी वंदना को गये। सागरचंद्र भी परिवार सहित वहाँ पहुँचे, भगवान को नमस्कार कर दिव्यध्वनि का पान किया। तदनंतर मृगांकलेखा ने अपने और सागरचंद्र के स्नेह का कारण पूछा। गणधर देव ने बताया–

भरतक्षेत्र में सिंहपुर नामक नगर है। वहाँ राजा हरिषेण राज्य करता था। उसकी रानी का नाम जिना व पुत्र अनंग कुमार था। उसी नगर में काम नामक ब्राह्मण अपनी स्त्री रतिसेना और पुत्र कन्दर्प के साथ रहता था। अनंगकुमार और कन्दर्प दोनों में मित्रता हो गयी और वे सात व्यसनों का सेवन करने लगे।

एक दिन उसी नगरी में शतकीर्ति मुनिराज पधारे। कन्दर्प उन तपस्वी से परिहास करता हुआ बोला–''तुम शुद्ध उच्चारण भी नहीं जानते फिर क्यों गर्व करते हो?'' उन समताधारी मुनि ने कहा–''हाँ, हमारे वचन अशुद्ध हैं।''

कुछ समय पश्चात् उसी नगरी में पद्मदेव ब्राह्मण आया और उसकी स्त्री पद्मा भी आयी। उसकी कन्या का नाम कमला था, जो कि उत्तम चित्त वाली व मुनिराज आदि की भक्ति में संलग्न रहती थी।

उसी नगरी में एक तरुण रुद्रदत्त ब्राह्मण रहता था, जो कि सप्त व्यसनी था। एक दिन वह चोरी करके छिपने के लिए वहाँ पहुँच गया जहाँ कमला शयन कर रही थी। उस की आवाज से वह जाग गयी और कामातुर हो दुःखी होने लगी। कमला की बात जानकर रुद्रदत्त ने उसके साथ विषय भोग किए और दोनों वहाँ से भाग गये।

जिस दिन कमला रुद्रदत्त के साथ भागी थी, उसी दिन शतकीर्ति मुनिराज बिना बताये विहार कर गये। लोगों में बहुत अपवाद हुआ कि तपस्वी कमला को लेकर भाग गये। यह जानकर कन्दर्प बहुत प्रसन्न हुआ। लोगों की श्रद्धा मुनिराज के प्रति खत्म हो गयी।

बहुत दिनों बाद शतकीर्ति मुनिराज उसी नगरी में वापस आये। कन्दर्प जैसे दुष्ट लोगों ने मुनिराज की खूब पिटाई की। मुनि सत्य बताते हुये गिर गये और अपने कर्मों का चिंतन करने लगे। पापोदय से सातवें दिन कन्दर्प को पूतिरोग हो गया।

कन्दर्प मरकर सात बार श्वान और आठवीं बार मरकर कामलता वेश्या हुआ। राजपुत्र अनंगकुमार मरकर उस वेश्या का भ्राता हुआ। कौशाम्बी नगरी में अनंगसेना वेश्या की पुत्री वह कामलता नागकन्या के समान सुंदर थी। उसी नगरी में जिनभक्त सेठ जिनदास अपनी स्त्री विमला के साथ रहता था, शतकीर्ति मुनि का जीव इन दोनों का अनंगरुचि नामक पुत्र बना।

एक दिन अनंगरुचि भ्रमण करता हुआ जा रहा था। मार्ग में उसने कामलता को देखा और देखते ही उसे उस पर स्नेह हो गया। दोनों भोगों में लिप्त हो गये। अनंगरुचि की संगति से कामलता ने वेश्या कर्म छोड़ दिया और श्रावक के व्रत ग्रहण कर लिये।

अनंगरुचि ने पाणिग्रहण कर कामलता को त्याग दिया, फिर भी वह धर्म में अडिग रही। कामलता की माँ अनंगसेना ने कामलता के प्रति कषाय बांध ली कि इस कुलटा स्त्री ने वेश्यावृत्ति की परपंरा को नष्ट कर दिया। इस प्रकार वह किंचित् ईर्ष्या से जल उठती और दूसरे क्षण मन में धर्म धारण करती, इस तरह विकल्प करती हुयी मृत्यु को प्राप्त हो गयी।

एक दिन कामलता वेश्या ने सरोवर में क्रीड़ा की, वहाँ हंस मिथुन को देखकर मन में खोटा भाव आया। उसने छलपूर्वक नरहंस को पकड़कर पीले रंग का कर दिया, इससे हंसनी भयभीत हो गयी। अपने हंस को न पाकर हंसनी करुण स्वर में रोती-रोती मूर्च्छित हो गयी। वह इक्कीस घड़ी तक नि:श्वास छोड़ती हुयी आक्रन्दन करती रही। हंसनी हंस के पास नहीं जा रही थी, उससे दूर भाग रही थी, तब हंस सरोवर के मध्य चला गया, क्षणभर में उसका रंग चंद्र के समान धवल हो गया। फिर हंसनी उसे पहचान कर उससे मिल गयी।

इस प्रकार कामलता वेश्या ने हँसी-हँसी में कर्म बांधा पश्चात् समाधिपूर्वक मरणकर प्रथम स्वर्ग में देवी हुयी। देव गति से चयकर तू धनसार श्रेष्ठी की पुत्री मृगांकलेखा हुयी है। तेरी सखी चित्रलेखा राजपुत्र अनंगकुमार का जीव है, उसने भी शतकीर्ति मुनि को दूषण लगाया था, उसके फलस्वरूप चित्रलेखा भी दु:ख को प्राप्त हुयी। क्षमाधारी शतकीर्ति मुनि पहले वणिकपुत्र अनंगरुचि फिर देव और अब मनुष्य

भव प्राप्त कर सागरचंद्र हुये हैं। कामलता वेश्या की माता अनंगसेना सागरचंद्र की माँ पद्मा हुयी है।

केवली की दिव्यध्वनि से अपने भवों को जानकर मृगांकलेखा और सागरचंद्र ने दीक्षा धारण की। सागरचंद्र ने तपस्या कर मोक्ष को प्राप्त किया और मृगांकलेखा स्त्री पर्याय को छोड़कर उत्तम देव हुयी, कालांतर में मोक्ष प्राप्त करेगी।

धर्म स्नेही बंधुओं! हमें हँसी-हँसी में भी पाप नहीं बांधना चाहिए। जो जैसे कर्म करता है, उसका फल उसे भोगना ही पड़ता है। अतः बुरे कर्म करते समय अवश्य डरें एवं कर्मोदय के समय सदैव समता व धैर्य धारण करें ताकि नवीन कर्म बंध न हो।

कीर्तनेन उषा कालेन, पुण्य मर्जन्ति साधवः।
शयने दीर्घ सूत्री च, काल यापयते वृथा।

साधु सज्जन पुरुष उषाकाल (ब्रह्म मुहूर्त) में उठकर भगवान का भजन कीर्तिन कर पुण्य का संचय करते हैं, किन्तु मूर्ख और दीर्घ सूत्री (आलसी, सुस्ती से कार्य करने वाले) लोग अपना समय सोने में व्यर्थ गवा देते हैं।

कर्मों की रेखा

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में मालवदेश है, जिसकी उज्जयिनी नगरी में पुहुपाल नामक राजा राज्य करता था। उसकी निपुणसुंदरी नामक रानी तथा सुरसुंदरी और मैनासुंदरी नामक क्रमशः दो बेटियाँ थीं।

दोनों बेटियों ने अपना अध्ययन पूर्ण किया। एक दिन सुरसुंदरी की युवावस्था को देखकर राजा पुहुपाल के मन में पुत्री के विवाह का विचार आया। राजा ने पुत्री से कहा–''पुत्री! आप अपनी इच्छानुसार वर के बारे में बताइए, जिससे उसी के साथ मैं आपका विवाह करा दूँ।'' सुरसुंदरी ने आँखें नीचे कर उत्तर दिया–''पिताजी! मेरा नम्र निवेदन यही है कि कौशाम्बी के राजपुत्र हरिवाहन विद्या, वय, एवं बल आदि में मेरे अनुरूप हैं, इसलिए वर के रूप में वही मुझे अभीष्ट हैं।''

पुहुपाल ने हरिवाहन एवं सुरसुंदरी का विवाह सम्पन्न कराया।

एक दिन मैनासुंदरी भगवान की पूजा करके गंधोदक पिताजी के पास लायी, उन्हें गंधोदक दिया और धर्म चर्चा की। पुहुपाल पुत्री की वार्ता सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। तभी पुहुपाल ने महसूस किया कि पुत्री अब विवाह योग्य हो गयी है। यही सोचकर मैनासुंदरी से कहा–''पुत्री! सुरसुंदरी की तरह तुम्हारा विवाह भी कर दिया जायेगा, इसलिए तुम मुझे अपना इच्छित वर बताओ।'' मैनासुंदरी ने कहा–''पिताजी! कुलीन कन्याएं अपने मुँह से वर के बारे में नहीं कहतीं, वे माता-पिता की इच्छा को ही सर्वोपरी मानती हैं, इसलिए मैं आप से इस विषय में कुछ नहीं कहना चाहती हूँ। आपको पूर्ण अधिकार है कि आप अपनी इच्छानुसार चाहे जिसके साथ मेरा विवाह करा दें, मेरे भाग्य में जो लिखा होगा वही होगा।'' यह सुनकर पुहुपाल तिलमिला उठे। वे क्रोध में अंधे हो गये, उन्होंने कहा–''बेटी! आपके भाग्यविधाता हम हैं, हम चाहें तो भाग्य बना सकते हैं और चाहें तो बिगाड़ सकते हैं। क्या आपके गुरु ने यही पढ़ाया है?'' मैनासुंदरी ने कहा–''पिताजी! आप हमारे भाग्यविधाता नहीं है। आप हमारे भाग्य को न बना सकते हैं और न बिगाड़ सकते हैं। प्रत्येक प्राणी अपने कर्मों को भोगता है, यही मेरे गुरु ने पढ़ाया है।''

उसी समय बुजुर्ग मंत्री आया, उसने कहा–''समय आने पर सब ठीक हो जायेगा, अभी शांत हो जाइये।'' राजा पुहुपाल घूमने के लिए बहुत दूर निकल गये। एक स्थान पर उन्हें बहुत सारे मनुष्यों की भीड़ दिखायी दी, उस भीड़ में उन्हें एक कोढ़ी मनुष्य दिखा। उस कोढ़ी को देखकर राजा को पुत्री के वचन याद आये। उन्होंने उस कोढ़ी से चर्चा प्रारम्भ की, उस कोढ़ी ने पूछा–''आप कौन हैं? यहाँ कैसे आये?'' पुहुपाल ने कहा–''मैं मालव देश का राजा पुहुपाल हूँ। घूमते-घूमते मैं यहाँ आ पहुँचा और आपसे

चर्चा करने लगा। अब आप बताइये, आप कौन हो? यहाँ कैसे आये?'' कोढ़ी ने कहा–''राजन्! मैं अशुभ कर्मों को भोगने वाला मनुष्य हूँ, कर्म ही मुझे यहाँ लाये हैं।''

राजा ने सोचा, मेरी बेटी भी कर्मों को प्रधान मानती है और यह कुमार भी कर्मों की प्रधानता की भाषा बोल रहा है, अतः यही वर कन्या के योग्य है। उन्होंने कोढ़ी से कहा–''मैं अपनी कन्या का विवाह तुमसे करना चाहता हूँ। कृपा कर उसे पत्नी के रूप में स्वीकार करो।'' उस कोढ़ी को घोर आश्चर्य हुआ, आखिर ये अपनी बेटी का विवाह मुझसे क्यों करना चाहते हैं? उसने पूछा–''आपको कई राजकुमार मिल जायेंगे, आप मुझ जैसे कोढ़ी के साथ क्यों अपनी पुत्री का विवाह करना चाहते हैं?'' राजा ने कहा–''हम में और हमारी बेटी में वर के विषय में विवाद हुआ था। वह कहती है, राजभोग हमें कर्म के उदय से प्राप्त हुये हैं और मैं कहता हूँ, राजभोग हमने प्राप्त कराये हैं। वह हमारी नहीं मानती, कहती है उसके निर्ग्रंथ गुरु की यही शिक्षा है। हम उसकी और उसके गुरु के वचनों की परीक्षा के लिए ही आपके साथ उसका विवाह करना चाहते हैं। आप भी कर्मों की बात कर रहे हो और वह भी करती है। बस आप हमारा निवेदन स्वीकार कीजिए और उसके साथ विवाह कर लीजिए।''

कुमार ने विचार किया कि ''यदि मैं मना करता हूँ तो यह मेरे जैसे किसी ओर के साथ उसका विवाह करा देंगे। कम से कम मैं उसकी जिनभक्ति में तो बाधक नहीं बनूँगा, क्योंकि मैं भी जिनभक्त हूँ। उस बेचारी का जीवन नरक न बन जाये, इसलिए मैं हाँ कह देता हूँ, बाकी उसके भाग्य का खेल है।'' इत्यादि विचार कर उसने विवाह के लिये हाँ कर दिया।

घर आकर पुहुपाल ने मैनासुंदरी से कहा–''मैंने तुम्हारे लिए कोढ़ी वर ढूँढा है, अब तुम उसी को प्रेमपूर्वक वरण कर लो।'' मैनासुंदरी ने कहा–''पिताजी! आपने नहीं, मेरे कर्मों ने ढूंढा है। मैं उन्हें प्रेमपूर्वक ही वरण करूँगी।'' मैनासुंदरी के ये निष्कपट वचन भी राजा को नहीं रुचे। उन्होंने कहा, ''तू बड़ी हठीली है, तेरा हृदय विवेक रहित है। मेरी बात को अब भी मान ले और अपना हठ छोड़ दे। मैं अभी भी तुम्हारी इच्छानुसार सुंदर राजकुमार से विवाह करा दूँगा।'' मैनासुंदरी ने कहा–''पिताजी! मैंने मन से उन्हें अपना पति मान लिया है, वही मेरे लिए सबसे सुंदर हैं और राजाओं के राजा हैं।'' पुहुपाल कहता है–''तेरा हठ निराला है, अब मैं हार गया। अब तू अपने कर्मों का फल भोग।'' मैनासुंदरी ने कहा–''पिताजी! आप चिंता न करें। कर्म की गति विचित्र है, शुभ कर्मों का जब उदय होता है तब अनिष्ट वस्तु भी इष्ट हो जाती है और जब अशुभ कर्मों का उदय होता है तब इष्ट वस्तु भी अनिष्ट हो जाती है और जो होना था सो हो गया, उसके संबंध में विचार करना व्यर्थ है।'' अब राजा को पूर्ण विश्वास हो गया कि पुत्री अब नहीं मानेगी। ज्योतिषी को बुलाकर विवाह का मुहूर्त

निश्चित करवाया। जिस कोढ़ी के साथ विवाह तय हुआ है अब उसके विषय में जानते हैं।

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में अंगदेश है, इसमें चंपापुर नामक एक सुंदर नगरी है, जहाँ वासुपूज्य भगवान के गर्भ व जन्म कल्याणक हुये थे। उसी के पास मंदारगिरी है, जहाँ भगवान के शेष तीन कल्याणक हुये।

चम्पापुर में एक समय राजा अरिदमन राज्य करता था। उसके छोटे भाई का नाम वीरदमन था। अरिदमन की पत्नी का नाम कुन्दप्रभा व पुत्र का नाम श्रीपाल था। श्रीपाल ने आठ वर्ष की उम्र में अष्ट मूलगुणों को धारण किया था और अपने गुरु के पास कम समय में ही अनेक विद्याओं और कलाओं में निपुण हो गया था। गुरु के पास से लौटते ही राजा अरिदमन ने उसका युवराज पद पर अभिषेक किया था। कुछ समय बाद ही राजा ने श्रीपाल का राज्याभिषेक कर दीक्षा ग्रहण कर ली थी।

श्रीपाल राज्य का संचालन नीति न्यायपूर्वक करते थे।राज्य में सर्वत्र सुख-शांति स्थापित थी व प्रजा प्रसन्न थी। पाप कर्म का ऐसा उदय आया कि उनका कामदेव के समान सुंदर शरीर कोढ़ नामक व्याधि से ग्रस्त हो गया। कोढ़ के कारण शरीर गलने लगा, शरीर से पीप, गंदा खून बहने लगा, शरीर से बदबू आने लगी। यह रोग उनके पास रहने वाले सात सौ लोगों को भी हो गया, इनमें मंत्री, सेनापति, पुरोहित, अंगरक्षक, खजांची, न्यायधीश आदि शामिल थे। इन सबके शरीर से इतनी बदबू आने लगी कि कोई भी प्रजाजन इनके पास आने से कतराने लगा।

इतना ही नहीं उनके शरीर को छूने वाली हवा भी दुर्गन्धित होकर दूर-दूर तक दुर्गन्ध फैला रही थी, इससे सभी लोग अत्यंत क्षुब्ध, व्याकुल, परेशान, बेचैन रहने लगे। फिर भी श्रीपाल उनको इतने प्रिय थे कि कोई भी शिकायत करने उनके पास नहीं गया।

लोग अपना घर छोड़कर जाने लगे, धीरे-धीरे नगर सुनसान होने लगा। नगर को बचाने के उद्देश्य से नगर के गणमान्य वृद्धलोग श्रीपाल के चाचा वीरदमन के पास गये और उनको सारी बात बतायी। वीरदमन ने कहा-''इसका उपाय शीघ्र होगा।'' फिर वीरदमन स्वयं श्रीपाल के पास गये और उन्हें सारी सत्यता बतायी।

श्रीपाल न्यायप्रिय व प्रजावत्सल थे। उन्होंने व्याधि समाप्त होने तक राज्य छोड़कर जंगल में रहने का निर्णय किया। राज्य का भार चाचा वीरदमन को सौंपा और स्वयं सात सौ पदाधिकारियों जिन्हें भी रोग था, के साथ वन में चले गये।

पुत्र के अचानक चले जाने से उनकी माता को बहुत दुःख हुआ। पहले पति दीक्षा लेकर चले गये और अब पुत्र भी रोग के कारण चला गया, उस बेचारी के पास दुःख के अलावा कुछ नहीं बचा था। सारी प्रजा ने भी वियोग जनित दुःख को सहा। पश्चात् धीरे-धीरे सभी अपने कार्यों में व्यस्त हो गये। वीरदमन भी राज्य व्यवस्था में लीन हो गये।

श्रीपाल घूमते-फिरते, अनेक कष्ट भोगते हुए उज्जयिनी के बाह्य उद्यान में ठहर गये थे, वहीं पर पुहुपाल से उनकी मुलाकात हुयी और मैनासुंदरी के साथ उनका विवाह तय हुआ।

शुभ मुहूर्त में श्रीपाल और मैनासुंदरी का विवाह सम्पन्न हुआ। स्वजन परिजन सभी आये, परंतु कोई खुश नहीं था। मैनासुंदरी को कोढ़ी के साथ देखते ही सब लोगों की आँखों से आँसू गिरने लगे। ऐसी परिस्थिती देखकर राजा पुहुपाल भी अत्यंत खिन्न और लज्जित थे। परंतु अब क्या किया जा सकता था? किसी की कर्म रेखा भला मिट सकती है। सबके मुख से हाय-हाय निकल रहा था। मैनासुंदरी की माता और बड़ी बहन सुरसुंदरी उसके गले से लिपट कर विलाप करने लगीं–''हाय! कर्म अत्यंत क्रूर है, तुझे तनिक भी दया नहीं आयी। यह अन्याय ही नहीं घोर अन्याय है।'' राजा को सम्बोधित करते हुए रानी कहने लगी, ''स्वामी! आप तो दया के सागर हैं, पर आपको बेटी पर जरा भी दया नहीं आयी। आपने ऐसा अनुचित कार्य क्यों कर डाला?'' रानी के करुण क्रन्दन को सुनकर राजा की आँखों में भी आँसू भर आये, वह भी विलाप करने लगा–''हे कुबुद्धि! तू मेरे पास ही क्यों आयी? क्या तेरा इतने से पेट भर गया या और कुछ बाकी है?'' राजा के करुण क्रन्दन को सुनकर सभी जोर-जोर से रोने लगे।

मैनासुंदरी को तनिक भी शोक नहीं था, वह साम्य भाव से भीगी हुयी थी, उसके चेहरे पर अपार आनंद था। उसने कहा–''हे मेरे माता-पिता! बंधुजनों! आप हमारे हितैषी हैं। इसमें आप लोगों का कोई दोष नहीं है। कर्म के अनुसार जो होना था, सो हुआ। मुझे पूर्ण रूप से संतोष है कि मैंने ऐसे सर्वगुण सम्पन्न, रूपवान एवं पराक्रमी वीर को पति रूप में प्राप्त किया है। यदि पुण्योदय होगा तो थोड़े ही दिनों में मेरे पतिदेव पूर्ण निरोगी हो जायेंगे और यदि नहीं भी होंगे तो मुझे कोई दुःख नहीं होगा। इस प्रसंग में जो कुछ हुआ उसमें पिताजी का कोई दोष नहीं है, इसलिए मेरी विनम्र प्रार्थना है कि आप लोग व्यर्थ ही उन्हें दोष देकर मानसिक क्लेश न दें।''

मैनासुंदरी की सार गर्भित बातों को सुनकर सभी निरुत्तर हो गये। राजा को परम संतोष के साथ घोर पश्चाताप हुआ। विदा के समय उन्होंने क्षमायाचना की, पश्चाताप प्रकट किया, अपनी सामर्थ्य के अनुरुप बहुत सारी वस्तुयें भेंट की, एक हजार दासियाँ, हाथी आदि भेंट में दिये।

मैनासुंदरी के ज्ञान व चारित्रिक वैभव को देखकर श्रीपाल को बहुत संतोष हुआ और आश्चर्य भी कि इतनी दृढ़ श्रद्धानी महिलाएँ होती हैं। मैनासुंदरी के जाने के बाद चर्चाएँ होती रहीं और धीरे-धीरे इस घटना पर परदा पड़ता गया एवं क्रमशः इस बात को नगर के सभी लोग भूल गये।

मैनासुंदरी के साथ विवाह के दिन से ही श्रीपाल को साता वेदनीय के शुभ लक्षण प्रकट होने लगे। शीलवान लोग जहाँ जाते हैं, वहाँ मंगल होने लगता है। उनके शरीर में पीड़ा कम होने लगी। मैनासुंदरी बड़े मनोभाव से अहर्निश पति सेवा में लगी रहती थी। उसको रंचमात्र भी ग्लानि नहीं आती थी। इस सेवा भाव को देखकर एक दिन श्रीपाल ने मैनासुंदरी से कहा–''हे शीलवती! जब तक हमारे पाप कर्म का उदय है तब तक आप हमसे दूर ही रहिए। हमें ग्लानि का अनुभव होता है, आप जैसी सुंदरी को मुझ जैसा कोढ़ी पति प्राप्त हुआ, क्या यह कम खेद की बात है?''

मैनासुंदरी ने मधुर स्वर में कहा–''हे देव! मुझे आपके शब्द प्रीतिंकर नहीं लगे। आपने ऐसा कठोर आदेश देने का विचार भी कैसे किया? मुझसे कोई अपराध हुआ क्या या मेरी सेवा में कोई त्रुटि रह गयी है? क्या आपको लगता है कि मैं स्वप्न में भी आपको छोड़ सकती हूँ? यदि मैं ऐसी अवस्था में होती तो क्या आप मेरा साथ छोड़ देते? आपका साथ छोड़ना मतलब शीलव्रत को छोड़ना। मैं अपने शील को कदापि नहीं छोड़ सकती, मेरा जो कुछ भी है शील ही है। इसलिए हे जीवनधन! पुनः ऐसा मत कहियेगा, इसके अलावा चाहे जो दण्ड दीजिए।'' मैनासुंदरी के उत्तर से निरुत्तर हुए श्रीपाल मैनासुंदरी के साथ पंच परमेष्ठी की शरण में रहने लगे।

एक दिन सौभाग्य से वन में मुनिराज का आगमन हुआ। मैनासुंदरी ने मुनि से पूछा–''हे भगवन्! इस व्याधि को दूर करने का क्या उपाय है?'' मुनि ने कहा–''धर्म और धैर्य की शरण एक मात्र उपाय है, इसलिए सिद्धचक्र का चिंतन, मनन, पाठ, विधान आदि करो। समय पर साता का उदय आने पर सब ठीक हो जायेगा।कार्तिक, फाल्गुन और आषाढ़ महिने के अंतिम आठ दिनों में अष्टान्हिका व्रत का पालन करो। इन दिनों में किया गया थोड़ा-सा धर्म भी अधिक फल देता है, जैसे सही समय पर बोया गया बीज बहुत फल देता है।

कार्तिक का महिना आ गया। मैनासुंदरी ने अष्टान्हिका पर्व में आठ दिन का उपवास कर सिद्धचक्र का विधान किया। वह प्रतिदिन अभिषेक लाती और सबको लगाती। श्रीपाल आदि के असाता कर्म का अंत और साता का उदय आया, तभी श्रीपाल आदि सात सौ कोढ़ियों का कोढ़ दूर हो गया। उनके शरीर पहले की तरह दमकने लगे। उनके दिव्य शरीर को देखकर कोई नहीं कह सकता था कि इनको कोढ़ जैसी भीषण बीमारी थी। श्रीपाल और मैनासुंदरी धर्मध्यान के साथ आनंद से दिन बिताने लगे।

इधर श्रीपाल की माता कुन्दप्रभा के दिन कठिनाई के साथ बीत रहे थे। एक दिन उसने अवधिज्ञान के धारी मुनि से अपने पुत्र के बारे में पूछा। मुनिराज ने श्रीपाल के बारे में सारी बातें बतायीं। अपने पुत्र का कोढ़ दूर होना एवं मैनासुंदरी जैसी धर्मात्मा

पत्नी पाने की बात सुनकर रानी कुन्दप्रभा ने प्रसन्न होकर अपने देवर वीरदमन को सारी बातें बतायीं और फिर पुत्र से मिलने तत्काल उज्जयिनी की ओर निकल गयी। रात-दिन यात्रा कर वह थोड़े ही दिनों में उज्जयिनी पहुँच गयी।

उज्जयिनी पहुँच नगर के बाह्य उद्यान में एक सुंदर राजमहल पर उसकी दृष्टि पड़ी, उसे देखकर कुन्दप्रभा को बड़ा विस्मय हुआ। वह उस महल की ओर बढ़ी और एक प्रहरी से पूछा–''यह राजमहल किस भाग्यशाली का है?'' प्रहरी ने कहा–''माता! इस उद्यान में एक बार एक कोढ़ी अपने सात सौ साथियों के साथ आया था। एक दिन राजा के दुराग्रह से और उस कोढ़ी के सौभाग्य से उसका विवाह राजकुमारी मैनासुंदरी के साथ हुआ। मैनासुंदरी की सेवा और उसके साता के उदय से वह और उसके साथी रोगमुक्त हो गये। यह राजमहल उसी भाग्यशाली का है।''

कुन्दप्रभा प्रसन्न होकर महल के पास गयी और द्वारपाल से कहा–''जाओ, स्वामी से कहो उनकी माता कुंदप्रभा द्वार पर आयी है।'' श्रीपाल सूचना प्राप्त होते ही बहुत प्रसन्न हुये और माता से मिलने मैनासुंदरी के साथ गये। जब मैनासुंदरी ने सास के चरण स्पर्श किये तो उन्होंने पटरानी बनने का आशीर्वाद दिया और कहा–''बेटी! यह तुम्हारे धैर्य और शील का प्रभाव है कि आज मेरा पुत्र निरोगी हो गया है।'' मैनासुंदरी ने कहा–''माता जी! यह तो इनके पूर्वकृत पुण्य का उदय है, इसमें मैंने कुछ नहीं किया।'' कुन्दप्रभा ने कहा–''बेटी धन्य हो! आप जैसी बहू पाकर मेरा जीवन धन्य हो गया।'' फिर तीनों प्रसन्नता से रहने लगे।

इधर राजा पुहुपाल की दयनीय स्थिति हो गयी थी। रानी निपुणसुंदरी ने एक दिन राजा से पूछा–''नाथ! आपका शरीर दिनों दिन दुर्बल क्यों होता जा रहा है? आपकी इस उदासी का कारण क्या है?'' राजा ने कहा–''मैं पश्चाताप की अग्नि में जल रहा हूँ।'' रानी ने कहा–''राजन्! होनी को कौन टाल सकता है? अपने कर्मों का फल प्राणी को अवश्य भोगना पड़ता है।'' इस प्रकार रानी ने पति को धैर्य प्रदान किया और कहा–''हमारे पुण्योदय से मुनिराज का समागम हुआ है, क्यों न उन्हीं से उसके भाग्य के बारे में पूछें?''

पुहुपाल और निपुणसुंदरी मुनिराज के पास पहुँचे। ज्योंही वे अपनी शंका के निवारण हेतु पूछने वाले थे, त्योंही उनकी दृष्टि पास ही बैठे हुये स्त्री-पुरुष पर पड़ी और उन्हें स्त्री को पहिचानने में देर न लगी, क्योंकि वह उनकी पुत्री मैनासुंदरी ही थी। परंतु वे उसके साथ के अपरिचित पुरुष को नहीं पहचान पाये। उनकी मुखाकृति एकदम से बदल गयी, क्रोध से चेहरा तम-तमाने लगा। उस पुरुष को अन्य पुरुष समझकर राजा-रानी सोचने लगे, ये इस पुत्री ने क्या कर डाला, यह तो कुलकलंकिनी निकली।

मैनासुंदरी अपने माता-पिता के भावों को समझ गयी और निश्चल भाव से अपने पति के साथ माता-पिता को प्रणाम किया, परंतु उनका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करने में असफल रही। उसे निश्चय हो गया कि माता-पिता के मन में अनुचित संदेह है। संदेह को दूर करने के लिए उसने कहा–''हे पिता, माता जी! यह जो मेरे साथ पुरुषोत्तम हैं, ये आपके दामाद ही हैं। ये कौशाम्बी के राजा श्रीपाल हैं, जो विवाह के समय कोढ़ी थे। धर्म के प्रभाव से इनका अशुभ कर्म नाश हो गया और ये निरोगी हो गये हैं।''

पुत्री के वचनों को सुनकर उन दोनों को विश्वास नहीं हुआ और बोले–''बेटी! तुझ में इतनी निर्लज्जता कहाँ से आ गयी? हम तुम्हारी बातों को कदापि सत्य नहीं मान सकते।'' श्रीपाल ने सोचा इस समय मुझे बोलना ही चाहिए, क्योंकि ये शीलवती के चरित्र पर शंका कर रहे हैं। उन्होंने नम्रता से कहा–''हे माता जी, पिताजी! आप भ्रम में हैं। अपनी सती कन्या की बातों पर अविश्वास न कीजिए। मैनासुंदरी जैसी कन्या पाकर आपका वंश धन्य हो गया है। इसके पुण्य प्रभाव से ही न केवल मेरा बल्कि मेरे सात सौ साथियों का भी कोढ़ दूर हो गया है। मैं वही कोढ़ी श्रीपाल हूँ, इसमें किञ्चित भी संदेह मत कीजिए। देखिये, अभी भी मेरे अंगूठे में किञ्चित कोढ़ शेष है।''

श्रीपाल के मुख से ये शब्द सुनकर और अंगूठे का कोढ़ देखकर उन्हें पूर्ण विश्वास हो गया कि ये ही हमारे दामाद हैं, हमने व्यर्थ ही बेटी पर शक किया। कन्या एवं दामाद को देखकर उनकी आँखें तृप्त नहीं हो रही थीं। आँखों से अश्रुधारा वह पड़ी। राजा पुहुपाल ने पुनः एक बार पश्चाताप प्रकट किया, क्षमा माँगी, आत्म भर्त्सना की। माता-पिता के कहने पर मैनासुंदरी ने सर्व वृतान्त सुनाया, पश्चात् सभी प्रसन्न होकर अपने-अपने महल लौट गये।

मैनासुंदरी और माता कुंदप्रभा के साथ आनंदपूर्वक रहते हुये श्रीपाल को लम्बा समय बीत गया था। एक रात अचानक श्रीपाल की निद्रा भंग हो गयी, चिंता ने उन्हें घेर लिया। उनकी दशा देखकर मैनासुंदरी ने पूछा–''नाथ! आपकी असमयिक चिंता का क्या कारण है?'' श्रीपाल ने कहा–''हे प्रिये! चिंता का कोई विशेष कारण नहीं है, परंतु इतना अवश्य है कि यहाँ रहने पर मुझे राजदामाद कहते हैं। मेरे पिता का कोई उल्लेख नहीं करता और पिता के नाम का उल्लेख न हो तो पुत्र को पुत्र होने का कोई अधिकार नहीं है। यह सोच ही मेरी चिंता का कारण है।'' मैनासुंदरी ने कहा–''आप ठीक कह रहे हैं, पुरुष को श्वसुर के घर रहने पर कौन उत्तम कह सकता है? पुत्र को कुलदीपक कहा जाता है। आप ऐसा कोई कार्य करें, जिससे संसार में कुल प्रकाशित हो।'' श्रीपाल ने कहा–''मैं अपने बाहुबल से कुछ पराक्रम दिखाऊँ जिससे मेरा कुल संसार में चमके, परंतु इसमें आपको मेरा साथ देना होगा।'' मैनासुंदरी

ने कहा–''नाथ! मैं तो हरदम आपके साथ हूँ।'' श्रीपाल ने कहा–''हे प्रिये! सुनो, मैंने यह निश्चय कर लिया है कि अन्यत्र जाकर मैं अपने बाहुबल से राज्य और ऐश्वर्य प्राप्त करूँगा।''

इन वचनों को सुनकर मैनासुंदरी उदास हो गयी। उसे स्वप्न में भी आशा नहीं थी कि उसे पति से एक क्षण के लिए भी अलग होना पड़ेगा। उसने कहा–''नाथ! मुझमें इतना साहस नहीं कि मैं आपकी आज्ञा के विरुद्ध चल सकूँ। मेरी प्रार्थना है कि मुझे भी अपने साथ ले चलिए।'' श्रीपाल ने कहा–''प्रिये! तुम यहीं रहकर माता की सेवा करो।'' मैनासुंदरी ने कहा–''प्राणनाथ! आपका आदेश शिरोधार्य है, परंतु यह अवश्य बतलाइये कि इस अबला को आपके दिव्य दर्शन पुनः कब प्राप्त होंगे?''

पत्नी के दीनतापूर्ण वचन सुनकर श्रीपाल ने कहा–''हे प्रिये! आज से ठीक बारहवाँ वर्ष पूरा होते ही इसी अष्टमी के दिन आकर मैं तुमसे अवश्य मिलूँगा, इसमें कोई अंतर नहीं आ सकता है, यह मेरी प्रतिज्ञा समझो।'' मैनासुंदरी ने कहा–''मेरा चित्त अधीर हो रहा है, इसलिए इस दासी की प्रार्थना स्वीकार कीजिए। बारह वर्ष का समय तो बहुत है, मैं बारह पल भी आपके वियोग को सहन करने में असमर्थ हूँ। मुझ पर आपका असीम उपकार होगा नाथ मुझे भी साथ ले चलिए।''

श्रीपाल भी चाहते थे कि मैनासुंदरी से एक पल भी अलग न रहें, परंतु वे सोच रहे थे कि ''मेरा कोई ठिकाना तय नहीं है, इसे अज्ञात कष्टों में क्यों ले चलूँ? यहाँ पर माँ की सेवा करेगी, महल में सुरक्षित रहेगी।'' उन्होंने कहा–''हे प्रिये! अधीर मत होओ। मैं निश्चिय समय पर अवश्य ही आऊँगा। मुझे सहर्ष अपनी स्वीकृति प्रदान कर उत्साहित करो।''

मैनासुंदरी को निश्चय हो गया कि स्वामी अब मेरी प्रार्थना पर विचार नहीं करेंगे, तब उसने दीनतापूर्वक कहा–''नाथ! इस दासी का स्मरण रखियेगा। आशा है आप इस प्रार्थना को अवश्य स्वीकार करेंगे। अंत में निवेदन है कि आप अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार ठीक बारह वर्ष के बाद इसी अष्टमी तक यदि नहीं लौटे एवं मैं आपका दर्शन नहीं कर पायी तो नवमी को प्रातःकाल मैं निश्चित ही आर्यिका दीक्षा ले लूँगी। आपके शुभ आगमन की प्रतीक्षा निश्चित समय के बाद मैं एक दिन भी नहीं करूँगी।''

श्रीपाल ने कहा–''प्रिये! एक ही बात को बार-बार कहने से क्या लाभ? आपसे मिलने के लिए मैं भी उतना ही बेचैन रहूँगा, जितना कि आप। निश्चित अवधि पूर्ण होने से पूर्व हमारा मिलन अवश्य होगा। अब मुझे खुशी से विदा करो।''

जब श्रीपाल जाने लगे तब मैनासुंदरी ने उनके दुपट्टे का छोर पकड़कर रोकने की कोशिश की और कहा–''आप सचमुच ही जा रहे हैं, मैं तो सोच रही थी कि

शायद आप मजाक कर रहे हैं, मेरी परीक्षा ले रहे हैं।'' श्रीपाल ने सोचा–''मोह कितना प्रबल है!'' वह बोले–''मैं मजाक नहीं कर रहा हूँ, परीक्षा तो वहाँ होती है जहाँ विश्वास न हो। मैं वास्तव में जा रहा हूँ।'' पति की बातों को सुनकर मैनासुंदरी ने उनके चरणों में नमस्कार किया।

सभी को समझाकर और माता को प्रणाम कर श्रीपाल जाने लगे, तब कुन्दप्रभा ने आशीर्वाद देते हुए कहा–

'श्री बढ़े अरु अतुल बल, बढ़े धर्म से स्नेह।
चतुरंग दल को संग ले, आवो सुत निज गेह।'

आशीर्वाद देने के बाद कुंदप्रभा ने श्रीपाल के मस्तक पर कुमकुम का तिलक लगाया और श्रीफल भेंट किया। फिर श्रीपाल ने सब से विदा लेकर विदेश की राह पकड़ी।

श्रीपाल वन-ग्रामों को पार करते हुए वत्सनगर पहुँचे। वहाँ पर एक मनुष्य मंत्राराधना कर रहा था, परंतु उसे सिद्धि प्राप्त नहीं हो रही थी। श्रीपाल ने मंत्राराधना कर विद्या प्राप्त की और उसी मनुष्य को दे दी। उसके बदले में उस विद्याधर ने श्रीपाल को 'जलतरंगिनी' व 'शत्रु-निवारिणी' दो विद्याएँ दीं।

श्रीपाल आगे बढ़े और मृगुकच्छपुर (भरुच) पहुँच गये। वहाँ उन्हें एक धवल सेठ मिला, जिसके जहाज समुद्र में अटक गये थे, इसलिए उसे किसी मनुष्य की तलाश थी जिसकी वह बली दे सके। उस सेठ ने मीठी बातें देकर श्रीपाल की बलि देनी चाही, तब श्रीपाल ने सेठ से पूछा–''आपको बलि ही देना है या जहाज चलाने हैं?'' सेठ ने कहा–''हमें तो जहाज चलाने से प्रयोजन है।'' श्रीपाल के धक्का देने से सेठ के जहाज चलने लगे। सेठ ने कहा–''आप हमारे साथ चलिए, क्योंकि समुद्र में दस्युओं का डर है।'' श्रीपाल ने स्वीकृति दे दी और बदले में लाभांश का दसवाँ हिस्सा माँगा। सेठ ने माँग स्वीकार कर ली। समुद्री यात्रा में श्रीपाल ने दस्युओं का पराभव किया। फिर दस्युओं ने श्रीपाल को बहुमूल्य रत्न उपहार में दिये।

श्रीपाल हंसद्वीप पहुँचे, वहाँ एक सहस्रकूट चैत्यालय था। उसके वज्र समान द्वार लम्बे समय से बंद थे। श्रीपाल वहाँ दर्शन की इच्छा से गये और उनके धक्का देने से दरवाजे खुल गये। अवधिज्ञानी मुनि के पूर्व के वचनों के अनुसार वहाँ के राजा कनकहेतु ने अपनी पुत्री रयणमंजूषा का विवाह श्रीपाल के साथ किया। वे वहीं रहने लगे।

धवल सेठ व्यापार करता हुआ हंसद्वीप पहुँचा। सेठ के आग्रह पर श्रीपाल रयणमंजूषा को लेकर समुद्रयात्रा के लिए रवाना हुये। रयणमंजूषा को देखकर धवल सेठ की नीयत बदल गयी। योजना बनाकर सेठ ने श्रीपाल को रस्सियों से बांधकर समुद्र में फेंक दिया।

श्रीपाल एक लकड़ी के सहारे समुद्र पार कर किनारे पर पहुँच गये। वे जहाँ पहुँचे वह कुंकुम द्वीप था। अवधिज्ञानी मुनि के पूर्व वचनानुसार वहाँ के राजा सत्तराज ने अपनी पुत्री गुणमाला का विवाह श्रीपाल के साथ कराया।

रास्ते में धवल सेठ ने रयणमंजूषा के साथ जब जबरदस्ती की, तब जलदेवता ने उसे बांधकर अपनी गदा के प्रहारों से खूब पीटा। फिर सेठ ने रयणमंजूषा से माफी माँगी।

कुछ दिनों के बाद धवल सेठ व्यापार करता हुआ कुंकुम द्वीप पहुँचा। वहाँ श्रीपाल को देखकर डर गया। श्रीपाल को भांडों का सरदार सिद्ध करने की इच्छा से सेठ ने भांडों को धन का लालच देकर राजसभा में भिजवाया। वहाँ उन भांडों ने ऐसा दृश्य उपस्थित किया कि राजा को लगा कि श्रीपाल भी भांड ही है। राजा ने उसे फाँसी देने का निर्णय सुनाया। श्रीपाल धवल सेठ की चाल समझ गये। उन्होंने गुणमाला को चोरी छिपे रयणमंजूषा के पास भेजा। रयणमंजूषा ने राजा को सारी सच्चाई बतायी। सत्य जानकर राजा ने श्रीपाल से क्षमा माँगी। राजा के नौकर धवलसेठ को पीटते हुये लाये। सेठ ने श्रीपाल के चरणों में गिरकर क्षमा माँगी, श्रीपाल ने उसे क्षमा किया।

इस तरह पुण्य के कारण श्रीपाल को हर जगह विपत्ति में भी लाभ होता गया। अनेक स्त्रियों के साथ उनका विवाह हुआ। समय सुख से बीत रहा था।

एक रात्रि सहसा श्रीपाल की नींद टूटी। नींद टूटने पर उन्हें मैनासुंदरी और अपनी प्रतिज्ञा की याद आयी। उनका मन उद्विग्न हो गया। बारह वर्ष पूर्ण होने में कुछ ही समय बाकी था। उन्हें चिंता होने लगी कि ''यदि मैं सही समय पर नहीं पहुँचा तो मैनासुंदरी दीक्षा ले लेगी। ऐसा होना उचित नहीं है। मैं आज जो कुछ भी हूँ सिर्फ उसी की देन है, मैं ये कैसे भूल गया?'' प्रातःकाल श्रीपाल राजा के पास गये और सारी बात बतायी। तत्पश्चात् राजा से विदा लेकर श्रीपाल विशाल सेना, हजारों रानियों और लाखों दास-दासियों के साथ उज्जयिनी के लिये चले।

श्रीपाल विशाल सेना लेकर उज्जयिनी पहुँच गए। विशाल सेना को देखकर लोग डरकर राजा पुहुपाल के पास पहुँचे। राजा ने सेनापति को सेना तैयार करने का आदेश दिया और शाम होने से स्वयं महल में चले गये।

शाम होने से श्रीपाल ने भी सेना को ठहरने का आदेश दिया। रात्रि होने पर सभी सो गये, परंतु श्रीपाल की आँखों में नींद नहीं थी और हो भी कैसे? क्योंकि आज बारह वर्ष पूरे हो गये थे। रात्रि के अंतिम प्रहर में वे अपने शिविर से निकलकर गुप्त रास्ते से महल में पहुँच गये।

श्रीपाल माता कुन्दप्रभा के कमरे तक पहुँचे। उन्हें अंदर से वार्तालाप के शब्द सुनायी पड़े। वे द्वार पर खड़े होकर वार्तालाप सुनने लगे। मैनासुंदरी अपनी सास से कह रही थी–''हे माता जी! बारह वर्ष पूरे हो गये, परंतु आपके पुत्र नहीं आये। अब मैं

प्रातःकाल होते ही दीक्षा लूँगी, क्योंकि पति प्रेम भी प्राप्त न हो और संयम भी धारण न कर सकूँ तो इस जीवन में क्या लाभ? अतः मुझे अनुमति दीजिए।'' कुन्दप्रभा ने कहा–''बेटी! धैर्य धारण करो। यदि दो चार दिन में मेरा पुत्र नहीं आया तो मैं भी तुम्हारे साथ दीक्षा ग्रहण कर लूँगी।'' मैनासुंदरी ने कहा–''माता जी! मोह में पड़कर और अधिक समय बिताना ठीक नहीं है। अब आप भी मोह छोड़ें और मेरे साथ दीक्षा लेने चलें। मेरी जैसी पत्नियाँ तो उन्हें अनायास ही प्राप्त हो जायेंगी। अब इस प्रकार निश्चेष्ट बैठे रहना उचित नहीं है।''

इस प्रकार वार्तालाप सुनकर श्रीपाल ने धीरे से दरवाजा खटखटाया और कहा–''माँ दरवाजा खोलो आपका पुत्र दरवाजे पर खड़ा है।''

श्रीपाल के अमृततुल्य शब्दों को सुनकर दोनों को परम आनंद हुआ। शोक के स्थान पर आनंद लहराने लगा। शीघ्र दरवाजा खोला, श्रीपाल मिलन की अधीरता के साथ भीतर जा पहुँचे और आदरपूर्वक माता को प्रणाम किया। मैनासुंदरी पति के चरणों से लिपट गयी और कहा–''स्वामी! मैं महा भाग्यशाली हूँ।''

तत्पश्चात् श्रीपाल माँ और मैनासुंदरी को उसी गुप्तद्वार से लेकर शिविर में गये, सभी रानियों को उनका परिचय कराया कि, ये आपकी आदरणीय सासु माँ हैं तथा मैनासुंदरी की ओर इशारा कर कहा–''ये हमारी पटरानी है। यह सब कुछ इसी की सेवा का फल है। मैं उस समय की दुःखावस्था को कभी नहीं भूल सकता हूँ, जब मैं विपत्तियों से घिरा कोढ़ी का शरीर लिए मारा-मारा घूम रहा था, परदेशी था; उस समय इन्होंने मुझे पति के रूप में स्वीकार कर पहला उपकार किया, रात-दिन सेवा कर दूसरा उपकार किया। इसी प्रकार इन्होंने अनेक उपकार किये हैं और इनके उपकारों का बदला हम कभी नहीं चुका पायेंगे। इन दोनों के पुण्य प्रताप से आप जैसी आठ हजार रानियाँ और अतुल्य वैभव प्राप्त कर सका हूँ।''

मैनासुंदरी ने श्रीपाल के मुँह से प्रशंसा सुनकर नीचे मुख करके कहा–''मैं आपके चरणों की धूलि हूँ, यही तो मेरा सौभाग्य है। आपके सम्पर्क से महत्ता मैंने पायी है। आप कोटिभट हो, पराक्रमी हो, धीर-वीर हो। यह दासी आपकी सेवा में ही अपना सौभाग्य समझती है।''

इस तरह श्रीपाल और मैनासुंदरी का पुनर्मिलन हुआ। सुख से समय व्यतीत होने लगा।

एक दिन मैनासुंदरी को पिता की याद आयी, उसे लगा पिताजी दृढ़ श्रद्धानी नहीं हैं। अब धर्म का दृढ़ श्रद्धान हो, इस अभिप्राय से श्रीपाल को बताया। श्रीपाल ने योजना बनाकर एक दूत से कहलवाया–''राजा पुहुपाल कम्बल ओढ़कर, कुल्हाड़ी कंधे पर रखकर हमारे सामने आये तो ही उनका राज्य सुरक्षित है, नहीं तो युद्ध के लिए तैयार रहें।''

सामने वाले राजा को बलशाली समझकर राजा पुहुपाल ऐसा करने तैयार हो गये। दरअसल श्रीपाल उनका घमंड दूर करना चाहते थे। फिर उन्होंने दूसरे दूत से कहलवाया–''आपको ऐसा कुछ नहीं करना, आप तो हमारे पूज्यनीय हो।''

जब पुहुपाल और श्रीपाल का मिलन हुआ, तो पुहुपाल श्रीपाल को पहचान नहीं पाये और कहने लगे–''हे नर शिरोमणि! आप कौन हैं?'' श्रीपाल ने कहा–''मैं आपका छोटा दामाद श्रीपाल हूँ।'' परिचय के बाद दोनों गले मिले। पुहुपाल ने मैनासुंदरी से कहा–''बेटी! मैं बहुत लज्जित हूँ, मुझे क्षमा करो। तुम शील का पालन करने वाली सती हो। मैं धर्म के रहस्य से अनभिज्ञ था, इसलिए मुझसे अपराध हुआ है। परंतु तुम्हारे कारण मुझे धर्म का श्रद्धान हुआ है, धर्म का मर्म पता चला है। मैं गर्व के साथ कहता हूँ, बेटी हो तो मैनासुंदरी जैसी।'' मैनासुंदरी ने कहा–''पिताजी! आप बड़े उपकारी हैं। आपने मेरी परीक्षा नहीं ली होती तो शायद यह सुअवसर देखने को नहीं मिलता।'' तत्पश्चात् सभी आनंद के साथ रहने लगे।

कुछ दिन पश्चात् श्रीपाल अपने मूलराज्य को प्राप्त करने के लिए चम्पापुरी की ओर चल पड़े, चाचा वीरदमन के पास दूत भेजा और संदेश दिया कि राज्य लौटा दीजिए। वीरदमन के न मानने पर उन्होंने युद्धकर के वीरदमन को पराजित किया और अपनी मूल राजधानी चम्पापुर में आनंद पूर्वक रहने लगे। वीरदमन ने दीक्षा लेकर मोक्ष पद प्राप्त किया।

कुछ समय बीतने के बाद पटरानी मैनासुंदरी के गर्भाधान हुआ। शुभ समय पर मैनासुंदरी ने पुत्र को जन्म दिया। शुभ लक्षणों वाले उस पुत्र का नाम धनपाल रखा गया। कुछ समय पश्चात् मैनासुंदरी ने महापाल, देवरथ एवं महारथ नाम के तीन और पुत्रों को जन्म दिया। समय आनंद से बीतने लगा।

एक दिन श्रीपाल मैनासुंदरी के साथ बैठे हुये थे, तभी माली ने चम्पापुर में केवली भगवान के शुभागमन का समाचार प्रदान किया। श्रीपाल, मैनासुंदरी दर्शन को गये, धर्मोपदेश सुना और उपदेश सुनने के बाद अपने पूर्व भव जानने की जिज्ञासा प्रकट की। केवली भगवान ने बताया–

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में रत्नसंचयपुर नामक नगर है। तुम वहाँ श्रीकण्ठ नाम के विद्याधरों के राजा थे। एक दिन मंदिर से लौटते समय तुमने मुनिराज के दर्शन कर व्रत ग्रहण किये, परंतु कुसंगति में पड़कर व्रतों का पालन नहीं किया। मिथ्यात्व का सेवन किया और जैनधर्म की निंदा की।

एक दिन तुम सात सौ वीरों के साथ जंगल में क्रीड़ा करने के लिए जा रहे थे। तुम्हें रास्ते में मुनिराज मिले, परंतु तुमने उनको नमस्कार आदि नहीं किया और

कहा–''यह कोढ़ी है, कोढ़ी है।'' ऐसा कहकर उनकी निंदा की और आज्ञा देकर उन मुनिराज को समुद्र में फिकवा दिया। फिर करुणा उत्पन्न होने पर उन्हें समुद्र से बाहर निकलवाया।

कुछ दिनों बाद फिर मुनि मिले तो तुमने कहा–''यह भ्रष्ट है, भ्रष्ट है।'' इस प्रकार उनकी निंदा की और ''इसका मस्तक काट देना चाहिए'' कहकर तलवार निकाल ली, पुनः दयावश तलवार वापिस रख ली।

एक दिन तुमने अपनी सारी बातें अपनी श्रीमती रानी को बतायीं। तब रानी ने तुम्हें धर्म, व्रत और मुनियों की महिमा बतायी। उसने कहा–''धर्म और मुनि की निंदा करने से घोर वेदनाएं सहन करनी पड़ती हैं।'' उस दिन से तुमने धर्म में मन लगाया, व्रतों का निरतिचार पालन किया और अंत में संन्यासपूर्वक देह छोड़ी। परिणाम स्वरूप तुम स्वर्ग में देव बने और तुम्हारी रानी श्रीमती का जीव तुम्हारी देवी बनी।

स्वर्ग से आकर तुम श्रीपाल बने और श्रीमती का जीव मैनासुंदरी बनी। पूर्व में मुनि को कोढ़ी कहकर निंदा की थी, इसलिए इस भव में तुम्हें उन सात सौ वीरों के जीव के साथ कोढ़ हुआ था। मुनि को समुद्र में फिकवाया था, इसलिए तुम्हें भी समुद्र में फेंका गया। मुनि को समुद्र से निकालने के पुण्य से तुम समुद्र को तैरकर किनारे तक पहुँच गये थे। मुनि को भ्रष्ट बताकर निंदा की थी, इसलिए भाटों ने ''तुम्हें यह हमारा पुत्र है'' ऐसा कहा था। मुनि को मारने तलवार निकाली थी, इसलिए राजा सतराज ने तुम्हें फाँसी की सजा सुनायी थी। तुमने तलवार वापिस रख ली थी, इसलिए राजा ने सच्चाई जानकर तुम्हारी सजा वापस ले ली थी। तुमने पूर्वभव में सिद्धचक्र विधान व्रत का उद्यापन किया था, जिसके परिणाम स्वरूप तुम्हें अपार वैभव प्राप्त हुआ।

श्रीमती के जीव ने पूर्व भव में तुम्हारा उपकार किया था, उसी श्रीमती के जीव ने इस भव में भी मैनासुंदरी के रूप में तुम्हारा पुनः उपकार किया।

अपने पूर्व भव सुनकर श्रीपाल को वैराग्य हो गया। उस दिन से वे उदास रहने लगे। एक दिन बिजली की चमक देख उन्होंने चिंतन किया कि यह संसार, शरीर का संयोग, विषय भोग सभी बिजली के समान हैं। उनका वैराग्य और भी बढ़ गया। अपने पुत्र को राज्य सौंप कर उन्होंने दीक्षा ग्रहण की और तप करके केवलज्ञान व शाश्वत मोक्ष पद को प्राप्त किया।

मैनासुंदरी ने भी आर्यिका दीक्षा ग्रहण की, घोर तपश्चरण किया और तप के प्रभाव से स्त्रीलिंग को नाश कर सोलहवें अच्युत स्वर्ग में बाइस सागर की आयु वाला देव पद प्राप्त किया। वह देव मनुष्य भव प्राप्त कर मोक्ष जायेगा।

धर्मस्नेही बंधुओं! सती मैनासुंदरी को अपने गुरु की सिखायी सीख कि 'जो कुछ मिलता है वह अपने कर्मों व भाग्य के अनुसार मिलता है' पर पूरा भरोसा था। वह उसी पर दृढ़ रही और कुष्ठी पति को पाकर भी उसने अपनी श्रद्धा को चलायमान नहीं किया, बल्कि बड़ी निष्ठा से सिद्धचक्र विधान किया।

उसी निष्ठा के प्रभाव से उसका पति कामदेव सा सुंदर हो गया। अतः हम सभी को भी चाहिए कि छोटे-मोटे हवा के झोकों से अपने श्रद्धारूपी दीपक को बुझने न दें।

भिक्षुका नैव याचन्ति बोधयन्ति गृहे-गृहे।
दीयताम्-दीयताम् यातः अदानात् फलं इदृशं।।

मैं भिक्षा माँगने नहीं आया, भगवान का एक संदेश लेकर आया हूँ कि पिछले जन्म में मैंने दान, पुण्य कर्म, गरीबों की सेवा, परोपकार का कुछ भी काम नहीं किया उसके फल स्वरूप ही आज घर-घर जाकर भीख माँग रहा हूँ। आपके पास धन सम्पत्ति है आप भी दान देना सीखिए।

पतिपरायणता

भरतक्षेत्र की चम्पा नगरी में मेघवाहन राजा राज्य करता था। इसी नगरी में सोमदेव ब्राह्मण रहता था। उसकी पत्नी का नाम सोमिला था। सोमदत्त, सोमिल तथा सोमभूति नामक उसके तीन पुत्र थे। सोमदेव का अग्निभूति नामक एक साला था, उसकी पत्नी अग्निला थी। उसके धनश्री, सोमश्री तथा नागश्री ये तीन बेटियाँ थीं। पुत्रों को विवाह योग्य देखकर सोमदेव ने धनश्री, सोमश्री तथा नागश्री के साथ क्रमशः उनका विवाह करा दिया। एक दिन मुनिराज का उपदेश सुनकर सोमदेव को वैराग्य हुआ और उसने दीक्षा ग्रहण कर ली।

एक बार धर्मरुचि मुनिराज आहार के समय सोमदेव के घर के सामने से जा रहे थे। सोमदत्त आदि आवश्यक कार्य से नागश्री को आहार देने हेतु छोड़कर चले गये। जाने की इच्छा तो नागश्री की भी थी, परंतु परिवार में छोटी होने से वह कुछ नहीं कह पायी, मन ही मन कुढ़ती रही। उसने मुनिराज को बाधक जानकर उनके आहार में कड़वी तुम्बी का रस मिला दिया। मुनिराज ने सरस-नीरस का विचार न करते हुये आहार ग्रहण किया, परंतु जहर से शरीर में पीड़ा होने लगी। प्राणांत का समय जानकर उन्होंने सल्लेखना ग्रहण कर ली और पंच परमेष्ठी का स्मरण करते हुये देह छोड़कर सर्वार्थसिद्धि नामक विमान में देव बने।

नागश्री के द्वारा विष मिला आहार देने से तपस्वी धर्मरुचि मुनि की मृत्यु हो गयी, यह समाचार सब ओर फैल गया। नगर निवासियों ने उसे बहुत कोसा, भला-बुरा कहा। कुछ लोंगों ने उत्तेजित होकर उसके बाल काट दिये, मुँह पर कालिख पोती और गधे पर बिठाकर नगर से निकाल दिया।

सोमदत्त आदि जब घर लौटे, तब उन्हें सब वृतान्त पता चला। उन्होंने सोचा ''आज कितना बड़ा अनर्थ हो गया, आज हमारे आँगन में धर्म अपमानित हुआ है। नागश्री को इस महापाप का फल कई जन्मों तक भोगना पड़ेगा।'' सोमदत्त आदि को बहुत पश्चाताप हुआ। पश्चाताप और पाप धर्मसेवन से ही धुलते हैं, यह सोचकर उन्होंने वरुण नाम के मुनि से दीक्षा ले ली।

उधर नागश्री को नगर के बाहर पेट भरने के लाले पड़ गये। उसे भीख में भी अन्न नहीं मिलता था, जैसे-तैसे झूठन से पेट भरकर जी रही थी। उसे कोढ़ हो गया, रोम-रोम से बदबू आने लगी, खाने-पीने को कुछ नहीं मिला। ऐसी दयनीय दशा में

वह तड़प-तड़प कर मर गयी और मरकर पाँचवें नरक गयी। वहाँ सत्रह सागर तक अकथनीय दुःख भोगती रही। नरक से निकलकर वह स्वयंप्रभ द्वीप में दृष्टिविष जाति का सर्प बनी और मरकर पुनः तीसरे नरक गयी, वहाँ तीन सागर तक कष्ट सहे। वहाँ से निकलकर त्रस, स्थावरों की अनेक योनियों में दो सागर तक दुःख भोगती रही। फिर जैसे-तैसे पुण्य के प्रभाव से वह चम्पा नगरी में चाण्डाल के घर कन्या बनी। वह भीख माँगकर पेट भरती थी, उसे सब अछूत समझते थे।

एक बार चम्पानगरी में समाधिगुप्त मुनिराज का आगमन हुआ। सभी दर्शन को जा रहे थे, तभी देखा-देखी वह चाण्डाल कन्या भी दर्शन के लिए गयी। उसने दूर से ही दर्शन किये। महाराज ने उसे वात्सल्य भाव से देखा और कहा–''बेटी धर्माराधना करो, तुम्हारा भला होगा।'' उसे मुनिराज के वचन सुनकर बहुत अच्छा लगा। मुनिराज पर उसकी श्रद्धा कई गुना बढ़ गयी। उसने पूछा–''मुझे धर्म के बारे में कुछ भी पता नहीं, आराधना कैसे करूँ?'' महाराज ने कहा–''बेटी! कुछ नियम व्रत ले लो अर्थात् मद्य, मांस, मधु का त्याग करो।'' उसने कहा–''ठीक है, आज से मैं मद्य, मांस, मधु का त्याग करती हूँ।''

उसने जीवन में कभी नियम नहीं तोड़े। नगरवासी लोग अब उसे सम्मान से देखने लगे। इन नियमों का पालन करते हुये उसने शरीर छोड़ा और इसी चम्पा नगरी में ही सुबंधु व्यापारी के घर धनवती स्त्री से सुकुमारी नाम की पुत्री बनी। परंतु यहाँ भी पाप ने उसका पीछा नहीं छोड़ा। उसके शरीर से बहुत दुर्गन्ध आती थी, सगे संबंधी उससे दूर रहते थे। शरीर की बदबू के कारण उसे सभी दुर्गन्धा कहकर पुकारते थे।

जब वह बड़ी हो गयी तो माता-पिता को उसके विवाह की चिंता हुयी, परंतु उसके साथ विवाह के लिए कोई तैयार नहीं था। इसी नगरी में धनदेव नामक छोटा व्यापारी था। उसकी पत्नी अशोकदत्ता व जिनदेव और जिनदत्त नामक दो पुत्र थे। सुबंधु उसके पास विवाह का प्रस्ताव ले गया, उसे धन का लोभ देने की कोशिश की। परंतु धनदेव यद्यपि छोटा व्यापारी था, लेकिन वह ईमानदार था, दूसरे की मजबूरी का फायदा उठाना पाप समझता था। उसे सुबंधु पर दया आयी, उसने बड़े पुत्र जिनदेव का विवाह दुर्गन्धा के साथ करना चाहा। जिनदेव ने सोचा ''दुर्गन्धा के साथ विवाह की बजाय मुक्तिकन्या से विवाह अच्छा है।'' और उसने सुव्रत मुनि के पास दीक्षा ले ली।

बड़ों के कहने पर जिनदत्त ने दुर्गन्धा के साथ विवाह तो कर लिया, परंतु उससे दूर ही रहने लगा। दुर्गन्धा बार-बार अपने दुर्भाग्य को कोसती और कहती–''जरूर मेरे पूर्व जन्मों के कर्म अच्छे नहीं थे, इसलिए तो जन्म से ही बदबूदार शरीर मिला है।''

पति होते हुये भी बिना पति का जीवन जीने वाली अपनी पुत्री की दु:खमयी दशा जानकर उसकी माँ धनवती उसे घर ले आयी और घर में उसके लिए एक कुटिया बनवा दी। उसमें ही वह रहती, उसके पास कोई नहीं जाता सिर्फ माँ आती-जाती और समझाती रहती–''बेटी! अभी पाप कर्म का उदय है, समता से सहन करो और नियम शील की श्रद्धा करो।''

एक दिन उसने उपवास किया तथा अनेक आर्यिकाओं से युक्त क्षान्ता आर्यिका को बड़ी भक्ति से आहार कराया और बाद में विनम्रता से पूछा–''माताजी! आपके संघ में ये कम उम्रवाली माताजियों ने किस कारण से दीक्षा ली?'' क्षान्ता आर्यिका ने उत्तर में कहा–''पूर्व जन्म में ये दोनों सौधर्म स्वर्ग में सौधर्म इंद्र की देवियाँ थीं। विमला और सुप्रभा इनके नाम थे। एक बार ये अपने स्वामी के साथ नंदीश्वर द्वीप गयी थीं। वहां बड़े भक्ति भाव से इन्होंने जिनेन्द्र भगवान की पूजा, अर्चना की और संसार से उदासीन होकर प्रतिज्ञा की थी कि भविष्य में जब भी मनुष्य भव प्राप्त करेंगी, तब निश्चित ही कठोर तपस्या करते हुये धर्म साधना करेंगी।

स्वर्ग से निकलकर दोनों अयोध्या के राजा श्रीसेन की सुकांता रानी की कोख से हरिषेणा तथा श्रीषेणा नाम की पुत्रियों के रूप में जन्मीं। युवा होने पर राजा ने स्वयंवर विधि से इनका विवाह कराना उचित समझा। शुभ मुहूर्त में दोनों स्वयंवर मण्डप में गयीं, वहाँ पहुँचते ही इन्हें ऊपर आकाश में नन्दीश्वर द्वीप जाने वाले देवों के विमान दिखे, तभी इन्हें जातिस्मरण हुआ, जिससे इन्होंने पूर्व भव की घटनाएं जान लीं। फिर पिता को सर्व वृतांत सुनाकर और उनकी आज्ञा लेकर ये दीक्षित हुयी हैं। अनेक स्थानों पर विहार करते हुये आज आपके नगर में हैं।''

आर्यिकाओं की जीवन गाथा सुनकर दुर्गन्धा विचारों में खो गयी और सोचने लगी कि ''इन दोनों ने अनेक प्रकार की भोग सामग्रियों को छोड़कर दीक्षा ली है और एक मैं हूँ जो नाम मात्र की भोग सामग्री में ही फँसी हूँ।'' विचारों की गहराइयों से निकलकर माता-पिता की आज्ञा ली और वह भी आर्यिका बन व्रतों का पालन करने लगी।

एक बार वसंतसेना वेश्या जा रही थी, उसके आगे-पीछे चार-पांच चापलूस थे। वेश्या को देखकर सुकुमारी आर्यिका के मन में भाव आया कि ''काश! ऐसे अनेक पुरुष मेरी भी सेवा करते।'' उन्होंने ऐसे भावों को अपने पद के विरुद्ध जानकर पश्चाताप भी किया, परंतु उस निदान से उन्हें बंध हो चुका था।

व्रतादिक का पालन करते हुये, देह त्यागकर सोमभूति (नाग श्री की पर्याय का उस का पति) जिस स्वर्ग में देव बना था, वहीं उसकी देवी बनी। वहाँ से चयकर वह माकंदी के राजा द्रुपद की पत्नी सुदर्शना की कोख से द्रौपदी नाम की कन्या के रूप

में जन्मी। उसके धृष्टद्युम्न आदि अनेक भाई थे। हँसते-खेलते हुये उसका बचपन बीता। विवाह योग्य होने पर राजा द्रुपद ने उसका विवाह स्वयंवर पद्धति से करना उचित समझा।

एक सुरेन्द्रवर्धन नाम का विद्याधरों का राजा था। जब उसकी पुत्री विवाह योग्य हुयी, तब उसने एक निमित्तज्ञानी से पूछा–''मेरी पुत्री का पति कौन होगा?'' गंभीरता पूर्वक विचार करके उसने कहा–''जो वीर मांकदी में आकर तुम्हारे गांडीव धनुष को गोल करने एवं राधावेध करने में समर्थ होगा, वही तुम्हारी एवं राजा द्रुपद की पुत्री का पति होगा।''

सुरेन्द्रवर्धन गांडीव धनुष लेकर द्रुपद के पास आया और निमित्तज्ञानी की सारी बातें बतायी। फिर द्रुपद ने राजाओं को निमंत्रण भेजे, स्वयंवर मण्डप सजवाया और वहाँ गांडीव भी सजवाकर रखवा दिया।

जिन सोमदत्त, सोमिल और सोमभूति की चर्चा कथा के प्रारंभ में की थी, वे स्वर्गादि जन्मों के बाद इस समय राजा पाण्डु की पहली पत्नी कुन्ती के गर्भ से क्रमशः युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन के रूप में जन्में थे। पाण्डु की दूसरी पत्नी माद्री के गर्भ से पूर्व में जो धनश्री व मित्रश्री के जीव थे, वे इस जन्म में क्रमशः नकुल व सहदेव बने हैं। ये पाँचों पाण्डु के पुत्र होने से पाण्डव कहलाए।

राजा पाण्डु ने मुनि से अपनी अल्पायु जानकर दीक्षा ग्रहण कर ली थी और देह त्याग कर सौधर्म स्वर्ग में देव बने। माद्री ने भी तपस्या का मार्ग अपनाया और आयु पूर्ण कर स्वर्ग में देवी बनी। पाण्डु के धृतराष्ट्र और विदुर दो भाई थे। धृतराष्ट्र ने एक निमित्तज्ञानी मुनि से पाण्डवों के द्वारा कौरवों का विनाश जानकर पाण्डवों और कौरवों में राज्य को आधा-आधा बाँट दिया और दीक्षा लेकर मुनि बन गये।

धृतराष्ट्र के सौ पुत्र कौरव कहलाये, कौरवों में अग्रज पुत्र दुर्योधन था। दुर्योधन राज्य के बंटवारे से खुश नहीं था, इसलिए उसने लाक्षागृह (लाख का घर) बनवाया, उसमें पाण्डवों को रूकवाया और रात में उसमें आग लगवा दी। पाण्डव गुप्त मार्ग से बच निकले और दुर्योधन की नीयत जानकर गुप्तरूप से रहने लगे। वे माकन्दी में एक कुम्हार के घर ब्राह्मण का वेष धारण कर ठहरे हुये थे।

माकन्दी में द्रौपदी के स्वयंवर की बात जानकर पाण्डव भी स्वयंवर देखने गये। जब दुर्योधन आदि कोई भी राजा लक्ष्यवेध करने में सफल नहीं हुये, तब द्रुपद आदि चिंताग्रस्त हो गये कि अब द्रौपदी के विवाह का क्या होगा?'' द्रुपद आदि की दशा से युधिष्ठिर को दुःख हुआ। उसने अर्जुन को इशारे से अपने पास बुलाया और धीरे से कहा–''तुम श्रेष्ठ धनुर्धर हो। द्रुपद जैसा धर्मात्मा दुःखी हो क्या हमें अच्छा लगेगा? इसलिए जाइए और लक्ष्यवेध कीजिए।''

अर्जुन सिद्ध भगवान को याद कर और भाइयों को नमस्कार कर लक्ष्यवेध के लिए जाने लगा। सभी राजा उसे देखकर हँसने लगे। अर्जुन जब धनुष के पास पहुँचा, तब उसके पुण्य प्रताप से धनुष की ज्वालाएं अपने आप शांत हो गयीं। उसने एक ही प्रयास में धनुष को झुकाकर लक्ष्यवेध किया। सभी देखते ही रह गये।

द्रुपद यह देख खुश हुये। द्रौपदी का मन खिल उठा। हृदय में उमंग और हाथ में वरमाला लेकर खुशी से चहकती हुयी द्रौपदी आगे बढ़ी। वह अर्जुन के गले में वरमाला डाल रही थी, तभी हवा का तेज झोंका आया, जिससे वरमाला की कुछ पंखुडियाँ अर्जुन के पास खड़े भाइयों पर गिर गयीं। इसी कारण पतिव्रता होते हुए भी, सुकुमारी के जन्म में वेश्या वसंतसेना को देखकर बांधे हुये निदान बंध के पापोदय से जनता में सती द्रौपदी के संबंध में यह अपवाद फैल गया कि, वह पंचभर्तारी है। इसलिए जो पदार्थ प्राप्त नहीं हो सकता उसकी इच्छा करके पाप बंध नहीं करना चाहिए।

लक्ष्यवेध समाप्त हुआ, परंतु दुर्योधन के मन में ईर्ष्या की आग जलने लगी। वह बगावत करने को तैयार हुआ, कहने लगा–''इन भिखारी ब्राह्मणों को मण्डप में क्यों आने दिया गया? यह हम क्षत्रियों का घोर अनादर है।'' कुछ राजा दुर्योधन के पक्ष में हो गये। उनसे विचार विमर्श कर उसने द्रुपद के पास दूत भेजा और कहलवाया–''हे द्रुपद! यह कार्य आपको शोभनीय नहीं है, क्योंकि यह दाग सदा के लिए आपके चरित्र पर रहेगा कि द्रुपद ने वीर क्षत्रिय राजाओं के रहते हुये भी एक अज्ञात कुलशीली ब्राह्मण से बेटी ब्याह दी। अन्य लोग भी इसे उदाहरण बनाकर विजातीय विवाह करते रहेंगे।''

द्रुपद को दुर्योधन का संदेश बुरा लगा। उसने कठोर शब्दों में संदेश भिजवाया–''हे दुर्योधन! आप सबको पहले अवसर दिया गया था, परंतु आप असफल हुये और आप सबके मुँह लटक गये। अब किस मुँह से बात कर रहे हो? स्वयंवर में सफलता वीर को ही प्राप्त होती है। जो वीर है, वही राजा है, भले ही उसके पास राज्य न हो, और जिसने क्षत्रिय से बढ़कर प्रयास किया हो, वह अज्ञात कुलशीली कैसे है? रही बात युद्ध की तो द्रुपद न्याय के लिए प्राणों को भी तुच्छ समझता है।''

दुर्योधन आदि सभी राजा युद्ध की तैयारी करने लगे। पाण्डव द्रुपद के पास गये और युद्ध के लिए पाँच रथ माँगे। द्रुपद चतुर थे, समझ गये कि ये साधारण ब्राह्मण नहीं हैं, क्योंकि ऐसी माँग वीर (क्षत्रिय) ही कर सकते हैं। पाण्डवों ने द्रुपद से कहा–''आप निश्चिंत रहें, विजय आपकी ही होगी।''

दोनों सेनाएँ आमने-सामने आ गयीं और युद्ध होने लगा। अर्जुन के बाणों के सामने दुर्योधनादि सबको परास्त देखकर द्रोणाचार्य अर्जुन के साथ युद्ध के लिए आए। गुरु द्रोणाचार्य को सामने देखकर अर्जुन ने अपने परिचय वाला पत्र बाण के द्वारा उनके चरणों तक पहुँचाया।

पाण्डवों को जीवित जानकर द्रोणाचार्य को प्रसन्नता हुयी। उन्होंने पाण्डवों का समाचार दुर्योधन को सुनाया। चारों ओर यह चर्चा फैल गयी। सबको बड़ी प्रसन्नता हुयी, परंतु दुर्योधन का शरीर ईर्ष्या से जलने लगा, लेकिन उसने प्रगट नहीं किया। पितामह भीष्म, गुरु द्रोणाचार्य और सुलझे विचारों वाले कर्ण ने पाण्डवों से कौरवों को क्षमादान देने के लिए कहा। पाण्डवों ने गुरुजनों का मान रखकर कौरवों को क्षमा कर दिया। कौरव और पाण्डव आपस में मिले, परंतु उनके दिल नहीं।

द्रुपद ने अर्जुन को युद्ध करते हुये देखा, तो वे समझ गये थे कि ये सब पाण्डव हैं। द्रुपद की खुशी का ठिकाना नहीं रहा। बड़े ठाठ-बाट से द्रौपदी का विवाह हुआ। पश्चात् द्रौपदी को लेकर पाण्डव हस्तिनापुर आकर रहने लगे।

एक दिन दुर्योधन ने युधिष्ठिर से कहा–''आज मन बेचैन है, इसलिए क्यों न हम लोग शतरंज खेलें।'' युधिष्ठिर शतरंज खेलने लगे और धीरे-धीरे सब वैभव हार गये। जब वे भाइयों और पत्नियों को दाव में लगा रहे थे, तब भीम आदि ने उन्हें टोका, परंतु व्यसनों के नशे में सत्य सुनाई नहीं देता। जुआ तो व्यसनों का सिरमौर है, उसे तो भूलकर भी नहीं खेलना चाहिए। अंत में युधिष्ठिर स्वयं को भी हारकर महल लौट गये। वे अपने महल में आकर बैठ ही नहीं पाये, इतने में दुर्योधन का दूत आया और बोला–''अब आप दुर्योधन के अधीनस्थ हैं, वे आपको आज्ञा देते हैं कि आप भाइयों के साथ बारह वर्ष के वनवास एवं एक वर्ष के अज्ञातवास के लिए आज रात्रि के अंधेरे में ही निकल जाइये।''

उधर दुर्योधन का अनुज दुःशासन रनिवास में गया और द्रौपदी को जबरदस्ती बाहर निकालने लगा। द्रौपदी ने मना किया तो उसके बालों को पकड़कर घसीटता हुआ बाहर लाया। भीष्म ने उसे मना किया, पर वह नहीं माना। द्रौपदी बिलखती हुयी पाण्डवों के पास गयी, उसने कहा–''यह मेरा नहीं आपकी वीरता का अपमान है।'' उसने भीम और अर्जुन की ओर मुख करके कहा–''आप लोगों के सामने भी मेरा इस तरह अपमान होता रहेगा तो आपकी गदा और धनुष किस काम के?''

भीम और अर्जुन ने दुःशासन के विनाश के लिए युधिष्ठिर से आज्ञा माँगी। पुत्र समान भाईयों को युधिष्ठिर ने समझाते हुये कहा–''इस समय हमारा समय अनुकूल नहीं है। मेरी दुर्बुद्धि की वजह से आप सब पर इस तरह विपत्ति के बादल मंडरा रहे हैं। कुछ काल तक हमें शांत ही रहना चाहिए, पुण्योदय आने पर हम अवश्य ही इस अपमान का बदला लेंगे।''

बड़े भाई के आगे आज्ञाकारी अनुज नतमस्तक हो गये और सभी युधिष्ठिर के निर्देशन में वनवास पर निकल गये। द्रौपदी को बहुत मना किया, पर वह नहीं मानी तो उसे भी वन में साथ ले गये।

बारह वर्ष का वनवास बीत गया, अब एक वर्ष का अज्ञातवास का समय बाकी था। पाण्डवों ने अलग-अलग भेष धारण किये और विराट नगर पहुँचे। यहाँ के राजा का नाम विराट था। राजसभा की नौकरी का काम युधिष्ठिर ने प्राप्त किया, भीम रसोइया बना, नकुल घुड़साल में घोड़ों की देखभाल करने लगा, सहदेव गायें संभालने लगा, अर्जुन स्त्री का वेष धारण कर वृहन्नला नाम रख नृत्य शिक्षिका का कार्य करने लगा और द्रौपदी शैलन्ध्री नामक दासी बनकर रानी सुदर्शना की सेवा करने लगी। समय-समय पर सभी एक-दूसरे से मिलते थे।

एक दिन रानी सुदर्शना का भाई कीचक बहन से मिलने आया। उसकी दृष्टि द्रौपदी पर पड़ी और उसके सौंदर्य के कारण वह उसको पाने का प्रयास करने लगा। एक दिन वह द्रौपदी के सामने गिड़गिड़ाने लगा, विषयों की भीख माँगने लगा, ''तुम्हें पाये बिना मैं मर जाऊँगा'' इस प्रकार के वचन कहने लगा। अंत में द्रौपदी ने उससे कहा–''मुझे अबला समझने की भूल न करो, मेरे पाँच महा बलशाली गंधर्व रक्षक हैं। उन्हें पता चला तो तुम्हें जीवित नहीं रहने देंगे।''

जब कीचक जबरदस्ती करने की कोशिश करने लगा, तब द्रौपदी ने युक्ति से काम लिया और उसे अन्य दिन निश्चित स्थान पर मिलने बुलाया। कीचक मिलन की खुशी से उछलता-कूदता चला गया। इधर द्रौपदी ने सारी बातें पाण्डवों को एकांत में बता दीं। युधिष्ठिर ने भीम को स्त्री के भेष में द्रौपदी के स्थान पर कीचक से मिलने के लिए भेजा।

निश्चित स्थान व समय पर स्त्री भेष में भीम पहुँच गया और वहाँ पहुँचकर उस ने कीचक की जमकर पिटाई की। बुरे काम का नतीजा बुरा होता है। विषय वासना को बुरा जानकर कीचक को भारी पश्चाताप हुआ, संसार की असारता को देखकर उसे वैराग्य हुआ। उसने रतिवर्धन मुनि से मुनि दीक्षा ले ली और एकांत निर्जन स्थान पर चला गया।

कीचक के निन्यानवे भाई थे। सबने कीचक को खोजा, परंतु असफल रहे। उन्हें एक चिता जलती हुयी दिखाई दी, किसी ने कहा–''यह चिता कीचक की है तथा उसकी यह दशा शैलन्ध्री के कारण हुयी है।''

उधर द्रौपदी ने ये समाचार चारों ओर फैला दिया कि कीचक उससे जबरदस्ती करने लगा तब एक गंधर्व ने उसकी रक्षा कर कीचक की पिटाई की। यह बात राजा विराट तक भी पहुँची। लोग जमा होने लगे, तभी कुछ लोग इस दुखद घटना का कारण शैलन्ध्री को जानकर उसे चिता में जलाने का प्रयास करने लगे तो वह जोर-जोर से रोने लगी और सहायता के लिए पुकारने लगी। उसकी आवाज सुनकर भीम गुस्से में एक बड़े वृक्ष को जड़ से उखाड़कर चिता की ओर आया। उसे इस

तरह देख कीचक के भाइयों के अलावा सब भाग गये। गुस्साए भीम का गुस्सा उन निन्यानवे भाइयों पर निकला, उसने उन्हें जलती चिता में डाल दिया। वे सब जीवित मारे गये।

उधर कीचक मुनि ध्यान, अध्ययन व कठोर तप में समय व्यतीत करते हुए एक घने जंगल में निश्चल बैठे थे। वहाँ एक यक्ष पहले से ही था, उसने मुनि की परीक्षा के लिए आधी रात में द्रौपदी का रूप रखा और मुनि के सामने पहुँच अनेक कामभरी क्रीड़ाएं की। उसकी क्रीड़ाएं जली हुयी रस्सी की तरह साबित हुयीं, जो मुनि के मन को बांध न सकीं। विजयपताका के रूप में मुनिराज को अवधिज्ञान प्रकट हुआ। उनकी कठोर साधना देखकर यक्ष हार गया, क्षमायाचना के साथ प्रणाम कर उसने पूछा–''द्रौपदी के प्रति आपके स्नेह का क्या कारण था?'' तब मुनि ने अवधिज्ञान से बताया–

एक समय मैं तरंगिनी नामक नदी के किनारे, जहाँ वेगवती नाम की नदी का संगम होता है, वहाँ क्षुद्र नाम का म्लेच्छ था। मेरे परिणाम बहुत रौद्र रहते थे। वहाँ एक बार मुनिराज आये, उनके दर्शन से मेरे परिणामों में शांति छा गयी। शांत परिणामों से मरकर मैं एक व्यापारी के घर कुमारदेव नाम का पुत्र हुआ। वहाँ मेरी माँ नागश्री ने धर्मरुचि नामक मुनि को विष मिश्रित आहार दिया, जिससे मुनि की मृत्यु हो गयी। इस जघन्य पाप से वह कुगतियों में भटकती रही। मैं मरकर कुत्ता बना, तत्पश्चात् सित नामक तापस के यहाँ मधु नामक पुत्र हुआ। एक दिन किसी श्रावक ने विनयदत्त मुनि को आहार दिया, तब मैं भी वहीं था। मुनिमुद्रा मुझे इतनी भायी कि मैंने भी दीक्षा धारण कर ली और समाधिपूर्वक देह त्याग कर स्वर्ग में देव बना। स्वर्ग से आकर मैं कीचक बना हूँ। मेरी माँ जिसने मुनि को विष मिश्रित आहार दिया था, वह अब द्रौपदी बनी है। पूर्व संस्कारों के कारण इस भव में उसके प्रति प्रेम उमड़ा था।

मुनिराज से वैराग्यभरी घटना सुनकर यक्ष द्रवित हुआ और मुनि को नमस्कार कर चला गया।

इधर कीचक को गंधर्व द्वारा मारे जाने का समाचार सुनकर कौरव पक्षधर जालंधर नामक वीर राजा दलबल के साथ विराट नगर आया। वहाँ वह गाय चुराने लगा, दरअसल उसे गायें नहीं चुरानी थीं, वह तो गायों को चुराने के बहाने से विराट राजा से युद्ध करना चाहता था। उसकी इच्छा पूरी हुयी, राजा विराट और उसके पुत्र युद्ध के लिए सेना के साथ आ गये, परंतु जालंधर की बड़ी सेना देखकर सहम गये। पाण्डवों ने उन्हें हिम्मत दिलायी।

युद्ध प्रारंभ हुआ, जिसमें जालंधर ने राजा विराट को बंदी बना लिया, तब युधिष्ठिर की आज्ञा से भीम ने युद्ध कर जालंधर को बंदी बना लिया और राजा विराट

को मुक्त कराया। जालन्धर को बंदी बनाये जाने का समाचार दुर्योधन तक पहुँचा तो वह आग बबूला हो गया। वह स्वयं विशाल सेना के साथ युद्ध के लिए आया। युद्ध की भयंकरता देखकर दुर्योधन की सहायता के लिए पितामह भीष्म, द्रोणाचार्य आदि कौरवपक्षी राजा आये। लम्बी अवधि तक युद्ध चलता देख, हिंसा पाप की जड़ जानकर अर्जुन ने सम्मोहन अस्त्र का प्रयोग कर कौरवपक्षी सभी महारथियों को मूर्च्छित कर बंदी बना लिया। इस तरह उस युद्ध में राजा विराट को विजय प्राप्त हुयी।

युद्ध में चतुराई और पराक्रम देखकर राजा विराट को समझने में देर नहीं लगी कि पाँचों युद्धवीर कोई और नहीं बल्कि पाण्डव ही हैं। उन्होंने पाण्डवों को बुलाकर उनका सम्मान किया, अपनी लघुता प्रकट की और क्षमा माँगी। पाण्डवों ने उन्हें सम्मान देकर अपनी परिस्थिति का कारण बताया और कहा–''इसमें आपकी कोई भूल नहीं थी, आप क्षमा माँगकर हमें शर्मिन्दा मत कीजिए।''

राजा विराट ने अपनी इकलौती पुत्री का विवाह अर्जुन से कराने का प्रस्ताव रखा। अर्जुन ने कहा–''मैंने आपकी पुत्री को वृहन्नला बनकर शिक्षा दी है, उसका शिक्षागुरु होने से वह मेरी पुत्री के समान है, इसलिए मैं उससे विवाह नहीं कर सकता। यदि आप उचित समझें तो सुभद्रा से उत्पन्न मेरा पुत्र अभिमन्यु विवाह योग्य हो गया है, उसके साथ अपनी पुत्री का विवाह कराइये। राजा विराट ने अर्जुन का प्रस्ताव स्वीकार कर ठाटबाट से अपनी पुत्री का विवाह अभिमन्यु के साथ कराया।

उसी समय की बात है, द्वारिका का एक व्यापारी व्यापार करने के लिए राजा जरासन्ध के राज्य में गया था। वहाँ उसने राजा को दिव्य रत्न भेंट किये। जरासन्ध ने उससे पूछा–''ये दिव्य रत्न तुम कहाँ से लाये हो? वहाँ का शासक कौन है?'' व्यापारी ने कहा–''तीर्थंकर नेमिनाथ जिनके सहयोगी हैं, ऐसे कृष्ण वहाँ के आदरणीय शासक हैं। तीर्थंकर नेमिनाथ के जन्म के समय स्वर्ग के देवों ने कुबेर की आज्ञा से पन्द्रह माह तक रत्न बरसाए थे, उनमें से ये कुछ रत्न लेकर आया हूँ।''

जरासंध स्वयं को भरतखंड का सबसे बड़ा राजा (चक्रवर्ती) समझता था। जब उसने व्यापारी के मुख से कृष्ण की प्रशंसा सुनी कि वह चक्रवर्ती माना जाता है तो वह उत्तेजित हुआ। उसने झूठे चक्रवर्तित्व के अभिमान में व्यापारी से कहा–''कृष्ण यहाँ आकर हमें नमस्कार करें, हमारी आधीनता स्वीकार कर सुख से रहें, नहीं तो युद्ध के लिए तैयार रहें।''

व्यापारी ने जाकर सब समाचार श्रीकृष्ण को सुनाया। कृष्ण ने कुछ प्रत्युत्तर नहीं दिया, मात्र मंदमंद मुस्करा दिये। कई दिनों तक जबाव न मिलने पर जरासंध ने कृष्ण (द्वारिका) पर आक्रमण का निर्णय किया। सहयोग के लिए उसने दुर्योधन के पास दूत

भेजा। दुर्योधन को यह अवसर अच्छा लगा, एक तीर से दो निशाने होते दिखायी दिये, क्योंकि पाण्डव वहीं थे। दुर्योधन का साथ पाकर जरासंध सेना लेकर आक्रमण के लिए निकल पड़ा। जरासंध के समाचार, उसकी युद्ध की घोषणा, सहयोगियों की जानकारी नारद ने कृष्ण को बतायी।

जरासंध ने व्यूह रचना करके, सारी तैयारियाँ करके एक दूत कृष्ण के पास भेजा और कहलवाया कि ''मुझे नमस्कार कर मेरी आधीनता स्वीकार करो, अन्यथा राज्य छोड़कर जाओ या युद्ध के लिए तैयार हो जाओ।''

कृष्ण ने नमस्कार करने या राज्य छोड़कर जाने से मना कर दिया और युद्ध के लिए तैयार होने के लिए कहा। युद्ध की घोषणा हुयी। दोनों ओर की विशाल सेनाएं कुरुक्षेत्र में आमने-सामने आ गयीं। दोनों ओर से भयंकर युद्ध प्रारम्भ हुआ। उस युद्ध की भयंकरता का वर्णन शब्दों में करना संभव नहीं है।

एक बार इस महायुद्ध में कौरवपक्ष के जयाद्रि आदि अनेक राजाओं ने अभिमन्यु को चक्रव्यूह में घेर लिया, उस पर एक साथ अनेक शस्त्रों से प्रहार किये, उसे घायल कर दिया। उसे मरणासन्न प्यासा देखकर कर्ण ने उसे पानी पिलाना चाहा, पर अभिमन्यु ने कहा–''मेरा बचना संभव नहीं है, ऐसा जानकर मैंने सल्लेखना ग्रहण की है। मैंने अन्न-जल का त्याग किया हुआ है, अब मैं पंचपरमेष्ठी के स्मरण के साथ देह छोड़ रहा हूँ।''

युद्ध में शिखण्डी के द्वारा भीष्म, अर्जुन के द्वारा जयद्रथ, युधिष्ठिर के द्वारा शल्य, भीम के द्वारा दुर्योधन और कृष्ण के पुत्र शम्बुकुमार के द्वारा अनेक वीर मारे गये। श्रीकृष्ण जरासंध का वध कर नारायण पद के धारी (अर्द्धचक्रवर्ती) हुये। युद्ध में श्रीकृष्ण, पाण्डवों की विजय हुयी। युद्ध में विजय के बाद पाण्डव हस्तिनापुर आकर राज्य संभालने लगे।

कौरवों से अपना राज्य वापस प्राप्त करने के पश्चात् पाण्डव राज्य को न्याय, नीति, प्रेम से चला रहे थे। प्रजा भी उनके राज में प्रसन्न थी। दिन सुख से बीत रहे थे। एक बार नारद हस्तिनापुर आये और पाण्डवों से मिलने के बाद द्रौपदी से मिलने की इच्छा से उसके महल में गये। जब वे महल में आये, तब द्रौपदी श्रृंगार करके अपने सौंदर्य को दर्पण में निहार रही थी, इसलिए वह नारद को नमस्कार करना ही भूल गयी।

उसका नमस्कार न करना नारद को अखरा, उसके रुखे व्यवहार को नारद ने अपना अपमान समझा। हालांकि द्रौपदी ने ऐसा जान बूझकर नहीं किया था। नारद ने मन की बात मन में ही रखी और वहाँ से चले गये।

बदला लेने की भावना से नारद ने द्रौपदी का एक सुंदर चित्र बनाया और उस चित्र को धातकीखण्ड द्वीप की अमरकंका नगरी के पद्मनाभ राजा को दिखाया। देखते ही राजा हक्का-बक्का रह गया, उसको पाने की चाह मन में लिए हुये उसने पूछा–''यह कौन है?''

नारद ने कहा–''जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र के कुरुजांगल देश की हस्तिनापुर नगरी के राजा युधिष्ठिर के छोटे भाई अर्जुन की पत्नी द्रौपदी है।'' काम से पीड़ित हुये पद्मनाभ ने यह नहीं सोचा कि यह ब्याहता स्त्री है, उसे पाने की इच्छा उसे दुर्गति में ले जायेगी। नारद तो अपना प्रयोजन सिद्ध समझकर वहाँ से चले गये।

नारद के जाने के बाद पद्मनाभ बेचैन रहने लगा, द्रौपदी को प्राप्त करने का उपाय सोचने लगा। बहुत सोचने के बाद उसे एक उपाय सूझा। वह जंगल में गया और मंत्र आराधना कर संगम नामक देव को सिद्ध (आधीन) किया। सिद्ध होते ही देव ने पद्मनाभ से किसी कार्य के लिए पूछा। पद्मनाभ ने उससे द्रौपदी को लाने के लिए कहा।

संगम देव गया और रात्रि में पलंग पर सोयी हुयी द्रौपदी को पलंग सहित उठा लाया। सुबह आँख खुलने पर द्रौपदी ने स्वयं को एक अनजान जगह पाया, सामने एक अपरिचित व्यक्ति को हँसते हुए देखा, उसने इसे सपना समझकर पुनः आँखें बंद कर लीं। पद्मनाभ ने उसके पास जाकर धीरे से कहा–''हे विश्वसुंदरी! यह सपना नहीं हकीकत है। मैं धातकीखण्ड द्वीप की अमरकंका नगरी का राजा पद्मनाभ हूँ।'' उसने नारद के द्वारा चित्र दिखाने से लेकर द्रौपदी को धातकीखण्ड लाये जाने तक का समस्त वृतांत द्रौपदी को बताया और कहा–''मेरी महारानी बनना स्वीकार करके मुझे प्रसन्न करो और मेरे अथाह वैभव का उपभोग करो।''

द्रौपदी हकीकत जानकर डर गयी और अर्जुन को याद कर रोने लगी। उसने पद्मनाभ से स्वयं को वापिस छोड़ने के लिए कहा, परंतु कामी पर आँसू, विपत्ति, डरने का कोई असर नहीं हुआ। अपनी विनती बेअसर देखकर वीरांगना द्रौपदी ने गरजते हुये कहा–''मुझे अबला समझने की भूल मत करना, तुम जानते नहीं किससे बात कर रहे हो? मेरे एक नहीं पाँच पाण्डव रक्षक हैं, जो इस धरती पर सबसे अधिक बलशाली हैं। मैं सिर्फ अर्जुन की पत्नी हूँ, उनकी ही रहूँगी, तुम जैसे कायर की नहीं, जो परविवाहिता स्त्री को नींद में उठवा ले। अर्जुन ही एकमात्र मेरे वैभव हैं, तुम्हारा तो क्या संसार का सारा वैभव मुझ शीलवती के लिए सड़े-गले कचरे से भी बदतर है। मैं मरकर भी अपने शील की रक्षा करूँगी, वह मुझे प्राणों से भी प्यारा है।''

द्रौपदी ने उसके सामने प्रतिज्ञा की कि ''जब तक अर्जुन के दर्शन नहीं होंगे, तब तक अन्न-जल ग्रहण नहीं करूँगी।''

इधर हस्तिनापुर में सुबह होने पर द्रौपदी के दिखाई नहीं देने पर खलबली मच गयी। द्रौपदी का पता लगाने के लिए चारों ओर गुप्तचर फैला दिये गये, परंतु कहीं से कोई सूत्र हाथ नहीं लगा। ज्यों-त्यों समय बीत रहा था, त्यों-त्यों पाण्डवों की चिंताएं बढ़ रही थीं।

उधर द्वारिका में कृष्ण ने द्रौपदी के अपहरण का समाचार सुनकर क्रोध में युद्ध की तैयारी प्रारम्भ कर दी। क्योंकि पाण्डव रिश्ते में यादवों के भांजे थे, इसलिए कृष्ण को क्रोध आना स्वभाविक था।

नारद अपने अपमान का बदला चुकता हुआ है या नहीं, यह देखने के लिए अमरकंका नगरी पहुँचा। पर यह क्या? वहाँ पहुँचते ही द्रौपदी के सतीत्व और धर्मपरायणता के तेज के आगे उसका बदला लेने का विकार हार गया। द्रौपदी की दशा देखकर वह दु:खी हुआ, सोचने लगा–''मैंने बिना सोचे समझे यह कैसा बदला लिया?'' नारद पश्चातापभरी हालात में डूबा हुआ सीधे कृष्ण के पास गया तथा द्रौपदी के अपहरण की कथा आद्योपान्त सुनायी और उसे लाने का उपाय, साधन आदि की जानकारी दी।

कृष्ण ने बिना देर किये हस्तिनापुर दूत भेजकर यह समाचार पाण्डवों को भिजवाया। नारद के द्वारा बताये मार्ग व साधनों के साथ पाण्डव तथा कृष्ण लवणसमुद्र के तट पर पहुँचे। वहाँ पहुँचकर कृष्ण ने सोचा–''कोई मनुष्य कितना भी शक्तिशाली क्यों न हो, परंतु बिना देव की सहायता के इस समुद्र को पार नहीं कर सकता। इसलिए कृष्ण ने समुद्र तट पर तीन दिन का उपवास किया। उससे समुद्र रक्षक स्वस्तिक नाम का देव प्रसन्न हुआ। उसने पूछा–''बताइये आपकी क्या सेवा करूँ?''

कृष्ण ने देव को सारी बातें बतायीं। उस देव ने उनको समुद्र जल पर चलने वाले रथ दिये। उन रथों पर सवार होकर कृष्ण और पाण्डव अमरकंका पहुँचे गये। वहाँ पहुँचते ही कृष्ण ने ऊँचे स्वर से शंखनाद किया, शस्त्रास्त्र सम्भाल कर पद्मनाभ को युद्ध के लिये ललकारा।

पद्मनाभ ने जब शंखनाद और इस प्रकार की युद्ध की ललकार सुनी तो सकते में आ गया, नगरी में युद्ध भेरी बजवाकर युद्ध के लिए तैयार होकर आया। वह सामने मात्र छः व्यक्ति देखकर प्रारम्भ में तो मुस्कराया और बात ही बात में युद्ध जीतने की उमंग से आगे बढ़ा। परंतु युद्ध शुरू होते ही वह अर्जुन के बाणों से विचलित हो गया, समझ गया कि ये कोई साधारण वीर नहीं हैं, तभी तो समुद्र पार कर यहाँ तक पहुँच

गये, छः होते हुये भी इतनी बड़ी सेना से भिड़ने की हिम्मत कर पाये हैं। अपनी जान बचाने में ही भलाई है, नहीं तो युद्ध में मृत्यु होनी है, इत्यादि सोचकर वह वहाँ से भाग गया। नगर का मुख्य दरवाजा बंद करवाया। पाण्डवों ने दरवाजा तोड़ा और उसके पीछे भागे। डरा हुआ पद्मनाभ भागता-भागता द्रौपदी के चरणों पर गिरकर गिड़गिड़ाने लगा–''हे देवी! मैंने आप पर जो कुदृष्टि डाली, उसी का यह परिणाम है। मुझे क्षमा करो, मेरी रक्षा करो, मेरे प्राण अब आपके हाथों में हैं।'' द्रौपदी व पाण्डवों ने उसे क्षमा कर दिया, क्योंकि शरणागत को क्षमा करना, अभयदान देना पाण्डवों की रीति रही है।''

पाण्डवों ने द्रौपदी को आहार जल देकर उसकी पारणा करायी। बाद में पद्मनाभ ने सबको सम्मान के साथ विदा किया।

उन सबका संगम हुआ, यह सब पाण्डवों और द्रौपदी के पूर्व पुण्य का उदय ही था। पुण्य के बिना धातकीखण्ड द्वीप से द्रौपदी की प्राप्ति असंभव ही थी। पुण्य असंभव को संभव कर देता है।

भगवान नेमिनाथ को दीक्षा के कुछ समय बाद ही केवलज्ञान प्रकट हो गया। इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने समवशरण की रचना की। पाण्डव भगवान के वंदन, दिव्यध्वनि सुनने के लिये आये। उन्होंने भगवान से अपने पूर्व जन्मों के बारे में पूछा। अपने पूर्व भवों को सुनकर उन्हें संसार से वैराग्य हुआ। पाँचों पाण्डवों ने दीक्षा ग्रहण कर ली और आत्मसाधना में लीन हो गये। निर्दोष तपस्या करते हुये और उपसर्ग सहन करते हुये शत्रुंजय तीर्थक्षेत्र से युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन मुनि ने मोक्ष पद प्राप्त किया, इसी क्षेत्र से शांत परिणामों से देह छोड़कर नकुल और सहदेव मुनि सर्वार्थसिद्धि नामक स्वर्ग गये।

द्रौपदी ने आर्यिका जीवन तप, साधना में बिताया और समाधिपूर्वक देह त्याग करके सोलहवें स्वर्ग में देव बनी।

धर्मस्नेही बंधुओं! द्रौपदी पंचभरतारी नहीं बल्कि एक सती, पतिव्रता नारी थी। उसकी उस पतिपरायणता ने ही उसे महान बनाया।

सीता की सहनशीलता

भारतवर्ष में अनेक देश हैं, उन्हीं में से एक मैथिल देश है। इसमें मिथिलापुर नामक नगर था। किसी समय उस नगरी में राजा जनक राज्य करते थे। वे बड़े सत्यवादी, प्रतापी और प्रजा हितैषी थे। उनकी पटरानी का नाम विदेहा था।

पूर्व पुण्य के उदय से रानी विदेहा ने गर्भ धारण किया। नौ मास व्यतीत होने पर रानी ने सुंदर पुत्र व पुत्री को जन्म दिया, परंतु दैवयोग से जन्मान्तर के बैरी एक दैत्य ने अपना बदला लेने के अभिप्राय से पुत्र को उसी रात्रि में हर लिया। क्रोध में उसने विचारा कि इस पुत्र को पत्थर पर पछाड़ कर मार डालूँ, परन्तु तुरंत ही उसके विचार बदल गये, दयाभाव से युक्त होकर उसने उस बालक के कान में दिव्य कुण्डल पहनाये और पर्णलघ्वी विद्या के द्वारा धीरे से उसे छोड़कर वहाँ से चला गया।

बालक विद्या के द्वारा धीरे-धीरे धरती की ओर आ रहा था, उसी समय वहाँ से चंद्रगति नामक एक निःसंतान विद्याधर जा रहा था। बालक को देखकर उसने उसे अधर में पकड़ लिया और उसे लेकर घर पर सोयी हुयी अपनी पत्नी के पास रखा। उसे जगाकर कहा–''देखो, तुम्हारे पुत्र हुआ है। तुम बेकार ही कहती रहती थी कि मैं निःसंतान हूँ।'' पत्नी के विश्वास न करने पर उसने उसे समझाया, ''प्रिय! कई महिलाओं के गुप्त गर्भ रहता है, तुम्हें भी गुप्त गर्भ रहा है।'' पत्नी ने कहा–''बताइये कि यदि ये मुझ वन्ध्या का पुत्र है तो इसके कान में ये दिव्य कुण्डल कहाँ से आये?'' असहाय व निरुत्तर होकर विद्याधर ने सारी सत्य घटना बता दी। तत्पश्चात् उन्होंने पुत्र जन्म का बड़ा उत्सव मनाया। कानों के दिव्य कुण्डलों की आभा से उसका शरीर दमक रहा था, इसलिए उसका नाम भामण्डल रखा।

इधर सवेरा होने पर जब विदेहा ने अपने पुत्र को अपने पास नहीं पाया, तब वह हाय-हाय कर गगनमण्डल को कंपाने लगी। राजा जनक ने बहुत समझाया परंतु उसकी पीड़ा कम नहीं हुयी। राजा ने चारों ओर पुत्र की खोज करवायी, परंतु वह कहीं न मिला। लाचार होकर शोकातुर दम्पत्ति पुत्री पर ही संतोष करके उसका लाड़ प्यार से पालन करने लगे। पुत्री का नाम रखा 'सीता' (जानकी)। समय के साथ-साथ वह भी वृद्धि को प्राप्त होने लगी।

अर्धवर्वर नामक देश की राजधानी मयूरमाला थी, जिसमें मलेच्छ रहते थे। वहाँ का राजा आंतरंगतम था। एक बार वह अनेक आर्य देशों पर आक्रमण करता हुआ मिथिला आया। राजा जनक ने अपने मित्र अयोध्या के राजा दशरथ के पास सहायता

पाने के लिए दूत के द्वारा सूचना भिजवायी। दशरथ तत्काल प्रस्थान के लिए तैयार हुए, परंतु उनके ज्येष्ठ पुत्र राम ने कहा–''तात! मेरे रहते आपका रणक्षेत्र में जाना उचित नहीं है।'' पुत्र के युक्तियुक्त वचन सुनकर दशरथ ने पुत्र को जाने की अनुमति दी। युद्ध क्षेत्र में पहुँचकर राम ने अल्पकाल में ही क्रूर म्लेच्छों का आंतक समाप्त कर दिया। श्रीराम का अपार पराक्रम तथा रणकुशलता देखकर राजा जनक ने अपनी पुत्री सीता का विवाह उनके साथ करना तय कर दिया।

सीता का राम के साथ विवाह तय होने का समाचार सुनकर नारद जी सीता को देखने की इच्छा से उसके महल पहुँचे। उस समय सीता दर्पण में अपना मुख देख रही थी। दर्पण में नारद जी की भयंकर जटा का प्रतिबिम्ब देखकर वह डर गयी और उसके मुख से चीख निकल गयी। थोड़ी ही देर में उसकी चीख सुनकर सैनिक वहाँ आ गये। नारद जी घबराकर वहाँ से भागकर कैलाश पर्वत पर आ गये। उन्होंने यह अनादर सीता के द्वारा किया समझकर विचार किया–''पापिनी जनक सुता ने मेरा घोर अपमान किया है। मैं इसका बदला अवश्य लूँगा।'' ऐसा विचार कर नारद ने सीता का एक चित्रपट बनाया और उसे रथनूपुर ले जाकर एक सुंदर उद्यान में ऊँचे स्थान पर रख दिया। एक दिन भामण्डल वहाँ आया और चित्र को देखकर कामवासना से इतना व्याकुल हुआ कि लज्जा आदि सब भूल गया। उसकी हालत देखकर नारद जी उसके सामने आये। भामण्डल ने उनसे चित्रित सुंदरी के विषय में पूछा। नारद जी ने उसका सारा परिचय बता दिया।

चन्द्रगति विद्याधर ने पुत्र की स्थिति देखकर उसका विवाह सीता से कराने हेतु एक दूत को सब समझाकर मिथिलापुरी भेजा। वह दूत घोड़े का मायामयी रूप बनाकर जनक को पीठ पर रख चन्द्रगति के पास लाया। चंद्रगति ने अपना परिचय देकर जनक से सीता की माँग की। जनक ने कहा–''मैं आपकी यह इच्छा पूरी नहीं कर सकता, क्योंकि मैं राम के साथ सीता के विवाह का वचन राजा दशरथ को दे चुका हूँ।''

चंद्रगति ने कहा–''राम भूमिगोचरी सामान्य मनुष्य है। हम विद्याओं के मालिक श्रेष्ठ विद्याधर मनुष्य हैं। वे हमारी बराबरी नहीं कर सकते।'' जनक ने कहा–''भूमिगोचरी सामान्य हो सकते हैं? क्योंकि जगत उद्धारक तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलभद्र जैसे महापुरुष इनमें उत्पन्न होते हैं। इतना ही नहीं, भूमिगोचरी मनुष्य संयम के द्वारा इंद्र को भी चरणों में झुकवा लेता है, तब उनके सामने विद्याधर क्या हैं?'' चन्द्रगति ने कहा–''राजन! यदि आप उनकी इतनी प्रशंसा कर रहे हो तो मेरी एक शर्त सुनो। हमारे पास वज्रावर्त और सागरावर्त दो धनुष हैं, जिनकी रक्षा देव करते हैं। यदि राम इन धनुषों को चढ़ा दें तो सीता का विवाह उनके साथ हो, अन्यथा सीता का विवाह भामण्डल से होगा।'' जनक ने शर्त स्वीकार कर ली।

विद्याधर दोनों धनुषों को लेकर राजा जनक सहित मिथिला आये एवं नगर के बाह्य भाग में उन्होंने एक आयुधशाला निर्मित कर धनुषों को उसमें स्थापित किया।

धनुषों पर डोरी बांधने को स्वयंवर की शर्त का रूप दिया गया। सीता के सौंदर्य की चर्चा चारों ओर फैली हुयी थी, अतः राम-लक्ष्मण सहित अनेक राजा उपस्थित हुये। स्वयंवर शुरू हुआ। अनेक राजाओं ने प्रयास किया परंतु कोई सफल नहीं हुआ। अंत में राम के पास आते ही उनके पुण्योदय से धनुष से निकलने वाली अग्नि शांत हो गयी और बिना विशेष प्रयास के राम ने वज्रावर्त धनुष की डोरी चढ़ा दी। लक्ष्मण भी अपना पराक्रम दिखाने आगे बढ़े और उन्होंने दूसरे सागरावर्त धनुष को खींच लिया।

सीता का राम के साथ विवाह सम्पन्न हुआ। चन्द्रगति ने अपनी अठारह कन्याएं लक्ष्मण को देना स्वीकार किया।

वृहतकेतु मित्र ने भामण्डल को स्वयंवर का समाचार सुनाया। भामण्डल ने कहा–''अब मैं स्वयं जाकर युद्ध करूँगा और सीता को लेकर आऊँगा।'' उसने मंत्रियों सहित प्रस्थान किया और ग्राम, नदी, पर्वत आदि को पार करता हुआ विदग्ध नगर के समीप पहुँचा। नगर को देखते ही उसे जातिस्मरण हो गया और वह मूर्च्छित हो गिर पड़ा। उसे अचेतावस्था में देखकर मंत्रीगण तत्काल उसे रथनूपुर वापिस ले आये। यथायोग्य उपचार द्वारा ठीक होने पर वह स्वयं को धिक्कारते हुये कहने लगा–''हाय! मैं और सीता तो भाई बहन हैं। ऐसा निंद्य कार्य तो नीच कुल के मनुष्य भी नहीं करते।'' उसने अपना और सीता का सर्व वृतान्त सुनाया। सब सुनकर चंद्रगति को वैराग्य हुआ। तत्काल भामण्डल को राज्य सौंपकर उसने अयोध्या के समीप महेन्द्रोदय उद्यान में आचार्य श्री सर्वभूतिहित के समीप दीक्षा ग्रहण कर ली।

उसी समय महेन्द्रोदय उद्यान में भामण्डल के राज्याभिषेक का महोत्सव मनाया जाने लगा। बंधुजन उच्चस्वर में 'राजा जनक के पुत्र जयवंत हो' कहने लगे। यह ध्वनि सीता के कर्णगोचर हुयी और तत्काल उसका वाम नेत्र फड़कने लगा। वह विचारने लगी–''राजा जनक तो मेरे पिता का नाम है। मेरे भ्राता का तो जन्म लेते ही अपहरण हो गया था, किंतु जयकार ध्वनि तो उसी की हो रही है, कदाचित वही न हो।'' ऐसा विचारकर स्नेहवश उसके आँसू बहने लगे। यह देखकर श्रीराम ने उसे सांत्वना दी और कहा–''प्रिय! यदि वह तुम्हारा ही भाई है तो प्रातःकाल होते ही पता चल जायेगा। तुम व्यर्थ शोक मत करो।''

प्रभात होते ही राजा दशरथ को सीता के भ्राता भामण्डल के विषय में समाचार प्राप्त हुआ। सीता अपने भ्राता के जीवित एवं सकुशल होने का वृतान्त सुनकर अत्यधिक हर्षित हुयी। राजा दशरथ सपरिवार मुनिराज के दर्शन हेतु पहुँचे और नमस्कार कर मुनि का उपदेश सुना। तत्पश्चात् मुनिराज से नृपति चंद्रगति के वैराग्य

का कारण पूछा। सीता ने भी अपने भ्राता भामण्डल के चरित्र को सुनने की अभिलाषा प्रगट की। मुनिराज ने दीक्षा का कारण बताते हुये कहा–

चक्रपुर नगर में चक्रध्वज राजा था। उसके चित्तोत्सवा नाम की कन्या थी। राजपुरोहित का पुत्र पिंगल और चित्तोत्सवा एक ही गुरु के पास पढ़ते थे। आपस में दोनों को प्रेम हो गया, जिससे विद्या प्राप्त नहीं कर सके। पिंगल चित्तोत्सवा को भगाकर विदग्ध नगर में ले आया और वहाँ झोपड़ी बनाकर रहने लगा। पिंगल मजदूरी करके आजीविका की व्यवस्था करता। वे दोनों शांति से जीवन बिता रहे थे।

एक दिन उस नगर के राजकुमार कुण्डलमंडित की नजर झोंपड़ी के बाहर काम करती हुयी चित्तोत्सवा पर पड़ी और वह काम से पीड़ित हो गया। उसने एक चतुर दासी के द्वारा चित्तोत्सवा को राजमहल में बुलवा लिया।

इधर जब पिंगल ने घर आकर चित्तोत्सवा को नहीं देखा तो मदद के लिए राजकुमार से प्रार्थना की। राजकुमार का इशारा पाकर एक धूर्त मंत्री ने कहा–''मैंने तेरी स्त्री को पोदनपुर के रास्ते में आर्यिकाओं के समूह में देखा था।'' पिंगल ने चित्तोत्सवा को सभी जगह ढूंढा, असफल होने पर पुनः राजकुमार के पास गया। कुण्डलमंडित की आज्ञा से लोगों ने उसे पीटते हुये दूर भगा दिया। पिंगल मन में निराशा लिए इधर-उधर भटकता रहा।

एक दिन पुण्योदय से पिंगल को आर्यगुप्त मुनि के दर्शन हुये और उसने उन्हीं के पास दीक्षा ग्रहण कर ली। दीक्षा के बाद उसने कठोर तप किया, परंतु मन के किसी कोने में चित्तोत्सवा बैठी ही रही, इसलिये कर्मों की विशेष निर्जरा नहीं कर पाया और मृत्यु के पश्चात् कुछ पुण्य बंध से महाकाल नामक असुर हुआ।

एक बार कुण्डलमंडित ने मुनि से धर्म का स्वरूप सुनकर अणुव्रत धारण किये। पूर्व पाप कर्मोदय से उसके शरीर में भयंकर रोग हो गया। अत्यंत पीड़ा होने पर भी उसने परिणामों की शांति नहीं छोड़ी और मरकर देव पर्याय के बाद राजा जनक की पत्नी विदेहा के गर्भ में पुत्र के रूप में आया।

चित्तोत्सवा धर्म में मन लगाकर मरकर स्वर्ग गयी और वहाँ से निकलकर विदेहा के गर्भ में कुण्डलमंडित के जीव के साथ पुत्री के रूप में आयी।

पिंगल के जीव महाकाल असुर ने पूर्व बैर के कारण विदेहा के पुत्र भामण्डल का जन्म लेते ही अपहरण कर लिया। भाव परिवर्तित होने पर उसने पुत्र को कुण्डल व विद्या के साथ छोड़ दिया। पुत्र भामण्डल का पालन चंद्रगति विद्याधर के यहाँ हुआ।

फिर मुनिराज ने भामण्डल का अब तक का सर्व वृतान्त बताया। इसके उपरांत दोनों भाई-बहिन गले मिले। राम आदि ने भी भामण्डल का अभिनंदन किया। राजा

दशरथ ने भामण्डल का समाचार राजा जनक के पास भेजा। समाचार प्राप्त कर राजा जनक तत्क्षण विदेहा के साथ अयोध्या आये। राजा दशरथ ने भामण्डल के मिलने की खुशी में अयोध्या में महा उत्सव किया। कुछ दिनों बाद भामण्डल सबसे आज्ञा लेकर अपने देश चला गया।

कुछ समय बाद राजा दशरथ मुनि दर्शन को गये और उनसे उपदेश व अपने पूर्व भव सुनकर संसार से विरक्त हो गये। उन्होंने दीक्षा लेने का भाव प्रगट किया। बंधुजनों ने कहा–''कुछ समय और रुक जाइये।'' तब उन्होंने कहा–''मित्रों! अब आप मोह से प्रेरित होकर निर्वाणधाम हेतु मेरे प्रस्थान में बाधक न बनो। शीघ्र ही श्रीराम का राज्याभिषेक करो, ताकि मैं शीघ्र ही तपोवन में प्रवेश कर सकूँ।''

धर्मोपदेश सुनकर भरत (श्री राम के लघु भ्राता) को भी वैराग्य हुआ। वह भी पिता को दीक्षा धारण करने में तत्पर देख दीक्षा के लिए उद्यत हुआ। भरत की माँ कैकयी पुत्र की मुखाकृति से उसके भावों को समझ गयी और विचारने लगी, ''पति और पुत्र दोनों ही दीक्षा लेने को तत्पर हैं। उनके अभाव में मैं एकाकी कैसे जीवन व्यतीत करूँगी।'' ऐसा सोचकर वह राजा दशरथ के निकट गयी और विनम्रता से कहा–''मैंने आपके पास अपना एक वरदान धरोहर रख छोड़ा था, अब कृपा कर वह मुझे प्रदान कीजिए।''

दशरथ ने कहा–''मैं संयम अवश्य धारण करूँगा, इसके अलावा कुछ भी माँग लो।'' कैकयी ने कहा–''मेरे पुत्र भरत को राज्य प्रदान कीजिए।'' दशरथ ने कैकयी को स्वीकृति प्रदान कर राम को बुलाया और उनसे कहा–''पुत्र! इस समय मैं धर्मसंकट में हूँ। एक समय कैकयी ने विकट संग्राम में मेरे रथ का संचालन किया था, जिसके कारण मुझे विजय प्राप्त हुयी थी। तब मैंने उससे एक वर माँगने को कहा था। उसने तत्काल वर न लेकर आवश्यकता पड़ने पर लेने के लिए वचनबद्ध कर लिया था। आज उसने उस वरदान में अपने पुत्र भरत के लिए राज्य का माँग की है, क्योंकि भरत संसार से विरक्त हो रहा है। यदि उसे राज्य न सौंपू तो वह अवश्य ही मेरे साथ दीक्षा ले लेगा और इस वियोग से कैकयी प्राण त्याग देगी। दूसरी तरफ ज्येष्ठ पुत्र के स्थान पर कनिष्ठ पुत्र को राज्य सौंपना नीति विरुद्ध है। अतः दोनों ही मार्ग दुविधाग्रस्त हैं।''

यह सुनकर राम ने करवद्ध विनती करते हुये कहा–''हे तात! आप अपने वचन का पालन अवश्य कीजिये।'' राम ने विचार किया कि मेरे यहाँ रहते हुये प्रजा भरत की आज्ञा का पालन नहीं करेगी। इसलिए उन्होंने देश की सीमा से दूर जाने का निर्णय लिया।

भरत ने राज्य लेने से मना कर दिया। राम ने उन्हें समझाया–''हे अनुज! तुम्हें पिता के वचनों का पालन करना चाहिए। ऐसा न करने पर पिता की अपकीर्ति होगी, अत: मैं वन को जाता हूँ और तुम निश्चिंत होकर राज्य संभालो। समय आने पर दीक्षा ले लेना।'' राम के शब्दों से भरत निरुत्तर हो गये और बेमन से उन्होंने राज्य स्वीकार किया।

राम के राज्य से दूर जाने का समाचार आग की तरह सर्वत्र फैल गया। राम ने अपनी माता कौशल्या के समीप जाकर प्रणाम किया और जाने की आज्ञा माँगी। माता पुत्र को हृदय से लगाकर क्रन्दन करने लगी कि, ''तुम्हीं थे जो मुझे धैर्य बंधा सकते थे।'' राम ने कहा–''माता! पिता के वचनों का पालन करना हमारा कर्त्तव्य है। मेरे यहाँ रहते भरत की यशकीर्ति की वृद्धि नहीं हो पायेगी। मैं अपने रहने का स्थान निश्चित करके आपको लेने अवश्य आऊँगा, यह मेरी शपथ है।''

सीता भी वन गमन को तैयार हुयी। लक्ष्मण थोड़े क्रोधित थे कि पिता ने स्त्री के कहने पर ऐसा अन्याय किया है, परंतु पिता को संक्लेश न हो इस कारण कुछ न कहकर राम के साथ वन गमन को तैयार हुये।

राम, लक्ष्मण और सीता ने माताओं को प्रणाम कर दक्षिण दिशा की ओर गमन किया। सारी अयोध्या में शोक छा गया। हजारों नर-नारी उनके साथ चलने लगे। राम मना करते थे, परंतु लोग न मानते। बड़ी कठिनाई से बहुत दूर जाकर राम ने उन्हें समझाकर विदा किया। जंगल, नदी आदि पार करते हुये उन्हें छह दिन बीत गये। तब भरत जिनका मन असंतुष्ट था, माता कैकयी के साथ राम के समीप पहुँचे और वापस चलने के लिए प्रार्थना करने लगे। कैकयी ने राम से कहा–''पुत्र! तुम्हारी अनुपस्थिती में अयोध्या अरण्य सदृश दिखाई दे रही है। तत्काल नगर लौटकर सुखपूर्वक शासन करो। बुद्धिहीन होने के कारण मुझसे यह गर्हित अपराध हो गया, तुम मेरा अपराध क्षमा करो।''

श्रीराम ने कैकयी से कहा–''माता! आपका कोई अपराध नहीं है। पूज्य पिताजी ने जो आज्ञा दी है, उसका मुझे एवं आपको पूर्णरूपेण पालन करना ही योग्य है।'' राम ने अत्यंत मधुर वचनों से समझा बुझाकर भरत एवं कैकयी को धैर्य बंधाया और अयोध्या लौटने हेतु सहमत कराया।

पतिव्रता जानकी असहाय कष्टों, कंकरीले रास्तों व कड़ी धूप आदि की वेदना को प्रसन्नता पूर्वक सहती हुयी, राम-लक्ष्मण सहित नासिक के समीप दण्डक वन में पहुँची। वहाँ की जलवायु अति उत्तम थी, वहीं ठहर कर जानकी ने तरह-तरह के फलों का स्वादिष्ट भोजन तैयार किया। उसी समय भाग्यवश दो चारणऋद्धि के धारी मुनि उसी वन में पहुँचे। राम और सीता ने भक्तिपूर्वक उन मुनियों को आहार कराया।

इसी समय एक गिद्ध पक्षी जिसे मुनियों के दर्शन करने से अपने पूर्वभव का स्मरण हो आया, वृक्ष से नीचे आया और मुनियों के चरणोदक के स्पर्श से उसकी काया सुवर्ण तथा रत्नों के समतुल्य दैदीप्यमान हो गयी। वह प्रसन्न होकर मुनियों के चरणों के समीप नृत्य करने लगा, पश्चात् शांत भाव से बैठ गया।

श्रीराम ने मुनिराज से एक मांसाहारी पक्षी में इस प्रकार के बदलाव का कारण पूछा। मुनि ने उसके पूर्वभव का हाल सुनाया और उसको श्रावक के व्रत ग्रहण कराये। उसकी रक्षा हेतु उसे राम-सीता के पास छोड़कर मुनि आकाश मार्ग से बिहार कर गये। वे उस पक्षी को जटायु कहकर पुकारने लगे और उसका पालन करने लगे।

एक दिन लक्ष्मण वन में इधर-उधर घूम रहा था। अकस्मात् उसकी दृष्टि सूर्यहास नामक प्रकाशमान खड्ग पर पड़ी, जिसे लंकाधिपति रावण का भानजा शम्बूक एक बांस के बीड़े में बारह साल से सिद्ध कर रहा था। लक्ष्मण ने उस खड्ग को ले लिया और परीक्षार्थ उसी बीड़े पर चला दिया, जिससे खड्ग के अभिलाषी शम्बूक का सिर भी बांस के कटने के साथ कट गया। लक्ष्मण खड्ग को लेकर अपने स्थान पर वापस आ गया।

इधर शम्बूक की माता चंद्रनखा (सूपर्नखा) जब भोजन लेकर वहाँ आयी तो अपने पुत्र का सिर कटा देखकर बेहोश हो गयी, सचेत होने पर हाहाकार करती हुयी घातक की खोज करने लगी। वन में इधर-उधर भटकते हुये अचानक उसकी दृष्टि राम-लक्ष्मण पर पड़ी। उन्हें देखते ही वह सारा शोक भूल गयी और कामबाण से घायल हो गयी। अवसर पाकर उसने दोनों भाइयों से अपनी मनोकामना पूर्ण करने की प्रार्थना की। परंतु उन दोनों ने मौन धारण कर लिया, कुछ उत्तर नहीं दिया। चंद्रनखा उनका भाव समझ गयी, रोती हुयी अपने पति खरदूषण के पास गयी और कहने लगी–''नाथ! आपके राज्य में एक दुष्ट ने मेरे पुत्र को मारकर खड्ग ले लिया और उस पापी ने मुझे बलात् पकड़ कर मेरा शील भंग करना चाहा, परंतु पूर्व पुण्योदय से मैं यहाँ भाग आयी।''

खरदूषण की आँखें क्रोध से लाल हो गयीं। उसने तत्काल ही रावण के पास संदेश भेजा और स्वयं बहुत बड़ी सेना लेकर राम-लक्ष्मण की तरफ बढ़ा। विशाल सेना देखकर सीता घबरा गयी। राम ने उसे धैर्य बंधाया और धनुष पर बाण चढ़ाया। यह देख लक्ष्मण ने कहा–''भ्राता श्री! आप यहीं ठहरकर भावज की रक्षा कीजिये। मैं शत्रु का सामना करने जाता हूँ। यदि आवश्यकता हुयी तो मैं आपको सिंहनाद करके बुला लूँगा।''

राम सीता के पास ठहरे और लक्ष्मण रणभूमि में शूरवीरता से शत्रु का सामना करने लगा। थोड़ी ही देर में उसने एकाकी शत्रु को विचलित कर दिया।

इधर खरदूषण का संदेश पाकर रावण ने तत्काल ही पुष्पक विमान में आरुढ़ होकर दण्डक वन की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में सीता के रूप लावण्य को देखकर वह उस पर मुग्ध हो गया। वह विचारने लगा कि, इस नारी रत्न के अभाव में उसका विपुल वैभव एवं जीवन व्यर्थ है। उसे पाप-पुण्य का विचार नहीं रहा, युद्ध में जाने का भी ख्याल नहीं रहा, वह उसके प्रेम में सही गलत का विचार छोड़, उसी के हरण करने का उपाय सोचने लगा। परस्त्री में आसक्ति के कारण रावण जैसे पंडित की भी बुद्धि खो गयी। उसने अवलोकनी विद्या के प्रभाव से तत्काल ही राम, लक्ष्मण तथा सीता का समस्त परिचय जान लिया और यह भी जान लिया कि संकट पड़ने पर लक्ष्मण सिंहनाद करने को कहकर गया है। रावण ने लक्ष्मण के समान सिंहनाद किया, जिसे सुनकर रामचंद्र जी व्याकुल हो गये। उन्होंने सोचा कि अवश्य ही लक्ष्मण संकट में है, इसलिये मेरे आह्वानन हेतु उसने सिंहनाद किया है। राम सीता की रक्षा में जटायु को छोड़कर युद्ध स्थल में जा पहुँचे।

रामचंद्र के जाते ही रावण सीता के समीप आया और बलपूर्वक पुष्पक विमान में उसे बिठाकर ले जाने लगा। यह देख स्वामीभक्त जटायु ने उसे चोंच मार-मार कर बहुत रोका, उसका वक्षस्थल रक्त रंजित कर दिया। रावण ने जटायु को मार्ग का बाधक समझ अपने हाथ के प्रहार से उसे मरणासन्न कर दिया। बेचारा कें कें करता हुआ जमीन पर गिर गया।

सीता स्वयं को अपहृयत हुआ जानकर विलाप करने लगी–''हाय राम! हा लक्ष्मण! हा भ्राता भामण्डल! रक्षा करो।'' उसकी पुकार रत्नजटी नामक विद्याधर ने सुनी, क्रोधित हो उसने रावण का विरोध किया। रावण ने उसकी आकाशगामिनी विद्या का अपहरण कर लिया, जिससे वह विद्यारहित हो नीचे गिर गया।

रावण सीता को लेकर लंका पहुँचा और प्रमद उद्यान में उसे ठहरा दिया। वह महल में आया और सीता को प्रसन्न करने के उपाय का विचार करने लगा। मंदोदरी ने पति को चिंतामग्न देखकर उसकी चिंता का कारण पूछा। रावण ने उसे सीता संबंधी वृतान्त सुनाया और कहा–''यदि तुम मेरा जीवन चाहती हो तो सीता को मुझ पर मोहित करो, अन्यथा मैं अभी प्राण देता हूँ।'' मंदोदरी ने कहा–''नाथ! यह सीता का दुर्भाग्य है, जो आप जैसे शूरवीर को स्वीकार न करे। यदि समझाने से न माने तो आप बल को उपयोग में लाइये और अपनी कामना पूर्ण कीजिये।'' रावण ने कहा–''प्रिय! मैंने अनन्तवीर्य केवली के पादमूल में प्रतिज्ञा की थी कि जब तक कोई स्त्री मुझे नहीं चाहेगी, तब तक उससे जबरदस्ती कदापि नहीं करूँगा। इसलिये तुम उसे प्रसन्न करने का उपाय करो।''

यह सुनकर मंदोदरी सीता के पास गयी और कहने लगी–''हे सुंदरी! वह स्त्री धन्य है, जिसे रावण चाहता है। मुझे आश्चर्य है कि तुम विद्याधरों के राजा रावण को स्वीकार न कर राम जैसे भिखारी के लिए रुदन कर रही हो।''

सीता ने कहा–''हाय! अभागों को कोई शरण नहीं है। मुझे आश्चर्य और शोक इस बात का हो रहा है कि तुम स्वयं एक पतिव्रता स्त्री होकर ऐसे घृणित शब्द कह रही हो। क्या कोई पतिव्रता ऐसा निंद्य कर्म कर सकती है? मैं प्रतिज्ञा कर चुकी हूँ कि चाहे प्राण निकल जायें परंतु मैं पर पुरुष की ओर देखूँगी भी नहीं और जब तक राम-लक्ष्मण की कुशलता का समाचार न सुन लूँ तब तक अन्न जल ग्रहण नहीं करूँगी।''

उसी समय रावण वहाँ आया और बोला–''देवी! मैं कब तक तुम्हारी प्रतिक्षा करूँगा। मुझ पर प्रसन्न होकर मेरे विपुल वैभव की स्वामिनी बनो। याद रखो, यदि नहीं मानी तो तुम्हारे लिये अच्छा नहीं होगा।'' सीता ने कहा–''हे मूढ़! कुशीलसेवी पुरुष का विपुल वैभव भी विष्टा के समान निन्द्य है। तू परनारी की अभिलाषा रखता है, सो तेरा जीवन व्यर्थ है।''

सीता के तिरस्कार पूर्ण वचन सुनकर रावण ने क्रोध में आकर उसे अपनी माया से भयभीत करने की चेष्टा की। परंतु सीता किसी भी प्रकार से उसकी शरणागत न हुयी। हताश होकर रावण महल लौट आया।

उधर जब राम सिंहनाद सुनकर लक्ष्मण के समीप पहुँचे, तब राम को आया देख लक्ष्मण ने पूछा–''भ्राता! आप भावज को एकाकी छोड़ यहाँ क्यों आये?'' राम ने कहा–''अनुज! मैं तो तुम्हारा सिंहनाद सुनकर ही यहाँ आया हूँ।'' यह सुनकर लक्ष्मण को सीता जी के प्रति अमंगल होने की आशंका उत्पन्न हुयी। उन्होंने तत्काल राम को वापस लौटाया।

राम ने जब वापस लौटकर सीता को कुटी में न पाया तो वे मूर्च्छित हो धरती पर गिर पड़े। सचेत होने पर वे हाय सीता! हाय जानकी! इत्यादि प्रकार से विलाप करने लगे, पागलों की भांति वृक्ष आदि से सीता के बारे में पूछते हुये जंगल में इधर-उधर उसे खोजने लगे। कुछ दूरी पर उन्हें जटायु मरणासन्न अवस्था में दिखाई दिया। राम ने उसे णमोकार मंत्र सुनाया। मरकर वह स्वर्ग गया। सीता के वियोग में राम अपना जीवन निरर्थक समझने लगे, खाना-पीना सब भूल गये। हाय जानकी! हाय जानकी! के सिवाय और कुछ उनके मुख से न निकलता था। राम के दु:ख का वर्णन शब्दों में नहीं किया जा सकता, उसे तो वे ही जानते थे।

खरदूषण को मारकर लक्ष्मण राम को ढूंढते हुये उनके पास आये। राम को शोकाग्रस्त देख लक्ष्मण ने उन्हें धैर्य बंधाया और कहा–''मैं शीघ्र ही अन्वेषण कर भावज को सकुशल आपके सामने लाऊँगा।''

सीता को खोजते-खोजते कई दिनों के बाद राम-लक्ष्मण का मिलाप व मित्रता किष्किन्धापुर नरेश सुग्रीव से हुयी। सीता की खोज करता हुआ सुग्रीव आकाशमार्ग से जा रहा था। उसे कम्बु पर्वत पर रत्नजटी विद्याधर दिखा, जिसने सीता अपहरण के समय रावण को रोका था। सुग्रीव ने उससे विद्यारहित होने का कारण पूछा। रत्नजटी ने सीता के अपहरण संबंधी समस्त घटना बतायी।

जिस शत्रु का पता लगाना ही कठिन था, उसके विषय में जानकर उत्सुकता से भरे राम ने विद्याधरों से पूछा–''लंका यहाँ से कितनी दूर है?'' तब एक विद्याधर ने रावण के वैभव, बल और पराक्रम के विषय में बताते हुये कहा कि ''रावण साधारण पुरुष नहीं है। हम सब उसके अधीन हैं। हम हृदय से आपके दास हैं, पर बाहर से रावण के विरूद्ध हमारा साहस नहीं होता।''

यह सुनकर लक्ष्मण ने कहा–''यदि रावण इतना ही शूरवीर है तो वह स्त्रीचोर क्यों हुआ? वह तो कायर है। वह मेरे सम्मुख खड़ा भी नहीं रह सकता।'' इस प्रकार बहुत कुछ वाद-विवाद के बाद यह निश्चित किया गया कि रावण का अनुज विभीषण धर्मात्मा एवं नीतिज्ञ है, वह अपने अग्रज को समझा सकता है। इसीलिये किसी नीतिकुशल एवं रावण के कृपापात्र पुरुष को विभीषण के समीप भेजना चाहिये। इसके लिए पवनंजय सुत हनुमान सब प्रकार से समर्थ हैं। अतः उन्हें लंका में दूत रूप भेजना चाहिये।

हनुमान सहर्ष इस कार्य के लिए तैयार हुये। राम ने अपनी अंगूठी हनुमान को देते हुये कहा–''मेरी प्रिया को पहिचानस्वरूप मेरी ये अंगूठी देना तथा मुझे विश्वास दिलाने वाला उसका चूड़ामणि साथ ले आना।''

हनुमान ने लंका के लिए प्रस्थान किया और शीघ्र ही वहाँ पहुँचकर विभीषण से मिलकर सीता का हाल पूछा। विभीषण ने कहा–''क्या बताऊँ? ग्यारह दिन हो गये, उस बेचारी ने अन्न-जल का स्पर्श तक नहीं किया।'' हनुमान ने कहा–''आप रावण को समझाकर क्यों उस पतिव्रता को श्रीराम के पास वापस नहीं भिजवा देते हो?'' विभीषण ने कहा–''मैं क्या करूँ? मैंने उन्हें बहुत समझाया, परन्तु उन्होंने एक न मानी और साफ कह दिया कि जो कोई भी मुझसे इस विषय में बात करेगा, मैं उससे शत्रुवत् व्यवहार करूँगा।''

वार्तालाप के बाद हनुमान प्रमद उद्यान में पहुँचा। दूर से ही सीता को शोक संतप्त और कृशवदन देखकर हनुमान का हृदय भर आया। मंद गति से आगे बढ़कर गुप्तरूप से हनुमान ने श्रीराम की अंगूठी सीता के सम्मुख डाल दी। मुद्रिका देखते ही सीता का मुखकमल हर्ष से प्रफुल्लित हो गया। पास में ही बैठी किसी स्त्री ने इसकी सूचना रावण को दी। अपना मनोरथ सिद्ध समझ कर रावण ने मंदोदरी को अंतःपुर सहित सीता के पास भेजा।

मंदोदरी ने कहा–''हे बाले! आज तू प्रसन्नचित्त है, अब तू लोक के स्वामी को अंगीकार कर।'' सीता बोली–''हे खेचरी! आज मुझे अपने पति का कुशल समाचार मिला है, इसलिए मुझे हर्ष हुआ है।'' फिर जानकी कहने लगी–''हे भाई! जो भव्य मेरे प्राणनाथ की मुद्रिका लाया हो, वह प्रकट होकर साक्षात दर्शन दे।'' तब हनुमान ने सामने आकर सीता को प्रणाम किया और अपना परिचय दिया। पश्चात् राम का संदेशा सुनाकर विनयपूर्वक निवेदन किया–''हे सती! श्रीराम स्वर्ग के समान रमणीय स्थान में विराजमान हैं, परंतु आपके बिना भोगोपभोगों से उदासीन होकर मात्र आपका ही ध्यान कर रहे हैं अर्थात् केवल आपके लिए ही प्राण धारण किये हुए हैं।''

आँखों में आँसू भर कर सीता कहने लगी, ''हे भाई! मेरे मन में अनेक विकल्प उठ रहे हैं। बताओ, तुम्हें मेरे प्राणनाथ कहाँ, कैसे मिले?'' हुनमान ने सीता को राम के द्वारा बतायी गुप्त बातें और राम-लक्ष्मण का अब तक का समस्त वृतांत कह सुनाया। जिसे सुनकर सीता को पूर्ण विश्वास हो गया कि यह रामचंद्र जी का ही दूत है।

यह देख मंदोदरी ने हनुमान से कहा–''बड़े आश्चर्य की बात है कि तू महाराज रावण का संबंधी होने पर भी भूमिगोचरियों का दूत बनकर आया है।'' हनुमान ने कहा–''आश्चर्य करती हो, पर यह तो बताओ कि राजा मय की पुत्री और रावण की पटरानी होकर भी तुम यहाँ दूती बनकर नहीं आयी हो? तुम तो बुद्धिमती हो, पर न जाने क्यों तुम्हारी मति मारी गयी है कि अपने हाथों से ही अपने लिए गड्ढा खोद रही हो।''

हनुमान की बात सुनकर मंदोदरी को क्रोध आ गया, कहने लगी–''रे निर्लज्ज! यदि तेरा दूत बनकर यहाँ आना लंकेश्वर को ज्ञात हुआ तो तेरी कुशल नहीं।'' मंदोदरी द्वारा हनुमान का अपमान देखकर सीता ने कहा–''अरी मंदबुद्धि मंदोदरी! मेरे पति राम अपने भाई सहित शीघ्र ही यहाँ आयेंगे और तेरे पति को मारकर तुझे विधवा बना देंगे।'

इन शब्दों को सुनकर रावण की सारी पत्नियाँ सीता को मारने दौड़ीं, परंतु हनुमान ने बीच में आकर उन्हें रोक दिया। तब वे क्रोधावेश में रावण के पास गयीं।

इधर हनुमान ने सीता से आहार के लिए प्रार्थना की। सीता ने अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण हुई मानकर आहार ग्रहण किया। तदुपरांत हनुमान ने कहा–''हे देवी! आप मेरे कंधे पर बैठ जाओ, मैं आपको श्रीराम के पास ले चलता हूँ।'' सीता ने कहा–''हे बंधु! पति की आज्ञा के बिना मेरा यहाँ से प्रस्थान करना योग्य नहीं है।'' सीता ने अपना चूड़ामणि हनुमान को दिया और कुछ एकांत का वार्तालाप बताकर कहा–''इसे प्राणनाथ को देना और मेरा यह निवेदन उनसे अवश्य कहना।''

मंदोदरी ने रावण से जाकर हनुमान के आने का वृतांत कहा। रावण ने अपने सैनिकों को हनुमान को जीवित पकड़ लाने की आज्ञा दी। आदेशानुसार अनेक क्रूर अनुचर हनुमान को पकड़ने के लिए दौड़ पड़े। हनुमान ने शस्त्र के अभाव में पेड़ उखाड़ कर उन पर फेंके। इसी बीच रावण के पुत्र इन्द्रजीत और मेघवाहन आये और हनुमान को नागपाश से बांधकर रावण के पास ले गये। रावण ने उसे सांकलों से बंधवा दिया और कहा–''कृतघ्नी! जिस स्वामी की पृथ्वी से तूने प्रभुता पायी, उनके प्रतिकूल होकर भूमिगोचरियों का दूत बना है। तुझे अवश्य मार डालना चाहिए।''

यह सुनकर हनुमान ने कहा–''कौन जाने किसकी मृत्यु निकट आयी है? तेरे वंश में बड़े-बड़े मर्यादा के पालक राजा हुये, परंतु न जाने तुझ जैसा कुलनाशक कहाँ से हुआ है?'' ऐसे वचन कहकर फुर्ती से अपने बंधन तोड़ वह उड़ गया और शीघ्र ही श्रीराम के पास पहुँचकर सीता का हाल सुनाया।

सर्व सम्मति से निश्चय हुआ कि लंका की ओर शीघ्र प्रस्थान करना चाहिए। भामण्डल को बुलवाया और सुग्रीवादि शूरवीर योद्धा राम-लक्ष्मण को साथ लेकर मानियों का मान गलित करते हुये लंका जा पहुँचे।

उनका आना जानकर विभीषण ने रावण को खूब समझाया और सीता को वापिस देने के लिए शक्ति भर कहा, परंतु उसने एक न सुनी और क्रोधित होकर लंका से निकल जाने का आदेश विभीषण को दे दिया। विभीषण उसी समय अपनी सेना सहित राम से आ मिले।

रणभेरी बजते ही युद्ध शुरू हुआ। दोनों पक्ष के सुभट अपना बल दिखाने लगे। राम ने कुंभकर्ण को नागपाश में बांध लिया। इन्द्रजीत ने लक्ष्मण को पकड़ लिया। रावण ने अपना शक्तिबाण लक्ष्मण पर चलाया, जिससे लक्ष्मण मूर्च्छा खाकर गिर पड़ा। लक्ष्मण के गिरते ही राम का साहस टूट गया, सारी सेना में कोलाहल मच गया, सभी अश्रुपात करने लगे और राम कहने लगे–''उठो अनुज, मैं एक पल भी तुम्हारा वियोग नहीं सह सकता।'' इत्यादि प्रकार से विलाप करने लगे।

कुछ देर पश्चात् पुण्योदय से एक चंद्रप्रतिम नामक व्यक्ति ने राम के शिविर में आकर कहा–''द्रोणमेघ राजा की पुत्री विशल्या के स्पर्शित जल से लक्ष्मण को लगी शक्ति निकल जाएगी, इसलिए शीघ्र वह ले आइये। हनुमान तत्काल गये ओर वहाँ विशल्या को ही ले आये। वह ज्योंही लक्ष्मण के समीप पहुँची, वैसे ही शक्ति लक्ष्मण के शरीर से निकल भागी।''

लक्ष्मण के स्वस्थ्य होने का समाचार रावण को भी मालूम हुआ। तब कोई उपाय न देखकर रावण ने बहुरुपिणी विद्या सिद्ध की। युद्ध में जाने से पहले वह सीता के पास गया और बोला–''अब तुम शीघ्र ही राम-लक्ष्मण की मृत्यु का समाचार सुनोगी, परंतु यदि अब भी मुझे स्वीकार करती हो तो मैं युद्ध रुकवाकर उन्हें जीवित रहने दूँगा।''

अत्यंत गद्‌गद् वाणी में सीता ने कहा–''हे दशानन! यदि संग्राम में तेरे तथा मेरे प्राणवल्लभ में परस्पर शस्त्र प्रहार हो, तो मेरे प्रीतम का वध करने से पूर्व तुम उनसे कहना कि तुम्हारी प्यारी सीता ने कहा है कि अब तक तुम्हारे कारण प्राण टिके थे, पर अब तुम्हारे दर्शनों की पिपासा और वियोग के दु:ख को अपने हृदय में लिए हुये वह भी प्राण न्योछावर कर देगी।'' इतना कहकर वह मूर्च्छित हो गयी।

सीता की यह अवस्था देखकर दशानन विचार करने लगा–''हाय! मैंने महानीच होकर निष्कारण अपने कुल को कलंकित किया। भाई बंधुओं को खो दिया, सहस्रों वीरों का घात करा दिया, तो भी इस महासती ने मेरी ओर नहीं देखा। परंतु अब मैं क्या करूँ? यदि सीता को वापस भेजता हूँ तो सर्वसाधारण मुझे शक्तिहीन कहेंगे, और यदि युद्ध करता हूँ तो निष्कारण महा हिंसा होगी।'' इस प्रकार संकल्प-विकल्प करके उसने अंतत: निश्चय किया कि, वह युद्ध में राम-लक्ष्मण को जीवित बंदी बनाकर अपार सम्पत्ति के साथ सीता को उन्हें सौंप देगा।

तत्पश्चात् मंदोदरी से अंतिम भेंट कर रावण ने रणभूमि में प्रवेश किया और शूरवीरता से युद्ध किया, परंतु पुण्य समाप्त होने पर सब प्रयत्न बेकार हो जाते हैं। नारायण लक्ष्मण के द्वारा चक्र आघात से वह प्राणरहित होकर भूमि पर गिर पड़ा।

रावण की मृत्यु से विभीषण को बहुत दु:ख हुआ। चारों ओर से रानियों के विलाप करने की आवाजें आने लगीं। श्रीराम ने विभीषण को धैर्य बंधाया और रानियों को संसार की असारता बतलाकर शांत किया। कुंभकर्ण आदि ने भोग विलासों को त्यागकर दीक्षा ग्रहण कर ली।

श्रीराम शीघ्र ही सीता के पास पहुँचे। एक-दूसरे को देखते ही दोनों के नेत्रों से अश्रुजल बहने लगा। सीता कल्पवृक्ष की बेल की तरह राम से लिपट गयी और कहने लगी–''हे नाथ! प्राणधार! धन्य है आपको, आपने दर्शन देकर मुझे जीवनदान दिया। मेरे कारण आपको कितने कष्ट हुये? कहाँ अयोध्या और कहाँ यह समुद्र पार लंका।''

सीता तथा श्रीराम का पुनर्मिलन देखकर देवों ने आकाश से पुष्प वृष्टि की और आकाश ध्वनि की–''महासती सीता धन्य है, कष्टों को सहकर भी अखण्ड शील का पालन किया, स्वप्न में भी अन्य पुरुष की कामना नहीं की।''

तदुपरांत दोनों जिनमंदिर में पहुँचे ओर भक्ति भाव से दर्शन पूजन किया। तदनंतर विभीषण को राज्य देकर उन्होंने अयोध्या के लिए प्रस्थान किया।

उन सब के अयोध्या पहुँचने पर बड़ा आनंद मनाया गया। सभी मातायें हर्ष से फूली न समायीं। महाराज भरत ने प्रतिज्ञानुसार दीक्षा ले ली और श्रीराम राजगद्‌दी पर बैठकर निष्कंटक राज्य करने लगे।

कुछ दिन बीतने पर सीता के गर्भचिन्ह प्रगट हुये। दान-पुण्य करके वह अपना समय व्यतीत करने लगी। एक दिन राम संपूर्ण राजपरिवार के साथ वसन्तोत्सव मनाने महेन्द्र उद्यान में गये।

महेन्द्र उद्यान में राम के पास अनेक लोग पहुँचे। राम ने उनसे आने का कारण पूछा। विजय नामक मुखिया ने हाथ जोड़कर निवेदन किया–''हे नाथ! कुछ व्यक्ति स्वभाव से ही कुटील होते हैं। समाज के अग्रणी द्वारा कोई भी दृष्टांत स्थापित होने पर उसके औचित्य-अनौचित्य पर विचार किये बिना ही निशंक होकर वे अनुचित कार्य में प्रवृत्त हो जाते हैं। लोग व्यावहारिक मर्यादाएं तोड़ रहे हैं। जो चाहे किसी की यौवन स्त्री का अपहरण कर लेता है। घर-घर में इसी अपवाद की चर्चा हो रही है कि जब हमारे राजा मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम ने बहुत दिनों तक रावण के घर में रही सीता को पुनः अपने महल में स्थान दिया है, तब हमें ऐसा करने में क्या दोष है? प्रजा राजा की अनुयायी होती है। अतएव हम सब आप से निवेदन करने आये हैं कि इस विषय में कुछ कीजिये जिससे प्रजा का हित हो।''

प्रजाजनों के मुख से सीता को कलंकित करने के शब्द सुनकर राम को गहरी वेदना हुयी। वे विचारने लगे–''हाय रे कर्म! जिस सीता के निमित्त मैंने विरह का घोर कष्ट सहा, रावण जैसे रिपु को जीता, वही आज मेरे कुलरूपी चंद्रमा को कलंकित कर रही है। सीता निष्कलंक और पवित्र है, इसमें मुझे तनिक भी संदेह नहीं, पर क्या करूँ? लोकोपवाद को सुना अनसुना करूँ अथवा निरपराधिनी सती सीता का परित्याग करूँ?'' उस समय की राम की हृदय स्थिति का वर्णन कौन कर सकता है? उन्होंने अपने हृदय पर पाषाण रखकर सीता को त्यागने का निश्चय किया।

तत्पश्चात् राम ने लक्ष्मण को बुलाया और उससे कहा–''हे वत्स! सीता इतने दिन रावण के घर रही और फिर मैंने उसे ग्रहण कर लिया, इस बात की लोक में निंदा हो रही है। अतएव मैंने जानकी का परित्याग करने का निर्णय ले लिया है। मैं अपने चिर पवित्र, त्रैलोक्य पूज्य वंश को इस लोकोपवाद से कलंकित न करूँगा।''

यह सुनकर लक्ष्मण को क्रोध आ गया और वह कहने लगा–''ये आप क्या कहते हैं? मैं अभी उन दुष्टों की जिह्वा निकाल लाता हूँ, जिन्होंने सीता जैसी सती के विषय में ऐसे शब्द मुख से निकाले। हे पूज्य! मुझे शोक और आश्चर्य है कि आपको उन मूर्खों की बात पर विश्वास कैसे हो गया?''

राम ने कहा–''नहीं अनुज! कदापि नहीं, मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि सीता निर्दोष है। परंतु तुम किस-किस को मारोगे? प्रजा का नाश मतलब हमारा नाश, यह कोई उपाय नहीं है। प्रजा को विश्वास है कि पापाचारी रावण ने अवश्य सीता के शील को भंग किया है। मैं उनके इस विश्वास को किस तरह हटाऊँ? यदि मैं राजा न होता, तो मैं इस निर्मूल लोक निंदा का निरादर करके निडर होकर सीता के साथ

अपना जीवन व्यतीत करता। परंतु उस बेचारी जनकनंदिनी को दु:ख भोगने के लिए ही विधाता ने पैदा किया है। अब तुम इस विषय में और अधिक कह कर मेरे मन को दु:खी न करो।''

लक्ष्मण ने आँसू बहाते हुये करबद्ध विनती की–''हे देव! गर्भ के भार से पीड़ित महासती अकेली इस समय किसकी शरण में जायेगी? हे नाथ! मुझ पर प्रसन्न होकर शीलवती निर्दोष भावज को न तजो।''

राम ने क्रोधावेश में लक्ष्मण से कहा–''अब अधिक न कहो। मैंने सीता को निर्जन वन में असहाय एवं एकाकी छोड़ने का निश्चय कर लिया है। अब वह मेरे राज्य, मेरे नगर तथा मेरे उद्यान में कहीं भी नहीं रह सकती। उसे अपने कर्मानुसार ही जीवित रहना है अथवा मृत्यु का ग्रास बनना है।''

यह कहकर रामचंद्र जी ने कृतान्तवक्र सेनापति को बुलाया और उसे आज्ञा देकर कहा–''तुम सीता को ले जाओ और मार्ग में जिनमंदिरों तथा निर्वाण भूमियों के दर्शन कराकर सिंहनाद नामक अटवी में अकेली छोड़ आओ।''

इन हृदय विदारक शब्दों को सुनकर दु:खी मन से कृतान्तवक्र सीता के पास गया और कहा–''हे माता! उठो, तुम्हें चैत्यालयों के दर्शन की वांछा है, सो रामचंद्र जी ने उसे पूर्ण करने की आज्ञा दी है।'' सीता ने पंच नमस्कार मंत्र का स्मरण किया और प्राणनाथ को परोक्ष में नमस्कार करके रथ में सवार हुयी। यात्रा के आरम्भ में ही अनेक अपशकुन हुए, परंतु निश्चल चित्त सीता जिन दर्शन की अभिलाषा लिये चली गयी।

अनेक चैत्यालयों के दर्शन के पश्चात् जब सेनापति गंगा को पार करके सिंहनाद अटवी में पहुँचा तो रथ को रोककर रोने लगा। उसकी दशा देखकर सीता ने पूछा–''हे वीर! तुम इस प्रकार रुदन क्यों कर रहे हो? शीघ्र कहो।''

सेनापति ने करबद्ध विलाप करते हुये कहा–''हे माता! कुछ दुष्ट नागरिकों ने आपके चरित्र पर कलंक लगाया कि आप इतने दिन रावण के यहाँ रहीं फिर भी महाराज ने आपको पुन: क्यों स्वीकारा? यह सुनकर श्रीराम ने अपनी अपकीर्ति फैलने के भय से आपका परित्याग किया है और जिनदर्शन कराते हुये आपको इस निर्जन वन में छोड़ आने की आज्ञा मुझे दी है। स्वामी की आज्ञा पालने का समय आ गया है, इसलिये विलाप कर रहा हूँ। मुझ पराधीन सेवक को क्षमा करो।''

यह सुनते ही सीता मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़ी। कुछ देर बाद पश्चात् सचेत होने पर कहने लगी–''हे सेनापति! मेरे प्राणाधार से कहना कि मेरे त्याग का कोई विषाद न करें, परम धैर्य का आलम्बन लेकर सदा प्रजा और अपने धर्म की रक्षा करें। जैसे लोगों के द्वारा मेरी निंदा करने पर उन्होंने मेरा त्याग किया है, वैसे ही यदि

लोग उनके धर्म की निंदा करने लगें तो धर्म को मेरे समान न त्यागें।'' यह कहकर सीता पुनः मूर्च्छित होकर गिर पड़ी। कृतान्तवक्र अत्यंत दुःखी मन से सीता को वन में अकेली छोड़कर अयोध्या वापस आ गया।

सचेत होने पर सीता पथभ्रष्ट मृगी की भाँति विलाप करने लगी–''हे नरोत्तम! मुझे त्यागने में आपका एवं नगरवासियों का कोई दोष नहीं है। मेरे पूर्व जन्मों के अशुभ कर्मों का ही यह फल है। हाय! मैं कहाँ जाऊँ? हाय पिता जनक! माता विदेहा! इन दुःखों को कैसे सहूँ?'' इस प्रकार गर्भ का भार वहन करने में असमर्थ सीता विलाप करती हुयी बारम्बार मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ती थी।

इसी समय पुण्डरीकपुर का अधिपति राजा वज्रजंघ हाथी पकड़ने के निमित्त उस वन में आया था। उसने सीता का करुण रुदन सुना। वह उसके पास गया और कहने लगा–''हे बहिन! आप कौन हैं? इस निर्जन वन में कैसे आयीं? आपकी इस अवस्था का कारण क्या है? मैं पुण्डरीकपुर का राजा वज्रजंघ हूँ। मुझसे भयभीत न हों।'' सीता ने उसे अपना सारा वृतांत सुनाया। सब सुनकर राजा का हृदय करुणा से भर गया। उसने सीता को धैर्य बंधाया और उसे अपनी धर्म की बहिन बनाकर पालकी में बिठाकर पुण्डरीकपुर ले गया। राजकुल की स्त्रियों ने सीता का यथेष्ट स्वागत किया और निष्कपट हृदय से उसकी सेवा करने लगीं। वहाँ सुखपूर्वक उसका समय व्यतीत होने लगा।

इधर कृतान्तवक्र शोक से व्याकुल होता हुआ लौटकर श्रीराम के समीप आया एवं सीता का हाल सुनाते हुये उसका संदेश सुनाया। सेनापति के मुख से सीता के हृदयस्पर्शी वचन श्रवण कर श्रीराम अत्यंत दुःखी होकर विचारने लगे–''मुझ मूढ़ ने घोर निन्द्य कार्य किया है। हाय! कहाँ वह अति सुकुमारी और कहाँ हिंसक पशुओं से भरा भयानक वन।'' यह विचार उत्पन्न होते ही वह मूर्च्छित हो गये और सचेत होने पर विलाप करने लगे–''हाय पतिव्रते! तू कहाँ रहती होगी, क्या करती होगी? हे कृतान्तवक्र! क्या तू वास्तव में मेरी प्रिया को वन में एकाकी छोड़ आया?'' इस प्रकार विलाप करते हुये वे पुनः मूर्च्छित हो गये। लक्ष्मण ने शीतलोपचार से सचेत कर उन्हें धैर्य बंधाया। सीता को वापस लाने के लिए उसकी खोज करायी गयी, परंतु वह न मिली। राम व्याकुल चित्त उसी का ही ध्यान करते रहते। कालान्तर में निरुपाय हो धैर्य धारण कर पूर्ववत् न्यायपूर्वक राज्य करने लगे।

अब वह दिन भी आ गया कि जब नौ मास पूर्ण हुये और श्रावण शुक्ला पूर्णिमा को श्रवण नक्षत्र में सीता ने पुत्र युग्ल को जन्म दिया। पुण्डरीकपुर में पुत्रों का जन्मोत्सव मनाया गया। एक का नाम 'अनंगलवण' और दूसरे का नाम 'मदनांकुश' रखा गया। दोनों पुत्र दोज के चंद्रमा के समान बढ़ने लगे और अपनी लीलाओं से माता

के मन को मोहित करने लगे। पुत्रों को देखकर सीता अपना सारा दु:ख भूल गयी। विद्याभ्यास के योग्य होने पर उसने स्वयं दोनों पुत्रों को सिद्धार्थ नामक क्षुल्लक को सौंप दिया। अल्पकाल में ही दोनों भ्राता समस्त विद्याओं में प्रवीण हो गये।

एक दिन दोनों कुमारों को वनक्रीड़ा करते समय नारद जी दिखायी दिये। कुमारों ने विनय भाव से उन्हें प्रणाम किया। नारद जी ने प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया–''दोनों राम-लक्ष्मण जैसी विभूति प्राप्त करो।'' यह सुनकर कुमारों ने पूछा–''राम-लक्ष्मण कौन हैं?'' तब नारद जी ने आदि से लेकर सीता जी के त्याग पर्यंत का सारा वृतांत उन्हें सुनाया। उसे सुनकर अंकुश ने कहा–''नि:संदेह राम-लक्ष्मण बड़े पराक्रमी और शक्तिशाली हैं, परंतु उन्होंने मिथ्या लोकोपवाद के कारण सीता को त्याग करके उचित नहीं किया।'' लवण ने पूछा–''अयोध्या यहाँ से कितनी दूर है?'' नारद ने कहा–''यहाँ से 640 कोश उत्तर की ओर है, परंतु क्यों पूछ रहे हो?'' लवण ने कहा–''हम राम-लक्ष्मण के साथ युद्ध करेंगे और देखेंगे कि उनका बल वीर्य कितना है?''

कुमारों ने महल आकर वज्रजंघ से कहा–''मामा जी! हम अयोध्या पर चढ़ाई करेंगे, आप शीघ्र ही युद्ध की तैयारी कीजिये।'' यह सुनकर सीता रुदन करने लगी। क्षुल्लक सिद्धार्थ ने नारद से कहा–''ये आपने क्या किया? पिता पुत्रों के बीच युद्ध छिड़वा दिया।'' नारद ने कहा–''मैंने तो सहज भाव से आशीर्वाद दिया था और उनके पूछने पर राम-लक्ष्मण का परिचय दे दिया। आप चिंता न करो, सब अच्छा ही होगा।''

लवण-अंकुश माता के पास आये और उसे रोता देख बोले–''माता! आप विलाप क्यों करती हो? किसने आपकी अवेलहना की है? किसने आपको दु:ख पहुँचाया है?'' सीता ने कहा–''पुत्रों! मैं तुम लोगों की युद्ध की बात सुनकर दु:खी हूँ।'' लवण-अंकुश ने कहा–''हम जैसे शूरवीरों की माता को कायर नहीं होना चाहिए। आपको तो हर्ष मनाना चाहिए कि आपके पुत्र शत्रुओं का मान गलित करने योग्य हैं।'' सीता ने कहा–''बेटा! मुझे आपकी वीरता पर पूरा विश्वास है, परंतु इस युद्ध से किसी को भी हानि हुयी तो मुझे दु:ख पहुँचेगा। क्योंकि तुमसे प्यारे मुझे राम-लक्ष्मण हैं और उनसे प्यारे मुझे तुम दोनों हो।'' कुमार आश्चर्य से बोले–''माता! वह हमसे प्यारे कैसे हैं?'' सीता ने कहा–''श्रीराम तुम्हारे पिता और लक्ष्मण तुम्हारे चाचा हैं। अतएव वे आपके द्वारा मान भंग करने योग्य नहीं हैं, क्योंकि उनका मानभंग होना, तुम्हारा मानभंग होना है। तुम अपना चित्त शांत कर अयोध्या जाओ तथा पिता एवं गुरुजनों को विनयपूर्वक प्रणाम कर उनसे आशीर्वाद ग्रहण करो।'' पुत्रों ने कहा–''हे माता! यह कैसे हो सकता है कि हम शत्रु के समक्ष दीनता के वचन कहें? हम तो आपके पुत्र हैं। उन्होंने आपको निरपराध होते हुए भी तजा, यह हम लोग कैसे सहन करें? हम रणांगन में जाकर अवश्य बदला लेंगे।''

सीता पुत्रों के वचन सुनकर मौन हो गयी, परंतु मन में अति खेद खिन्न होती रही। कुमारों ने माता को प्रणाम कर विपुल सैन्य सहित अयोध्या पर आक्रमण करने के लिए प्रस्थान किया।

राम-लक्ष्मण भी शत्रु को अपने राज्य पर चढ़ आया जानकर एक बड़ी सेना सहित रणभूमि में पहुँचे। दोनों पक्षों में घोर संग्राम होने लगा। नारद और सिद्धार्थ क्षुल्लक ने भामण्डल को समाचार भेजकर सीता का हाल सुनाया। भामण्डल तत्काल बहिन सीता से मिले और उसे लेकर रणभूमि के निकट पहुँचे, आकाश में ही विमान को स्थिर कर दिया और स्वयं नीचे उतर कर अपनी सेना में सम्मिलित हो गये। सीता विमान में ही बैठी सब देखने लगी। कुमारों ने अपनी शूरवीरता से राम-लक्ष्मण को आश्चर्यचकित एवं विचलित कर दिया। कुमारों को राम-लक्ष्मण के साथ अपने संबंध ज्ञात थे, इसलिए उन्होंने उनके मार्मिक अंगों की रक्षा कर प्रहार किये। अंततः लक्ष्मण ने क्रोध में आकर अंकुश पर चक्र चला दिया, परंतु चक्र लौटकर लक्ष्मण के हाथ पर आकर ठहर गया। यह देख सभी आश्चर्य में पड़ गये कि कहीं ये नये बलभद्र और नारायण तो उत्पन्न नहीं हो गये?

नारद और क्षुल्लक सिद्धार्थ ने लक्ष्मण को सत्य से अवगत कराया, कहा–''ये आपके अग्रज के अंग हैं, इसलिए इन पर आपके चक्रादिक का कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता।'' सत्य जान लक्ष्मण ने तुरंत शस्त्रादि छोड़ दिये। राम को जब रहस्य ज्ञात हुआ तो वे मोह के वशीभूत होकर मूर्च्छित हो गये। सचेत होने पर शीघ्रता से राम-लक्ष्मण पुत्रों के सन्मुख गये। पिता और काका को सन्मुख आते देखकर कुमार रथ से उतरे और हाथ जोड़कर पिता के चरणों में गिर पड़े।

रामचंद्र जी ने अति प्रेम से उन्हें उठाकर हृदय से लगा लिया एवं अश्रुपात करते हुये स्वयं को धिक्कारने लगे–''हाय! मैंने तुम्हारी निर्दोष माता को वन में भेज कर महा अनर्थ किया।'' कुमारों ने उन्हें धैर्य बंधाया। तत्पश्चात् कुमारों ने अत्यंत विनयपूर्वक लक्ष्मण को प्रणाम किया। यह सब दृश्य देखकर सीता को असीम आनंद हुआ और वह तत्काल ही पुंडरीकपुर लौट गयी।

भामण्डल, हनुमान, सुग्रीव, विराधित आदि राजा हर्षित होकर कुमारों से मिले। तत्पश्चात् बड़े समारोह के साथ उनका अयोध्या में प्रवेश कराया गया।

एक दिन सुग्रीव, हनुमान आदि ने मिलकर रामचंद्र जी से प्रार्थना की–''हे नाथ! महासती जानकी को अयोध्या लाने की आज्ञा प्रदान करें।'' राम ने कहा–''यद्यपि मुझे उसके शील में तनिक भी संदेह नहीं है, परंतु मैंने उसे लोकोपवाद के भय से गृह से निकाला था, अब कैसे बुलाऊँ? सीता पहले समस्त प्रजा को विश्वास उत्पन्न कराये, तदुपरांत ही उसके साथ हमारा पुनर्मिलाप हो सकता है।'' यह सुनकर उन समग्र ने शीश नवाकर कहा–''हे देव! आप जैसी आज्ञा करेंगे, वैसा ही होगा।''

तत्पश्चात् वे सभी पुंडरीकपुर पहुँचे और विनयपूर्वक सीता को प्रणाम किया। सीता अश्रुपात करती हुयी कहने लगी–''हे वत्स! दुर्जनों के वचनरूपी दावानल से दग्ध मेरी काया क्षीरसागर के जल से भी शीतल नहीं हो सकती।'' सुग्रीव आदि ने कहा–''हे देवी! इस पृथ्वी पर भला ऐसा कौन है, जो आप सदृश शीलवती का अपवाद कर सके? अतः शोक का त्याग करो। श्रीराम ने आपको लाने के लिए पुष्पक विमान भेजा है। उस पर विराजमान होकर हमें उपकृत कीजिये।''

पुष्पक विमान में बैठकर सीता संध्या समय अयोध्या के महेन्द्र उद्यान में जा पहुँची। अगले दिन सती सीता राम की सभा में आयी। सीता की जय जयकार से सारा सभामंडल गूंज उठा। सीता को अपने सम्मुख उपस्थित देखकर राम किंचित् क्रोध से बोले–''हे सीता! तू मेरे सम्मुख क्यों खड़ी है? शीघ्र दूर हो जा, मैं तुझे देखने में समर्थ नहीं हूँ। रावण के यहाँ बहुत समय तक रहने के बावजूद मैंने तुम्हें स्वीकार ही क्यों किया?''

यह सुनकर सीता कुछ रुष्ट होकर बोली–''परम ज्ञानवान होकर भी आपने मुझ गर्भवती को छलपूर्वक तीर्थयात्रा के बहाने भयानक वन में एकाकी छुड़वाया, क्या यह उचित था? यदि आपके चित्त में मुझे त्याग देने का ही विचार था, तो किसी आर्यिका के निकट छुड़वाते। हे राजन्! अधिक क्या कहूँ? मुझे तो आज्ञा दीजिये, जो कहेंगे मैं वही करने में तत्पर हूँ।''

यह सुनकर राम ने कहा–''हे सीते! मुझे तुम्हारे निर्दोष शील पर पूर्ण विश्वास है। कुटील स्वभावी लोगों ने व्यर्थ ही तुम पर कलंक लगाया। मैं अपना अपराध मानता हूँ, परंतु आर्यिका के पास छोड़ने पर आरोपों का सिलसिला खत्म नहीं होता, इसलिए वन में छोड़ा। तुम पुण्यात्मा हो, तुम्हारा कुमरण नहीं हो सकता था। अब कोई ऐसा उपाय करो, जिससे प्रजा को तुम्हारी निर्दोषता पर विश्वास हो जाये।''

सीता ने कहा–''आप आज्ञा करें, सो ही प्रमाण है। महा विष कालकूट को पीऊँ, अग्नि में प्रवेश करूँ अथवा जो आज्ञा करो वही कर सकती हूँ।'' राम ने कहा–''अग्निकुण्ड में प्रवेश करो।'' सीता ने स्वीकार किया।

राम की आज्ञा से तीन सौ हाथ का चौकोर कुण्ड (गड्ढा) खोदा गया, जिसे कालागरु, शुष्क ईंधन, चंदन आदि भरकर अग्नि से प्रज्ज्वलित किया गया। वह दृश्य बड़ा ही विषम था, सबके हृदय अग्नि ज्वाला को देखकर थर-थर काँप रहे थे। स्वयं राम अति व्याकुल हो रहे थे–''हाय! यह मैंने क्या किया? अब कैसे इसे अग्नि में प्रवेश करने से निषेध करूँ?''

महासती सीता निर्भयता सहित उठी और निश्चल चित्त हो कायोत्सर्ग किया, तीर्थंकरों का स्मरण किया और सर्व जीवों के प्रति क्षमा धारण कर गंभीर स्वर में

बोली–''हे अग्नि की पवित्र ज्वाला! यदि मैंने स्वप्न में भी मन-वचन-काय से श्रीराम के अतिरिक्त अन्य किसी पुरुष की कामना की हो, तो तू मुझे भस्म कर देना। यदि मैं सती पतिव्रता हूँ, तो तेरी प्रचण्ड ज्वाला मुझे भस्म न करे।'' ऐसी प्रतिज्ञा कर णमोकार मंत्र का उच्चारण करती हुयी सती सीता प्रचण्ड दहकते हुये अग्निकुंड में कूद पड़ी। उसके कूदते ही राम मूर्च्छित होकर गिर पड़े। भामण्डल, सुग्रीवादि हाहाकार करके रोने लगे।

उधर सती के अखण्ड शील के प्रभाव से अग्निकुण्ड जलवापिका हो गया अर्थात् सारा कुछ जलमय हो गया। जन साधारण को सती सीता के शील का माहात्म्य दिखाने के लिए देवों ने अपनी विक्रिया से उस कुण्ड का जल प्रवाह इतना बढ़ा दिया कि दर्शकों के डूबने में कुछ संदेह न रहा। सब चिल्लाने लगे–''हे देवी! रक्षा करो, प्रसन्न होओ।'' जब सर्व लोगों को सीता के अखण्ड शील का परिचय हो गया तब रक्षक देवों ने जल की बढ़ती हुयी बाढ़ को रोका, कुण्ड के मध्य भाग में सहस्रदल कमल बनाया और कमल की मध्य कर्णिका पर रत्नमय सिंहासन के ऊपर सीता को बैठाया। देवों ने प्रसन्न होकर आकाश से रत्न पुष्पादि की वर्षा की। लवणांकुश अपनी माता को देवों द्वारा सम्मानित देखकर अति प्रसन्न हुये और माता को प्रणाम कर उसके आजू-बाजू खड़े हो गये।

श्रीराम अत्यंत अनुराग सहित सीता के समीप जाकर कहने लगे–''हे देवी! मेरा अपराध क्षमा करो। लोकोपवाद के कारण अज्ञानी होकर मैंने तुम्हें कष्ट पहुँचाया, महा अनर्थ किया। हे कान्ते! पुनः उसी प्रेम बंधन से बंधकर मेरे साथ सुखसागर में निमग्न होओ।''

सीता ने कहा–''स्वामिन्! आपका या अन्य किसी का कोई दोष नहीं है, दोष तो मेरे अशुभ कर्मों का है। मैंने आपकी अनुकंपा से स्वर्ग के सदृश सुख भोगे। अब यही इच्छा है कि जिनदीक्षा धारण करूँ, जिससे स्त्रीत्व का अभाव करके शाश्वत सुख का भोग करूँ।'' इस प्रकार कहकर सीता ने अपने केशों को उखाड़कर श्रीराम के सम्मुख डाल दिया और पृथ्वीमति आर्यिका से दीक्षा ग्रहण कर ली।

आर्यिका सीता जी ने बासठ वर्ष तक कठोर तप किया और अंत में समाधिपूर्वक मरण करके स्त्रीलिंग को छेदकर सोलहवें स्वर्ग में प्रतीन्द्र पद को प्राप्त हुयी।

धर्मस्नेही बंधुओं! एक नारी प्राण कण्ठगत होने पर भी अपने धर्म का परित्याग नहीं करती, बल्कि सती सीता की भाँति परीक्षा पर परीक्षा देती रहती है और अंत में अपने धर्म के साथ अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेती है।

आरामशोभा की क्षमा

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में कुशार्त देश है, जिसमें बलासग नामक गांव था। उसके चारों ओर चार कोश तक कोई वृक्ष आदिक नहीं थे। वर्षा होने पर भी मात्र सूक्ष्म घास ही उगती, पेड़-पौधे नहीं उगते थे, मानो यह उस गाँव पर अभिशाप ही हो। यद्यपि जल से भरे कूप, वापिका आदि थे। कृषकों ने भूमि को उपजाऊ बनाया पर प्रयत्न करने पर भी पेड़-पौधे नहीं उगे।

इसी गाँव में अग्निशर्मा नामक ब्राह्मण रहता था, जो वेद वेदांग में पारंगत था। उसकी पत्नी का नाम अग्निशिखा था। निर्धन होने पर भी वह सुख से जीवन यापन करता था, परंतु उसे यही दुःख था कि कई वर्षों तक उसके कोई संतान नहीं हुयी। पुण्योदय से कुछ समय उपरांत अग्निशिखा गर्भवती हुयी। अग्नि उसका प्रत्येक दोहला पूरा करता। नौ मास उपरांत उसने अत्यंत तेजस्विनी कन्या को जन्म दिया। अग्निशर्मा ने पुत्री का जन्मोत्सव किया और उसका नाम विद्युतप्रभा रखा। विद्युतप्रभा की बाल लीलाओं से ब्राह्मण का घर खुशियों से भर गया। समय के साथ विद्युतप्रभा बढ़ने लगी। पांच वर्ष की होने पर उसे लिपि ग्रहण करने के लिए भेजा गया। उसकी माँ उसका चौड़ा भाल देखकर उससे कहती–''बेटी! तू इक दिन रानी बनेगी।'' उनका समय सुखपूर्वक बीत रहा था।

विद्युतप्रभा आठ वर्ष की हुयी। एक दिन अचानक अग्निशिखा बीमार पड़ गयी। अनेक उपचार कराने पर भी वह स्वस्थ्य न हुयी और मृत्यु को प्राप्त हो गयी। माँ की मृत्यु के बाद विद्युतप्रभा के भाग्य ने करवट ले ली। इतनी अल्प आयु में वह घर का सारा काम करती, उसकी पढ़ाई-लिखाई सब बंद हो गयी। अग्निशर्मा पत्नी की अचानक मृत्यु और प्रिय पुत्री की ऐसी दशा देखकर चिड़चिड़ा हो गया, विचार करता–''इतनी छोटी, कोमल-सी पुत्री से घर का काम कराना सरासर अन्याय है और मैं दूसरा विवाह करना पाप समझता हूँ, परंतु मैं क्या करूँ? पुत्री के जीवन का इस तरह अपव्यय नहीं देखा जाता।''

एक दिन विद्युतप्रभा ने पिता से पूछा–''पिता जी! आप चिंतित क्यों रहते हैं? मैं तो आपका सारा काम कर देती हूँ, फिर आपको किस बात का विकल्प है?'' पिता ने पुत्री की बातों का कुछ जबाव नहीं दिया। विद्युतप्रभा ने फिर कहा–''पिताजी! आज

मैंने देखा पड़ोस वाले धनदत्त चाचा दूसरी शादी करके नयी चाची लाये हैं। वो जगत भैया को खूब प्यार करेंगी। आप भी मेरे लिए नई माँ ले आइये।''

अग्निशर्मा ने कहा–''बेटा! दूसरा विवाह करना पाप है। जिस प्रकार स्त्री दूसरा विवाह नहीं कर सकती, उसी प्रकार पुरुष को भी दूसरा विवाह नहीं करना चाहिए।'' विद्युतप्रभा ने कहा–''चाचा भी तो ऐसा ही कहते थे। परंतु देखो, चाची को मरे एक माह भी नहीं हुआ और वे नई चाची ले आये। ऐसे आप भी दूसरी माँ ले आइये। मैं उनकी खूब सेवा करूँगी, अगर वो प्यार नहीं करेंगी तो मैं रूठकर गायें चराने चली जाया करूँगी।''

पुत्री की बात सुनकर अग्नि विचार करने लगा–''क्या पुनर्विवाह से घर में शांति होगी? मेरी पुत्री को वो सगी माँ सा प्यार करेगी? कहीं मेरा रहा-सहा जीवन नरक न बन जाये। पर सभी स्त्रियाँ एक जैसी तो नहीं होती, हो सकता है वह इस घर की खुशियाँ वापस ले आये।'' इत्यादि प्रकार से संकल्प-विकल्प करके अग्नि ने पार्श्ववर्ती गाँव की एक विषलता नामक कन्या से विवाह कर लिया।

विषलता तो विष की खान स्वरूप थी। घर आते ही विद्युतप्रभा के ऊपर उसने विष उगलना शुरू कर दिया। वह उससे कहती–''यह घर तुम्हारा नहीं, घर का काम करो तभी भोजन मिलेगा।'' विद्युत सारा काम करती, फिर भी वह उसे रूखा-सूखा भोजन देती, बात-बात पर डाँटती, अग्नि से उसकी शिकायत करती रहती, दिनभर बिटिया का रोना रोती रहती जिससे पिता को भी पुत्री के ही दोष दिखते। जब कभी बेचारी विद्युत पिता से माँ के बारे में यदि कुछ कहती, तो वह उलटा उसी को डाँट देता, कहता–''अन्य के दोष देखने से पूर्व स्वयं के दोष देखो।''

विद्युत बेचारी दुःखी रहती, विचार करती–''मैं तो माँ को प्रसन्न करने की कोशिश करती हूँ, फिर भी वह गुस्सा रहती हैं। पिता जी भी कुछ भी नहीं कहते। मेरी पढ़ाई बंद हो गयी, कोई बात नहीं। मैं सारा काम भी कर लूँगी, परंतु घर में सुख कब आयेगा?'' उसने माँ से बोलना बंद कर दिया, दिनभर काम में लगी रहती, बात-बात में डाँट सुनना उसका नित्य कर्म हो गया। इसी प्रकार उसका जीवन व्यतीत होने लगा।

वसंत ऋतु का समय था, जंगल में थोड़ी बहुत घास आ गयी थी। विद्युत गो चराने के लिए गयी और वृक्षों के अभाव में धूप से सन्तप्त होकर घास पर लेट गयी। तभी एक काला सर्प वहाँ आया और मनुष्य वाणी में बोला–''मैं भय से तुम्हारे पास आया हूँ। मेरे पीछे गरुड़ आ रहे हैं, वह मेरी दुर्दशा करेंगे। अतः मेरी रक्षा करो, मुझे अपने वस्त्रों में छुपा लो। मुझ पर विश्वास करो, मैं तुम्हारा अनिष्ट नहीं करूँगा।''

डरते-डरते विद्युत ने सर्प को अपनी गोद में छिपा लिया। गरुड़ों की टोली आयी और उन्होंने विद्युत से सर्प के बारे में पूछा। विद्युत ने कहा–''मैंने कोई सर्प नहीं

देखा।'' गरुड़ों के जाने के बाद नाग गोद से उतरा और देवरूप में प्रकट होकर विद्युत से बोला–''मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ। तुम दयालु हो। अतः कोई वर माँगो।'' विद्युत ने कहा–''मैं सारा दिन धूप में रहती हूँ, जिससे शरीर जलता है, अतः मुझे छाया प्रदान करें।'' देव ने सोचा–''कितनी भोली है! इतना तुच्छ सा वरदान माँगा। विमाता के कष्टों को सहन करते-करते इसकी प्रतिभा कुण्ठित हो चुकी है, अन्यथा इतना तुच्छ वरदान नहीं माँगती। क्यों न इसके इस तुच्छ वरदान को ऐसा रूप दूँ, जिससे इसे विमाता के कष्टों से कुछ मुक्ति मिले।'' उसने तथास्तु कह कर उसके ऊपर एक कोश की एक ऐसी वाटिका निर्मित की जो नाना फल-फूल सहित थी, उसके साथ-साथ चलती, घर में और आवश्यकता के समय संकुचित हो छत्र रूप में हिनाधिक हो जाती। तत्पश्चात् देव यह कहकर चला गया कि विपत्ति में स्मरण करना। अब विद्युत की क्षुधा, तृषा और धूप संबंधी वेदना समाप्त हो गयीं। संतुष्ट होकर विद्युत अपना जीवन यापन करने लगी।

एक दिन मध्यान्ह काल में विद्युत गाय चराने गयी। गायों को चरता छोड़ वह वहीं सो गयी। तभी पाटलीपुत्र नरेश जितशत्रु सेना सहित विजय प्राप्त कर वहाँ से गुजरा। उसकी दृष्टि वाटिका पर पड़ी और वह विचारने लगा–''जाते समय तो यहाँ एक भी वृक्ष नहीं था, अब ये वृक्ष कहाँ से आये? कहीं मैं रास्ता तो नहीं भूल गया?'' उसने सेना को पड़ाव का आदेश दिया।

घोड़े, हाथी आदि की आवाज सुनकर विद्युत जागी और विशाल सेना देखकर भयभीत होकर वहाँ से जाने लगी। उसके चलते ही वाटिका चलने लगी। यह देखकर राजा को आश्चर्य हुआ कि वाटिका कैसे चलने लगी? उसने अपने मंत्री से कहा–''यह कन्या देवी तो नहीं है, क्योंकि इसके शरीर की छाया भी पड़ रही है और इसकी पलकें भी झपक रही हैं। पता करो, कन्या में क्या शक्ति है जिसके प्रभाव से यह वाटिका उसके साथ-साथ चल रही है?'' मंत्री ने दौड़कर उसको रोका, उसके रुकते ही बगीचा भी रुक गया। राजा वहाँ आया। उसे देख विद्युत ने प्रणाम कर निवेदन किया–''मेरी गायें बहुत दूर निकल गयी हैं, इसलिए मैं नहीं रुक सकती।'' राजा ने घुड़सवारों को भेजकर गायों को लाने कहा। विद्युतप्रभा के रूप से प्रवाहित होकर राजा ने मंत्री से कहा–''पूछो, यह कुमारी है या विवाहित।'' मंत्री ने विद्युत से पूछा–''देवी! आपका परिणय हो चुका है क्या? विद्युत ने संकोच पूर्वक सिर हिलाकर मना कर दिया।'' मंत्री ने पूछा–''यदि आपको रानी बनने का अवसर प्राप्त हो, तो स्वीकार करेंगी क्या?'' विद्युत ने कहा–''विवाह का दायित्व तो माता-पिता पर होता है, वही इसका निर्णय करते हैं।'' मंत्री ने पूछा–''तो फिर आपके माता पिता कौन हैं? कहाँ हैं?'' अपना परिचय बताकर विद्युत घर वापस आ गयी।

राजा के आदेशानुसार मंत्री अग्निशर्मा से मिला और उसको राजा की इच्छा प्रकट की। अग्नि ने प्रसन्न होकर विद्युत के विवाह की स्वीकृति प्रदान कर दी। विषलता को यह अच्छा न लगा। वह विचारने लगी–''मेरी पुत्री कुलवंती का विवाह हो तो अच्छा होगा, परंतु वह तो काली बदसूरत है, उसे देखने से लोगों को ग्लानि उत्पन्न होती है, इसलिए यह विवाह संभव नहीं है। फिर भी कोशिश करने में क्या हर्ज है।'' उसने अग्नि से कहा–''आप राजा के समक्ष कुलवंती का प्रस्ताव रखें।'' अग्नि ने डाँटते हुये कहा–''विद्युत के सौंदर्य से प्रभावित होकर राजा उससे विवाह करना चाहते हैं। विद्युत और कुलवंती में जमीन आसमान का अंतर है, इसलिए मूर्खता करना अच्छा नहीं।''

शुभ मुहूर्त में विद्युतप्रभा और राजा जितशत्रु का विवाह हुआ। राजा ने विद्युत का नाम आरामशोभा रखा, अग्निशर्मा को बारह गाँव दिये और आरामशोभा के साथ पाटलीपुत्र के लिए प्रस्थान किया। आरामशोभा का आराम (वाटिका) सारी प्रजा के आकर्षण का केन्द्र बन गया। आरामशोभा राजभवन में प्रविष्ट हुयी तो वाटिका संकुचित हो राजभवन के चारों ओर प्रतिष्ठित हो गयी और उसके ऊपर एक छत्र स्थित हो गया। राजा और आरामशोभा सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने लगे।

इधर विषलता को ईर्ष्या के कारण मन में चैन नहीं था। वह आरामशोभा के सुखी जीवन को दु:खमय बनाने का उपाय सोचती रहती। एक दिन कृत्रिम प्रेम प्रदर्शित करती हुयी अग्निशर्मा से बोली–''पुत्री के विवाह को कई महीने बीत गये हैं, अब तक हमने उसे कुछ नहीं भेजा। हम गरीब हैं तो क्या, हमें पुत्री को स्नेह स्वरूप कुछ भेजना चाहिये। यदि मैं नहीं भेजूँगी तो लोग कहेंगे कि सौतेली माँ हूँ इसलिए ऐसा किया। मैं मोदक बनाती हूँ, आप उन्हें ले जाना।'' अग्नि बोला–''वह महारानी है, साधारण नारी नहीं है। वहाँ उसके सुस्वादु व्यंजनों के समक्ष तुम्हारे मोदक हास्यपद लगेंगे।'' विषलता ने कहा–''आप मातृ हृदय नहीं जानते हैं। आपको जाना ही होगा।'' इतना आग्रह देखकर अग्नि ने जाना स्वीकार कर लिया।

विषलता ने विषमिश्रित मोदक बनाये और एक घड़े में रखकर अग्नि को दे दिये। विषलता ने कहा–''आप इनकी रक्षा कीजियेगा और केवल आरामशोभा को ही दीजियेगा।''

अग्नि पाटलिपुत्र के निकट पहुँचकर एक वृक्ष की छाया में विश्राम हेतु लेट गया, लेटते ही उसे नींद आ गयी। तभी नागदेव क्रीड़ा करता हुआ वहाँ आया, उसने अग्नि को वहाँ देखकर अवधिज्ञान से सब वृतांत जान लिया। उसने सोचा–''विषलता को अब भी शांति नहीं है।'' उसने विषमिश्रित मोदकों को बदल दिया।

अग्नि महल में पहुँचा और राजा को घड़ा देते हुये कहा–''आराम के अलावा ये कोई न खाये, क्योंकि ये उतने अच्छे नहीं है, मात्र स्नेह उपहार है।'' राजा ने आराम

को बुलाकर घड़ा उसे दे दिया। आराम ने मोदक स्वयं खाये और सबको खिलाये। सभी ने मोदकों की प्रशंसा की। अग्नि ने राजा से पुत्री को अपने साथ ले जाने का निवेदन किया। राजा ने कहा–''रानियाँ इस प्रकार हर कहीं नहीं जाती, राजघराने के नियम कठोर होते हैं, उन्हें पालना आवश्यक है।'' राजा से विदा लेकर अग्नि ने प्रस्थान किया और कुछ ही दिनों में गाँव पहुँच गया।

विषलता ने पुत्री के समाचार पूछे। अग्नि ने कहा–''तुमने मोदक में ऐसा क्या डाला था, जो मोदकों की प्रशंसा सबने की।'' सब हाल सुनकर उसे आश्चर्य हुआ कि, मोदक खाने पर भी वह जीवित कैसे है? उसने सोचा–''हो सकता है, विष तेज नहीं था, इसलिये प्रभाव नहीं हुआ।''

अगली बार उसने विषमिश्रित फैनी भेजी, उन्हें भी देव ने बदल दिया। तीसरी बार उसने तालपुट मिश्रित मिष्टान्न भेजा और अग्नि से क्रोध पूर्वक कहा–''इस बार पुत्री को अवश्य लेकर आना।'' उस मिष्टान्न को भी देव ने अमृतान्न में बदल दिया। इस बार अग्नि ने राजा से पुत्री को भेजने का पुनः अनुरोध किया, परंतु राजा ने इंकार कर दिया। तब अग्नि ने उग्र होकर कहा–''यदि आप आरामशोभा को नहीं भेजेंगे, तो मैं यहीं आत्महत्या कर लूँगा।'' राजा ने विचलित होकर गर्भवती आरामशोभा को दासियों सहित अग्नि के साथ भेज दिया।

विषलता ने कृत्रिम प्यार दिखाकर आरामशोभा का स्वागत किया। उसने आराम को मारने के लिये घर के मध्य में एक कुआँ खुदवाया और उस पर चारपाई बिछाकर प्रसूतिगृह तैयार किया। गर्भ समय पूर्ण होने पर आरामशोभा ने एक पुत्र को जन्म दिया। पुत्र जन्म के दो-तीन दिन पश्चात् विषलता ने आराम से कहा–''देख, मैंने तेरी सुविधा के लिये घर में ही कुआँ खुदवाया है।'' आराम ने पुत्र को चारपाई पर छोड़ जैसे ही कुएं में झाँका, तो विषलता ने उसे पीछे से धक्का दे दिया। बेचारी मुँह के बल गिरी। उसने नागदेव का स्मरण किया। देव ने तत्काल आकर उसके प्राणों की रक्षा की और कुएं के मध्य में पाताल भवन बनाया, उसी भवन में आराम को ठहराकर उसको सब व्यवस्थायें दीं। देव को विषलता के ऊपर बहुत क्रोध आया, परंतु आराम के निवेदन पर उसने उसका कुछ अनिष्ट नहीं किया।

इधर विषलता ने कुलवंती को पुत्र के निकट सुला दिया और सबको कहा–''प्रसव वेदना के कारण आरामशोभा का शरीर विकृत हो गया है। पहले जैसी सुंदरता अब नहीं रही।''

राजाज्ञा से मंत्री आरामशोभा को लेने के लिए आया। परिचारकों ने नकली आराम शोभा को देखकर उससे पूछा–''आपकी वाटिका कहाँ है? वो तो हमेशा आपके साथ चलती है।'' नकली आरामशोभा ने कहा–''वो कुएं से पानी पीने ठहर गयी है। प्यास

मिटने पर स्वतः आ जायेगी।'' मंत्री नकली आरामशोभा (कुलवंती) को लेकर पाटलिपुत्र पहुँचा। पुत्र जन्मोत्सव के लिए नगर, महल आदि सजाये गये। राजा को पुत्र को देखकर अपार आनंद हुआ, परंतु उसे नकली आरामशोभा को देखकर अपनी आरामशोभा की सौंदर्य विकृति बहुत खटकी। उसने सेविकाओं से सत्य को जानने का प्रयास किया, परंतु असफल रहा। राजा के लिए पुत्र जन्म की प्रसन्नता प्रियतमा की विकृति से विरूप हो गयी। उसने धैर्य धारण कर इस दुःख को सहा।

राजा ने नकली आरामशोभा से पूछा–''तुम्हारा सहचर बगीचा कहाँ गया?'' कुलवंती ने कहा–''वो कुएं पर पानी पीने ठहर गया है।'' राजा को उस पर संदेह हुआ, वह विचारने लगा–''आकृति, बातचीत के ढंग और बोली से यह मेरी प्रियतमा नहीं लगती।''

इधर पुत्र विरह से आरामशोभा कष्ट में थी। उसने देव से कहा–''मुझे यहाँ सारी सुख-सुविधा प्राप्त हैं, परंतु पुत्र के बिना मुझे यहाँ रहने में दुःख हो रहा है। आप कुछ ऐसा उपाय कीजिये, जिससे मैं अपने पुत्र से मिल सकूँ।'' देव ने कहा–''तुम्हारी कामना पूर्ण हो, परंतु ध्यान रखना सूर्योदय के पहले ही तुम लौट आना, अन्यथा तुम्हें मेरा दर्शन पुनः नहीं होगा। तुम्हारे केश से एक मरा सर्प निकलेगा और सदा के लिए दैविक शक्ति समाप्त हो जायेगी।'' आराम ने कहा–''तथास्तु, मुझे आपका कहा स्वीकार है।''

आरामशोभा देव के प्रभाव से प्रतिदिन रात्रि को पाटलिपुत्र जाने लगी। वहाँ वह अपने पुत्र को प्यार करती, सुगंधित पुष्प और मणिमय दीप जलाकर रखती। जब वह राजा के पास अपनी सौतेली बहन को सोती हुयी देखती तो उसे बहुत वेदना होती, क्रोध भी आता, परंतु बेचारी मन मसोसकर लौट आती।

एक दिन राजा का ध्यान पुत्र के पास रखे सुगंधित फूल, दीप आदि पर गया। उसने दासियों से पूछा–''कुमार के पास ये पुष्प आदि कहाँ से आये?'' दासियों ने कहा–''हम नहीं जानते कि यह सब कुमार के पास कौन लाया है?'' राजा ने कहा–''प्रतिसमय कुमार के ही साथ रहकर पता लगाओ कि यह सब कौन लेकर आता है?''

राजा की आज्ञानुसार दासियों ने रात्रि जागरण किया। प्रतिदिन के अनुसार आरामशोभा पुत्र से मिलने आयी। जब वह जाने लगी तो दासियों ने उसका मार्ग रोका और उसे पकड़ना चाहा, परंतु आरामशोभा दिव्य शक्ति से आकाशगमन कर गयी। दासियों ने सारी घटना राजा को बतायी। फिर अगले दिन राजा ने स्वयं जागरण किया। आरामशोभा अपने समयानुसार वहाँ आयी और सब क्रिया करके जाने लगी, तभी राजा ने उसका हाथ पकड़ लिया और कहा–''प्रिय! मुझे किस बात का दण्ड दे रही हो?

क्यों इस प्रकार ठग रही हो?'' आरामशेभा ने कहा–''राजन्! मैं आपको स्वप्न में भी कष्ट नहीं दे सकती। परिस्थितियों के कारण ही मुझे आपसे अलग रहना पड़ रहा है। अभी मुझे छोड़िए, मैं कल आकर सारा वृतांत बताऊँगी।'' राजा ने कहा–''नहीं, सारी बात बताये बिना मैं तुम्हें नहीं जाने दूँगा। बताओ, किस रूप में कहाँ रहती हो?'' लाचार होकर आराम को सब वृतांत बताना पड़ा। इतने में सूर्योदय हो गया, तभी आराम के केशों से एक मृत सर्प निकला, जिसे देखकर आराम बेहोश हो गयी। राजा ने उपचार द्वारा उसकी मूर्च्छा दूर की और बेहोश होने का कारण उससे पूछा। आरामशोभा ने कहा–''पिता के समान नागदेव मेरे साथ रहता था। उसने कहा था कि यदि मैं सूर्योदय होने तक वापस नहीं आयी तो वह मुझे छोड़कर चला जायेगा। यह मृत नाग उसी का सूचक है।''

सब सत्य जानकर राजा को अग्निशर्मा, विषलता और कुलवंती पर बहुत क्रोध आया। उसने कुलवंती को रस्सी से बांधकर खूब पीटा। जब वह बेहोश होने लगी तो आरामशोभा को उस पर दया आयी और उसने राजा से प्रार्थना की–''यदि आप मुझसे प्रसन्न हैं तो इसे छोड़ दीजिए और दयाकर इसे पूर्ववत् सम्मान दीजिए।'' राजा ने कहा–''मैं तुम्हारे स्नेह का सम्मान करता हूँ, इसलिये दण्ड दिये बिना इसे छोड़ता हूँ, परंतु मैं इसे अपने यहाँ नहीं रख सकता।''

राजा ने मंत्री को बुलाया और आदेश दिया–''बलासग गाँव सैनिक भेजकर अग्निशर्मा और विषलता के नाक-कान कटवा दो, उन्हें घर से निर्वासित करके घर में आग लगवा दो और अग्निशर्मा को दिये बारह गाँव भी वापस ले लो।'' आराम ने राजा से प्रार्थना की–''राजन्, पिताजी को क्षमा कर दीजिये और बारह गाँव भी वापस नहीं लीजिये।'' राजा ने उसके कहने पर अग्निशर्मा को क्षमा कर दिया। तदुपरांत राजा जितशत्रु और आरामशोभा सुखपूर्वक अपने पुत्र के साथ जीवन यापन करने लगे।

एक दिन नगर में मुनिसंघ का शुभागमन हुआ। राजा सपरिवार उनकी वंदना के लिए गया। धर्मोपदेश सुनने के पश्चात् आरामशोभा ने मुनिराज से अपना पूर्व भव पूछा। मुनिराज ने बताया–

चम्पा नामक नगरी में एक कुलधर नाम का सेठ रहता था। उसकी पत्नी का नाम कुलनंदा था। उसकी सात पुत्रियाँ हुयीं। उसने सातों पुत्रियों के विवाह अच्छे धनिक परिवार में किये। उसकी स्त्री ने आठवीं पुत्री को जन्म दिया, तब कन्याओं के जन्म से त्रस्त उस सेठ ने क्रोध में आकर उस पुत्री का कुछ नाम नहीं रखा। जब वह कुछ बड़ी हुयी तो गाँव वाले उसे निर्झरगति कहकर पुकारने लगे। माता-पिता ने विवाह

योग्य होने पर उसके विवाह की कोई व्यवस्था नहीं की। जब उसकी आयु अधिक हो गयी, तब उसके पिता ने उसका विवाह करने का प्रयास किया। परंतु कोई भी उससे विवाह करने को तैयार नहीं हुआ। जिसके कारण सेठ को बहुत क्लेश रहता था।

एक दिन सेठ दुकान पर बैठा था। उसे एक मैला कुचला पथिक दिखायी दिया। सेठ ने उससे पूछा–''तुम कौन हो? कहाँ रहते हो?'' पथिक ने कहा–''मैं कौशल देश के नन्दि नामक सेठ और उनकी पत्नी सोमा का नंदन नामक पुत्र हूँ। वैभव क्षीण हो जाने के कारण हम निर्धन हो गये, इसलिये व्यापार हेतु मैं चौल देश गया, परंतु धन प्राप्त नहीं कर सका। अतः स्वाभिमान के कारण अपने देश वापस नहीं गया, क्योंकि मैं धन कमाये बिना अपने देश नहीं जाऊँगा। चौल देश के श्रीदत्त सेठ ने मुझे इस नगर के बसंतदेव नामक पुरुष के लिए पत्र देकर यहाँ भेजा है, अतः आप उनका पता बतायें।''

कुलधर ने उसे बसंतदेव का पता बता दिया और सोचा–''क्यों न इससे पुत्री का विवाह कर दायित्व मुक्त हो जाऊँ? यह स्वाभिमानी है, इसलिये श्वसुर गृह में नहीं रहेगा।'' इत्यादि विचार कर उसने अपनी आठवीं पुत्री का विवाह नंदन नामक उस पथिक से कर दिया।

नंदन बसंतदेव का प्रत्युत्तर श्रीदत्त सेठ को देने के लिए पत्नी सहित चोल देश के लिए रवाना हुआ। सेठ ने मार्ग में खाने के लिए कुछ भोज्य सामग्री नंदन को दी। शनैः शनैः खाद्य सामग्री समाप्त होने लगी। अभी चौल देश पहुँचने में कई दिन बाकी थे। नंदन ने सोचा–''पत्नी को मार्ग में छोड़ जाऊँ तो खाद्य पदार्थ और कुछ अधिक दिन चल जायेंगे।'' ऐसा सोचकर वह उज्जैनी नगर में पत्नी निर्झरगति को सोता हुआ छोड़ गया। जब निर्झरगति जागी तो पति को न देखकर विलाप करने लगी।

उज्जैनी नगर के मणिभद्र नामक सेठ ने निर्झरगति को रोता हुआ देखा। सेठ ने उससे उसके दुःख का कारण पूछा। उसका वृतांत सुनकर सेठ को उस पर दया आ गयी। वह उसे अपने घर ले गया और पुत्री सम उसका पालन करने लगा।

मणिभद्र सेठ धर्मात्मा था। उसने मंदिर व्यवस्था के लिए वाटिका और उपकरण आदि बनवाये थे। निर्झरगति मंदिर की स्वच्छता आदि कार्य करती। एक दिन सेठ को उदास देखकर उसने सेठ से उदासी का कारण पूछा। सेठ ने कहा–''प्रतिदिन पानी देने पर भी वाटिका सूख गयी है, वृक्षों में फल-फूल आदि नहीं है, यही मेरी उदासी का कारण है।'' निर्झर ने कहा–''आप चिंतित न हों, पानी देने पर भी वाटिका के सूखने में अवश्य कोई रहस्य है। मैं संकल्प करती हूँ कि अपने सतीत्व के प्रभाव से जब तक वाटिका को पुनः हरा-भरा न कर दूँ तब तक अन्न जल ग्रहण नहीं करूँगी।''

निर्झरगति संकल्प करके जिनमंदिर में आराधना करने बैठ गयी। उसके प्रभाव से शासन देवी प्रकट हुयी और उसने निर्झर से वर माँगने को कहा। निर्झर ने कहा–''हे देवी! धर्म पिता की वाटिका पुनः हरी-भरी हो जाये। जिनालय सर्वदा मंगल गान से गुंजित रहे। मैं यही वरदान माँगती हूँ।'' देवी तथास्तु कहकर चली गयी।

वाटिका पुनः फल-फूलों से सम्पन्न हो गयी। निर्झर ने धर्म का स्वरूप जानकर श्रावक के बारह व्रत ग्रहण किये और अंत में प्राण त्याग कर स्वर्ग में देवी हुयी। मणिभद्र भी धर्माचरण से शरीर छोड़ कर देव गति को प्राप्त हुआ।

निर्झरगति सौधर्म स्वर्ग से च्युत होकर तुम विद्युतप्रभा हुयी हो। तुमने निर्झरगति की पर्याय में कुलधर सेठ के यहाँ मिथ्यात्व सेवन किया था, तत्पश्चात् मणिभद्र सेठ के यहाँ श्रावक के व्रत ग्रहण कर धर्माचरण किया था। इसी कारण तुम्हारा प्रारम्भिक जीवन कष्टप्रद निकला और बाद में धर्माचरण किया था उसके प्रभाव से उत्तरार्द्ध जीवन सुखमय प्राप्त हुआ। तुमने पूर्व भव में सतीत्व के प्रभाव से वाटिका हरी-भरी की थी, इसलिये इस भव में तुम्हें वाटिका की शोभा प्राप्त हुयी। तुम ने मणिभद्र सेठ का पूर्व भव में उपकार किया था, इसलिये इस भव में उसने नागदेव होकर तुम्हारी सहायता की।

अपना पूर्व भव सुनकर विद्युतप्रभा प्रसन्न हुयी और धर्माचरण करने लगी। कुछ समय पश्चात् वह वैराग्य भाव को प्राप्त हुयी और उसने राजा से आर्यिका दीक्षा ग्रहण करने की अनुमति माँगी। पुत्र को राज्य सौंपकर राजा और विद्युतप्रभा ने दीक्षा ग्रहण कर ली।

धर्मस्नेही बंधुओं! सती विद्युतप्रभा ने अनेक कष्टों को देने वाली अपनी विमाता व बहन के प्रति क्षमा भाव को धारण किया। अतः हम सभी को भी चाहिए कि हम भी अनुकूलता के साथ-साथ प्रतिकूलताओं में भी क्षमा को अंगीकार करें।

तप का प्रभाव

बात उस समय की है जब राम-लक्ष्मण और रावण के बीच युद्ध चल रहा था। उसी समय विभीषण रावण से कह रहा था कि सीता को लौटाने में ही लाभ है, उसी समय रावण को गुस्सा आया और उसने उसे मारने के लिए शक्ति फेंकी, लक्ष्मण पास ही खड़े थे उन्होंने वह शक्ति अपने सीने पर झेल ली, जिससे वे बेहोश होकर जमीन पर गिर पड़े। घायल एवं बेहोश लक्ष्मण को वहाँ से लाया गया। सभी के चेहरे उदास थे, क्योंकि सूर्योदय से पूर्व यदि इस दिव्य शक्ति को नहीं हटाया गया तो लक्ष्मण जीवित नहीं रह पाएंगे और लक्ष्मण को कोई छू भी नहीं सकता, क्योंकि छूने वाला भी मर सकता है। क्या करें, क्या नहीं करें? तभी एक अपरिचित व्यक्ति ने तंबू (जिसमें राम-लक्ष्मण आदि विशेष व्यक्ति थे) में प्रवेश करना चाहा। भामण्डल ने उसे रोककर पूछा–''तुम कौन हो? किसके आदमी हो? कहाँ से आये हो? और अंदर क्यों जाना चाहते हो?'' इन प्रश्नों के उत्तर में उसने कहा–''मेरे पिता का नाम चंद्रमण्डल है और माँ का नाम सुप्रभा है। मेरा नाम चंद्रप्रतिम है। मैं देवगीतपुर का रहने वाला हूँ, राम की महिमा सुनकर दर्शन करने आया था। यहाँ आए हुए मुझे एक महीना बीत गया है, परंतु राम के दर्शन नहीं मिले। आज सही व आवश्यक समय जानकर धृष्टता करते हुए भी राम के पास जाना चाहता हूँ, क्योंकि लक्ष्मण की शक्ति दूर करने का उपाय मैं जानता हूँ। आप मुझे अंदर जाने दीजिए नहीं तो अनर्थ हो जायेगा।'' तब भामण्डल द्वार पर किसी अन्य व्यक्ति को बिठाकर स्वयं उसे राम के पास ले गये।

चंद्रप्रतिम ने राम को नमस्कार कर कहा–''हे श्री राम! एक बार में आकाश में विचरण कर रहा था, तभी वहाँ पास से मेरा शत्रु राजा निकला, हम दोनों में एक सुंदरी के कारण शत्रुता हुई थी। उसने मुझे देखते ही युद्ध छेड़ दिया और गुस्से में जब मुझ पर 'चण्डरवा' नामक शक्ति फेंकी, तो उस शक्ति से मैं घायल होकर अयोध्या के पास स्थित महेन्द्र उद्यान में जा गिरा। मेरे पुण्योदय से वहाँ भरत घूम रहे थे, उन्होंने जैसे ही मुझे देखा तो तुरंत अपने महल से दिव्य सुगंधित जल लाकर मुझ पर छिड़का, उससे मेरे शरीर से शक्ति निकल गई और मैं ठीक हो गया।''

स्वस्थ होने के बाद मैंने भरत से पूछा–''हे देव! आपने मुझ पर बड़ा उपकार किया है। आप कौन हैं और यह औषधि क्या है? आपको इस औषधि के बारे में कैसे पता चला?''

तब भरत ने कहा–''मैं राजा दशरथ का पुत्र भरत हूँ। एक बार हमारा देश महारोगों से पीड़ित हो गया था, एक भी व्यक्ति रोग की चपेट में आने से नहीं बचा था। केवल हमारे अधीनस्थ द्रोणमेघ राजा और उनकी प्रजा निरोग बची थी, वे हमारे मामा हैं।'' जब मुझे इस बात का पता चला, तो मैंने उनसे पूछा–''हे मामाजी! आप लोग कैसे नीरोग बचे हो? हमें भी उसी उपाय से निरोग कर दीजिए।''

तब उन्होंने दिव्य सुगंधित जल लाकर मुझ पर, परिवार और देशवासियों पर छिड़का, जिससे हम सब रोग रहित हो गए। ये वही जल है जिसे मैंने तुम पर छिड़का है।

जब मैंने अपने मामा से इस जल के बारे में पूछा, तो उन्होंने बताया कि, ''मेरी सर्वगुणसम्पन्न 'विशल्या' नाम की श्रेष्ठ पुत्री है, उसके गर्भ में आने से पूर्व हमारी पटरानी कई रोगों से पीड़ित थी, लेकिन पुत्री के गर्भ में आते ही उसके सारे रोग नष्ट हो गए। हम सब आश्चर्य में पड़ गए कि यह अचानक कैसे हुआ? रानी धर्मध्यान में विशेष मन लगाने लगी और शुभ मुहूर्त में कन्या को जन्म दिया। जन्म से ही पुत्री के शरीर से सुगंध निकलती थी, इसलिए उसे हम 'सुगन्धा' भी कहते थे। उसके स्नान के जल से, उसके शरीर को छूकर आने वाली हवा से और उसके हाथ से चंदनादि का लेप करने से बड़े-बड़े रोग दूर होते हैं।'' मामा द्रोण के द्वारा ऐसा बताये जाने पर हम लोगों ने विशल्या का सम्मान किया, जब हम सम्मान करके अयोध्या की ओर लौट रहे थे, तब हमें रास्ते में 'सत्वहित' नामक आचार्य के दर्शन हुए। मैंने नम्रता के साथ उनसे पूछा कि–''विशल्या कौन थी और उसके शरीर से दिव्य सुगंध किस कारण से आती है?'' वे चार ज्ञान के धारी मुनिराज इस प्रकार कहने लगे।

विदेहक्षेत्र में पुण्डरीक नामक देश है, उस देश के चक्रपुर नगर में त्रिभुवनानंद नाम का चक्रवर्ती रहता था। उसके 22 हजार पुत्र थे तथा अनंगशरा नाम की एक कन्या थी, जो अपूर्व सुंदरी और गुणों से अलंकृत थी।

त्रिभुवनानंद चक्रवर्ती का एक पुनर्वसु नाम का सामन्त था, वह प्रतिष्ठापुर का स्वामी था। एक बार वह किसी काम से जा रहा था, तब उसे बगीचे में खेलती हुई अनंगशरा दिखाई दी। उसे देखकर वह कामवासना से घायल हो गया और तुरंत उसका अपहरण कर लिया। वह जोर-जोर से रोने व चिल्लाने लगी–''हे पिताजी! मुझे बचाइए, ये दुष्ट पापी मुझे ले जा रहा है। रक्षा करो, रक्षा करो।''

उसकी आवाज सुनकर सैनिक और चक्रवर्ती के पुत्र दौड़कर आए, इन सबको देखकर वह डर गया और अनंगशरा को 'श्वापद' के घने महावन में छोड़कर, अपने प्राण बचाने के लिए विमान पर चढ़कर तेजगति से भाग गया।

अनंगशरा को बहुत खोजा गया, लेकिन वह नहीं मिली। उसे कोई जंगली जानवर खा गया होगा, यह सोचकर दु:खी मन से सब वापिस लौट आये।

उस महाभयानक महावन में अपने आपको देखकर अनंगशरा सोचने लगी, ''क्या मैं वहीं चक्रवर्ती की बेटी हूँ या कोई और हूँ? और यह भयानक स्थान कहाँ है?'' उसका समय रो-रोकर गुजरता था। वह जंगल के फल व पत्तों का भोजन करती थी और पंच परमेष्ठी का स्मरण करती हुई समय बिता रही थी। वह इतनी धार्मिक हो गई कि हर कदम धरती देखकर रखती थी, पककर अपने आप गिरे हुए फल खाती थी, वह बाला कभी एक बार पानी लेती थी, जिससे वह बहुत कृश हो गई थी। इन महादु:खों को भोगते-भागते उसने 3 हजार वर्ष तक बाह्य तप किए, जब उसे जीवन की डोर टूटने की आशंका हो गई तो उसने चारों प्रकार के आहार का त्यागकर सल्लेखना ग्रहण कर ली। उसने यह भी नियम ग्रहण किया कि वह 100 हाथ से आगे की भूमि पर कदम नहीं रखेगी।

उसे सल्लेखना व्रत लिये 6 दिन बीत गये तब सातवें दिन चक्रपुर नगर का रहने वाला लब्धिदास व्यापारी मेरू की वंदना कर उसी जंगल के रास्ते से लौट रहा था। उसने अनंगशरा को ध्यानमग्न देखा, उसके दर्शन किए और परिचय पूछा।

अनंगशरा ने अपना परिचय बता दिया तब व्यापारी ने उससे कहा–''बेटी! मैं आपके पिताजी को अच्छी तरह जानता हूँ। आप मेरी बेटी के समान हो, मुझ पर विश्वास करो और मेरे साथ चलो, मैं आपको शीघ्र ही आपके पिताजी के पास सकुशल पहुँचा दूँगा।'' तब उसने कहा–''हे धर्म पिता! शायद अब मेरे नसीब में पिता के दर्शन नहीं है।'' लब्धिदास सेठ ने कहा–''बेटी! ऐसा क्यों कह रही हो? मैं अभी तुम्हें पहुँचा देता हूँ।'' अनंगशरा ने सेठ को अपने सल्लेखना व्रत के विषय में बताकर उसके साथ जाने से इंकार कर दिया। तब सेठ ने कहा–''पुत्री! मैं तुम्हारे पिता को तुम्हारे सकुशल होने की सूचना देकर आता हूँ। वे बहुत प्रसन्न होंगे।'' अनंगशरा ने कहा–''आपको जैसा उचित लगे, वैसा कीजिए, मुझे तो संसार से विरक्ति और पंचपरमेष्ठी में भक्ति उत्पन्न हुई है।''

लब्धिदास बिना देरी किए चक्रपुर में त्रिभुवनानंद चक्रवर्ती के पास गया और सारा समाचार सुनाया। चक्रवर्ती भी उसी हालात में लब्धिदास को साथ लेकर उस जगह आये, जहाँ अनंगशरा थी। उसके पीछे-पीछे उसके बाईस हजार पुत्र, मंत्री और प्रजानन भी आये।

जब तक चक्रवर्ती आदि अनंगशरा के पास पहुँचे, तब तक एक अजगर ने उसे निगलना शुरू कर दिया था। अजगर को मारने के लिए चक्रवर्ती ने तलवार निकाली। वे उसे मारने ही वाले थे, त्योंही अनंगशरा ने कहा–''हे दयालु पिताजी! पुत्री के मोह

में पड़कर इस निरपराध जीव की हिंसा मत कीजिए। यह पशु अनजान है, पेट भरने के लिए मुझे भोजन बना रहा है। मैंने इस अजगर को अभयदान दिया है, अतः आपसे हाथ जोड़कर निवेदन है कि आप भी इसे अभयदान दीजिए। इसे मारकर भी मैं आपसे नहीं मिल पाऊँगी, क्योंकि मैंने सल्लेखना ले रखी है।'' चक्रवर्ती कहते हैं–''बेटी! अजगर के नहीं रहने पर आपकी सल्लेखना तो शांति से हो सकेगी।'' अनंगशरा कहती है–''पिताजी! शरीर से मोह रहे तो सल्लेखना शांति से नहीं हो सकती, अतः मुझे शरीर से मोह नहीं है। आपको दुर्गति के कार्य से रोकना चाहती हूँ, पिताजी! आप इसे क्षमा कर दीजिए।''

बेटी के उद्‌गारों से चक्रवर्ती ने निरूत्तर होकर, उठी हुई तलवार धरती पर पटक कर रूंधे कंठ से बेटी से कहा–''बेटी! बेटी हो तो आप जैसी हो, खुद भी तरे और पिता आदि को भी तारे। बेटी मैं मोही हूँ, आपकी दशा को देखकर मेरा रोम-रोम रो रहा है।''

अनंगशरा कहती है–''पिताजी! रोइए मत; रोना, शोक, दुःख, मातम आदि असाता वेदनीय के कारण हैं। शांत होइए और सल्लेखना की अनुमोदना कीजिए।''

चक्रवर्ती कहते हैं–''बेटी! मैं आपकी अंतिम भावना को नहीं बिगाडूँगा, मैं इसे क्षमा करता हूँ और आपके धर्मकार्य की अनुमोदना करता हूँ।''

फिर अनंगशरा ने पंचपरमेष्ठी के ध्यान में अपनी आँखें मूंद ली, तब सभी रोते हुए कहने लगे कि, ''हमने अपने जीवन में ऐसी सल्लेखना पहली बार देखी है।'' लोगों की अश्रुवर्षा, करुण क्रन्दन के बीच अजगर ने धर्मात्मा अनंगशरा को निगल लिया। इस दृश्य को देखकर बहुत लोगों ने दीक्षा ली, साथ ही त्रिभुवनानंद चक्रवर्ती, उसके बाईस हजार पुत्रों ने और लब्धिदास आदि प्रमुख लोगों ने भी दीक्षा ग्रहण की। अनंगशरा देह छोड़कर ईशान स्वर्ग में गई।

पुनर्वसु विद्याधर वर्षों बाद लौटकर उसी जंगल में आया। उसने अनंगशरा को खोजा, किंतु वह नहीं मिली, तब उसे भी वैराग्य हुआ। उसने 'द्रुमसेन' मुनि से दीक्षा ग्रहण की और कठोर तपश्चरण कर स्वर्ग गया। स्वर्ग से आकर वह लक्ष्मण बना और अनंगशरा स्वर्ग से आकर द्रोणमेघ राजा की विशल्या नाम की पुत्री बनी। पूर्व पुण्य के उदय से उसके शरीर से सुगंध आती है और उसके स्नान के जल से अनेक रोग ठीक हो जाते हैं।

भरत ने सत्वहित आचार्य से पूछा कि, किस कारण से वे सब बीमार हुए थे?

तब मुनिराज ने कहा–''विन्ध्या नाम का एक व्यापारी ऊँट, घोड़े, भैंस आदि लेकर अयोध्या आया था। उसका एक भैंसा नगर के बीच में बीमार होकर गिर पड़ा।

लोग उस पर पत्थर आदि फेंकते तथा कोई लात मारकर निकल जाता, सारे लोग उसे परेशान करते थे। वह अकाम निर्जरा करते हुए मरा, जिससे वह 'वाय्वावर्त' नाम का वायुकुमार जाति का देव बना। उसने अवधिज्ञान से अपने मरण का कारण जाना, तब उसे बहुत गुस्सा आया। गुस्से में उसने अयोध्या आकर ऐसी विषभरी हवा चलाई जिससे सभी लोग बीमारियों से घिर गए। जब आपने पुण्यात्मा विशल्या के स्नानजल को सब पर छिड़का तब उस पवित्रात्मा के सुगंधित जल के सामने उसकी एक न चली और वह देव चला गया। विशल्या का पुण्य उस देव से अधिक था, इसलिए आप सब रोग रहित हो गये।''

चन्द्रप्रतिम विद्याधर राम से कहता है कि, ''यह कथा भरत ने जिस प्रकार मुझसे कही, मैंने उसी प्रकार आपसे कही है। अब देरी किए बिना विशल्या का स्नान जल लाइए और लक्ष्मण को ठीक कीजिए।'' फिर राम ने हनुमान, भामण्डल, अंगद को अयोध्या भेजा। जब हनुमान आदि अयोध्या पहुँचे, तब भरत सो रहे थे। भामण्डल ने संगीत से भरत को जगाया, फिर हनुमान ने सारा वृतांत उनको सुनाया। जिसे सुनकर भरत को रावण के प्रति क्रोध उबल पड़ा और वो स्वयं जाने को तैयार हुए, परंतु भामण्डल ने यह कहकर मना किया कि ''यहाँ से लंका बहुत दूर है और बीच में लवण समुद्र है जिसे आप पार नहीं कर पायेंगे। आप हमें लक्ष्मण की शक्ति को दूर करने के लिए विशल्या का स्नान जल लाकर दीजिए।''

भरत ने कहा–''विशल्या का स्नान जल क्यों, आप विशल्या को ही ले जाइए। मुनिराज ने पूर्व में बताया था कि वह लक्ष्मण की पटरानी बनेगी।'' फिर भरत ने दूत एवं कुछ सम्माननीय व्यक्तियों को विशल्या को लाने के लिए भेजा। जब दूत ने भरत के समाचार एवं आदेश राजा द्रोणमेघ को सुनाये, तो वे विशल्या को विवाह से पूर्व लक्ष्मण के पास भेजने के लिए तैयार नहीं हुये।

तब चतुर दूत ने कहा–''आप पिता हैं, ठीक कर रहे हैं, पर परिस्थिति भी तो देखिए, यदि विशल्या नहीं जायेगी तो लक्ष्मण सुबह तक निर्जीव हो जायेंगे।''

इसी बीच में गुस्से में आकर द्रोणमेघ के पुत्र बोले–''अरे वाचालदूत! राजन् जितना कह रहे हैं उतना कर, रही बात विशल्या के विवाह की तो हम उसका विवाह धूमधाम से करेंगे, ऐसे रात में विदा नहीं करेंगे, उसी में हम लोगों की प्रतिष्ठा है। यदि राजा भरत जिद करेंगे तो हम युद्ध के लिए तैयार हैं।''

दूत का संदेश चारों ओर फैल गया, सब युद्ध को तैयार हैं, लेकिन युद्ध रात में संभव नहीं है, सुबह तक लक्ष्मण निर्जीव हो जायेंगे, सभी चिंतित थे। तभी कैकयी ने भरत से कहा–''मैं अपने भाई को समझाऊँगी, वह मेरी बात नहीं टालेंगे। मुझे उनके पास ले चलो।''

भामण्डल आदि कैकयी को वहाँ ले गये, फिर उसने द्रोणमेघ से कहा–''भैय्या! विशल्या को लक्ष्मण के पास भेज दो।'' द्रोणमेघ बोला–''बहिन! मुनिवाणी के अनुसार यह विशल्या लक्ष्मण की पटरानी बनेगी, लेकिन हमारा बस इतना कहना है कि हम रात को नहीं भेजेंगे, सम्मान के साथ विदा करेंगे।''

कैकयी ने कहा–''भैय्या! लोगों की चिंता तो ठीक बात है, पर परिस्थितियाँ देखकर कोई दोष नहीं देता है। आप स्वयं सोचिये, वही जीवन-मरण के झूले में झूल रहा है, जिससे विवाह होना है। वह नहीं रहेगा तो किससे विवाह कराओगे? विशल्या भी उसको पति मान चुकी है, वह भी बेचैन होगी। आप क्यों जिद कर रहे हो? यदि कोई संशय है तो मैं उसके साथ चली जाऊँगी।''

द्रोणमेघ–''नहीं-नहीं बहिन, कोई संशय नहीं है पर...।'' कैकयी बोली–''परंतु किंतु कुछ नहीं, सब छोड़िये और मेरे कहने पर विशल्या को भेज दीजिए।''

द्रोणमेघ–''ठीक है बहना! जिसे कल भेजना है, उसे आज ही ले जाइए।''

कैकयी–''भैय्या आपको बहुत-बहुत धन्यवाद जो आपने हमारा मान रखा।'' इसके बाद सौ दासियों के साथ विशल्या को विमान पर बिठाकर भामंडल, हनुमान आदि लंका की ओर शीघ्र ही रवाना हुए और सीधे शिविर में पहुँचे। राम आदि की निगाहें वहीं पर थीं, सबको अपार खुशी हुई। वह ज्योंही विमान से उतरी त्योंही लक्ष्मण के शरीर में हलचल शुरू हो गई। ज्यों-ज्यों वह लक्ष्मण की ओर आती गई, त्यों-त्यों लक्ष्मण को होश आता गया और विशल्या के आते ही पूरा होश आ गया। विशल्या ने सबसे पहले राम को नमस्कार किया फिर यथाक्रम से सबको किया। इसके बाद राम की अनुमति से विशल्या ने लक्ष्मण के शरीर पर लेप लगाया तो शक्ति निकलकर जाने लगी, तभी हनुमान ने उस शक्ति को उछलकर पकड़ लिया, तब वह गिड़गिड़ाकर कहने लगी–''हे देव! मुझे छोड़ दीजिए, हम हीन पुण्यशाली देवियाँ पराधीन होती हैं, मंत्रों के आधीन होती हैं। जो मंत्रों को सिद्ध करता है हम उसके आधीन हो जाती हैं। हमारे स्वामी देवता हमें जिसे सौंपते हैं हम उसके आधीन हो जाती हैं। मैंने लक्ष्मण को परेशान नहीं किया, उस समय मैं रावण के आधीन थी। उसने मुझे चलाया और मैं लक्ष्मण के शरीर में घुस गई। इसमें मेरा कोई दोष नहीं, मुझे छोड़ दीजिए।'' हनुमान बोले–''आप रावण के पास कैसे आईं?''

शक्ति कहती है–''मैं प्रज्ञप्ति की बहिन 'अमोघविजया' हूँ। एक बार रावण रत्नावली से विवाह करने के लिए मंदोदरी आदि के साथ जा रहा था, अचानक उसका विमान अटका। जब उसने नीचे देखा, तब उसे वहाँ 'बालि' मुनि दिखाई दिए। उसे गुस्सा आया और गुस्से में वह पर्वत उठाने लगा, तब मुनिराज ने सोचा ''इस पर्वत पर भरत चक्रवर्ती के द्वारा स्थापित रत्नमयी अनेक जिनबिम्ब हैं, पशु-पक्षियों के

स्थायी निवास हैं। रावण के द्वारा उठाने पर पर्वत हिल जायेगा, जिससे बहुत क्षति होगी, इसलिए इसे रोकना चाहिए।'' यह सोचकर उन्होंने दाहिने पैर के अंगूठे से पर्वत को धीरे से दबाया। बालि मुनि को कायबल ऋद्धि प्राप्त थी, इसलिए उनके द्वारा धीरे से दबाते ही रावण दबने लगा, भले ही वह वज्रवृषभनाराच संहनन का धारी था, फिर भी उसकी ताकत मुनि के सामने कुछ भी नहीं थी। वह रोने लगा, तब देवताओं ने उसका नाम 'दशानन' से 'रावण' रखा। उसके रोने की आवाज सुनकर मंदोदरी भागकर आयी। वह तुरंत सब समझ गई और मुनिराज से क्षमा माँगने लगी, तब मुनिराज ने दबा हुआ अंगूठा वापिस हटा लिया। रावण को अपनी गलती व शक्ति का एहसास हो गया। उसने मुनिराज के चरण पकड़ लिए, बार-बार क्षमा माँगी और भक्ति में लीन हो गया। वह अपने हाथ की नस को निकालकर तांतरूप में बजाकर अनेक राग-रागनियों द्वारा जिनेन्द्र भगवान की स्तुति करने लगा। उसकी भक्ति से प्रभावित होकर धरणेन्द्र आया और कुछ माँगने को कहा। लेकिन रावण ने कहा–''जिनेन्द्र भक्ति के समान कल्याणकारी कोई वस्तु नहीं हैं।''

तब धरणेन्द्र ने कहा–''हे दशानन! मेरा मिलन तुम्हें व्यर्थ सिद्ध न हो, इसलिए मैं तुम्हें 'अमोघविजया' नामक विद्या देता हूँ।''

इस प्रकार मैं रावण के पास आई। मैं देवों को भी पराजित करने की सामर्थ्य रखती हूँ।'' तब हनुमान ने कहा–''हे अमोघविजया! तुम इतनी ही शक्तिशाली हो तो विशल्या के आते ही क्यों भागी जा रही हो?'' अमोघविजया ने कहा–''हे देव! सब पुण्य और पाप की लीलाएँ हैं। विशल्या ने पूर्वभव में अनंगशरा की पर्याय में ऐसा कठोर तप किया था, जो प्रायः मुनियों के लिए भी असंभव व अशक्य था। उसके द्वारा संचित पुण्य के सामने हमारा पुण्य कुछ भी नहीं है। हमारी शक्ति उसके पुण्य के सामने इतनी कम है कि उसकी हवा से ही हम जैसे हीन पुण्यवाले भाग जाते हैं।'' विशल्या का सारा वृतान्त सुनकर हनुमान बहुत प्रसन्न हुए और अमोघविजया को छोड़ दिया।

इधर विशल्या के द्वारा स्पर्शित गोशीर्ष चंदन दासियों के द्वारा इंद्रजीत व कुंभकर्ण के पास भेजा गया, जिससे वे भी स्वस्थ हो गये। लक्ष्मण स्वस्थ होते ही कहते हैं–''रावण कहाँ है?'' तब राम ने सारी घटना बताई और कहा कि, ''विशल्या के कारण ही तुम्हें नया जीवन मिला है। इसके हम सभी पर बहुत उपकार हैं।'' इसी बीच विशल्या नीचे गर्दन करके बोली–''हम तो आपकी सेविका हैं, उपकार तो पुण्य ने किया है, इसी पुण्य ने आप जैसे महापुरुषों का संयोग कराया है।''

तभी राम ने लक्ष्मण से कहा–''मुनियों की वाणी के अनुसार ये आपकी पटरानी होगी, इसलिए आपसे इसका विवाह कराना है। यही उपकार का आंशिक प्रत्युपकार होगा।'' तब लक्ष्मण बोले–''ठीक है भैय्या! हम इन्हें अपनी पटरानी घोषित करते हैं।'' तब सभी ने कहा–''शुभस्य शीघ्रम्।''

राम ने कहा–''भले ही युद्ध होता रहे, आप दोनों का विवाह यहीं कर देते हैं।'' लक्ष्मण ने पूछा–''क्या युद्धभूमि में विवाह उचित है?''

तब राम ने कहा–''लक्ष्मण! उपकार का प्रत्युपकार करने में देरी नहीं करना चाहिए। कहीं हम उपकार चुकाए बिना ही मारे गए तो? इसलिए हम संक्षिप्त विधि से विवाह करा देते हैं।'' लक्ष्मण मौन रह गए, तब युद्ध भूमि ही विवाह भूमि बन गई, विवाह के लिए मण्डप बनाया गया। राम पक्ष के सभी राजाओं की उपस्थिति में विशल्या के साथ लक्ष्मण का विवाह कराया गया।

विवाहोत्सव के बाद लक्ष्मण और रावण में युद्ध हुआ और रावण की मृत्यु हुई। राम और सीता का मिलन हुआ, इसके उपरांत सभी लोग अयोध्या लौट आए, फिर भरत ने दीक्षा ली और कुछ समय बाद सीता पर आरोप लगाया गया, उसकी अग्नि परीक्षा हुई। अग्नि परीक्षा के बाद सीता ने दीक्षा धारण की। सभी सुख से रह रहे थे।

एक बार स्वर्ग में मनुष्य लोक के जीवों के परस्पर वात्सल्य की चर्चा हो रही थी, तब इंद्र ने कहा–''मनुष्यलोक में इस समय बलदेव राम और लक्ष्मण के बीच परस्पर जैसा वात्सल्य है, वैसा अन्य कहीं नहीं है। दुनिया में स्नेह का बंधन सबसे खतरनाक होता है। राम और लक्ष्मण एक दूसरे में अनुरक्त रहते हैं। लक्ष्मण पलभर भी न दिखें तो राम बैचेन हो जाते हैं।''

इन्द्र की इन बातों को सुनकर, राम और लक्ष्मण के प्रेम की परीक्षा के लिए रत्नचूल और मृगचूल नाम के दो देव अयोध्या आये। ''जिनके बिना राम पलभर में व्याकुल हो जाते हैं, वह लक्ष्मण राम की मृत्यु का समाचार सुनकर क्या करते हैं?'' यह सोचकर वे लक्ष्मण के पास जाकर कहने लगे–''राम की मृत्यु हो गई है।'' इस वाक्य को अधूरा ही सुन लक्ष्मण सिंहासन से गिर गये और गिरते ही उनके प्राण पखेरु उड़ गये।

लक्ष्मण की मृत्यु के बाद विशल्या ने आर्यिका दीक्षा धारण की, कठोर तपस्या की और समाधिमरण करके स्वर्ग में देव बनी। वह शीघ्र ही मोक्ष प्राप्त करेगी।

धर्मस्नेही बंधुओं! तप में अनूठी शक्ति है। इसी तप के माध्यम से सती विशल्या ने रोगों को नष्ट करने की शक्ति प्राप्त की थी। अत: हम भी अपने तप को बढ़ाकर जन्म-जरा-मृत्यु रूपी रोगों को दूर भगायें एवं दूसरों के रोगों को भगाने में भी निमित्त कारण बनें।

श्रेष्ठ समर्पण

भरतक्षेत्र के अंतिम छोर पर लवण समुद्र के किनारे आग्नेय दिशा में एक दंती नाम का पर्वत है, वह बहुत रमणीक है, उस पर विद्याधर राजा महेन्द्र ने महेन्द्रपुर नाम का नगर बसाया था। राजा दानी और पराक्रमी था, इसलिए उस स्थान को लोग 'महेन्द्रगिरि' नाम से जानने लगे। राजा महेन्द्र की हृदयवेगा नाम की रानी थी, अरिंदम आदि सौ पुत्र और अंजना नाम की गुणवती पुत्री थी। अंजना सबसे छोटी थी, जब वह युवा अवस्था को प्राप्त हुई, तब सभी ने उसके लिए वर ढूंढने की चिंता प्रगट की। सभी मंत्रियों ने अपने-अपने सुझाव दिये, अंतिम एक मंत्री ने कहा–''विजयार्द्ध पर्वत के दक्षिण की ओर एक पंक्ति में आदित्यपुर नाम का एक नगर है। वहाँ के राजा प्रहलाद हैं, उनकी रानी केतुमती हैं, इनके एक ही पुत्र है 'पवनंजय'। वह अंजना के लिए हर तरह से योग्य है, उसको हमारी कन्या के लिए वर रूप में देखा जाये तो अच्छा होगा। सभी मंत्रियों ने हाँ में हाँ मिलायी। राजा भी बड़ा प्रसन्न हुआ।''

इसी बीच फाल्गुन मास का अष्टान्हिका पर्व आया, तब राजा प्रहलाद सभी के साथ कैलाश पर्वत पर पूजा करने को गये। संयोग से राजा महेन्द्र भी पर्व मनाने के लिए कैलाश पर्वत पर आया। दोनों पूजा-पाठ करके एक स्थान पर बैठ गए। आपस में जय जिनेन्द्र के पश्चात् कुशल वार्तालाप हुआ। राजा महेन्द्र ने कहा–''राजन्! कन्या के लिए योग्य वर पाने की चिंता में मेरा मन बड़ा दु:खी रहता है। हमारे मंत्रीमंडल व परिवार के लोगों से सलाह लेने के उपरांत सबने यही कहा है कि, अपनी पुत्री पवनंजय को दी जाये। हम अष्टान्हिका पर्व के बाद आने ही वाले थे पर पुण्योदय से आप यहाँ मिल गए। बताइये, आपका हमारी पुत्री के बारे में क्या विचार है?'' राजा प्रह्लाद ने कहा–''मित्र! हमें भी अपने पुत्र के लिए योग्य कन्या की तलाश थी, पुण्योदय से सहज ही समागम हो गया। हमने आपकी पुत्री के गुणों के बारे में बहुत सुन रखा है, असहमति का प्रश्न ही नहीं है, बल्कि आपका हम पर उपकार ही होगा यदि आप अपना कन्यारत्न हमें सौपेंगे।''

अंजना के पिता ने अष्टान्हिका पर्व के बाद पर्वत के सुंदर तट पर उसका मंगल विवाह करने की इच्छा की, क्षणभर में ही यह समाचार चारों ओर फैल गया, तैयारियाँ शुरू हो गईं। पवनंजय ने मित्रों के मुख से अंजना की प्रशंसा सुनी तो वह उसे देखने के लिए बेचैन हो गया। उसे एक दिन का भी इंतजार सहन नहीं था। उसका धैर्य छूट गया था, हृदय शून्य रहने लगा था। निरंतर वह अंजना के बारे में ही सोच रहा था।

उसने सारी बात अपने मित्र प्रहस्त को बताई और कहा–''तुम मुझे जीवित और सुखी देखना चाहते हो तो मुझे अंजना से मिला दो, नहीं तो मैं मर जाऊँगा।''

प्रहस्त ने कहा–''मित्र! दु:खी मत हो, तुम्हारी खुशी में ही मेरी खुशी है।'' इस प्रकार दोनों मित्र बिना किसी को बताये वहाँ से चल पड़े। अपनी विद्या के सहारे वे क्षणभर में ही महेन्द्रगिरि पर आ गए और महल की सातवीं मंजिल पर झरोखे में छिपकर बैठ गए। अंजना को अपलक निगाहों से देखते हुए पवनंजय आनंद से भर गए। उस समय अंजना सहेलियों से घिरी हुई थी। वे सब विवाह की चर्चा में मशगुल थीं। बीच में ही बसंततिलका ने कहा–''हे अंजना! तुम कितनी भाग्यशालिनी हो, जो तुम्हें तुम्हारे अनुरूप पवनंजय जैसा साथी मिला। तुम उनके साथ बहुत ही प्रसन्न रहोगी।'' इस पर अंजना कुछ नहीं बोली, पैर के अंगूठे से जमीन कुरेदने लगी। इसी बीच मिश्रकेशी ने कहा–''अंजना! विद्युत्प्रभ को छोड़कर अन्य श्रेष्ठ वर नहीं है, पवनंजय की तुलना में वह कई गुना ज्यादा श्रेष्ठ था, क्योंकि वह नम्र है, सौम्य है, धीरवीर है और विद्याओं का पारगामी है। तुम्हारा उसके साथ संबंध बेजोड़ होता। विद्युत्प्रभ के साथ तुम्हारा एक पल का संबंध भी विशाल सुख का कारण होता, जो दूसरों के साथ बहुत समय बिताने पर भी नहीं मिलेगा।''

मिश्रकेशी पर पवनंजय को बहुत गुस्सा आ रहा था, साथ ही अंजना पर भी कि वह विरोध क्यों नहीं कर रही है? क्रोध के कारण उसका शरीर काँपने लगा। उसने म्यान से तलवार निकाली, तब प्रहस्त ने कहा–''मित्र! चाहे कितना ही क्रोध आये, पर स्त्रियों पर हथियार नहीं उठाना चाहिए।'' पवनंजय ने प्रहस्त से कहा–''विद्युत्प्रभ अंजना को प्रिय है, तभी वह उसका प्रतिकार नहीं कर रही है, इसलिए मैं उसका मस्तक काटना चाहता हूँ।'' प्रहस्त ने समझाया कि ''ऐसी बात नहीं होगी, स्त्रीजन की यह लज्जा की प्रवृत्ति होती है, जिससे उसने प्रतिकार नहीं किया।'' द्वेष से भरे पवनंजय ने कहा–''जल्दी चलो, कहीं इसके शरीर से छुई हवा मुझे न स्पर्श कर जाये।'' दोनों मित्र तुरंत ही वहाँ से लौट आये।

पवनंजय ने प्रहस्त से कहा–''शीघ्र ही अपने नगर लौटने हेतु सेना को प्रस्थान करने की आज्ञा दो।'' आदेश से सेना पुनरागमन को उद्यत हुयी।

अंजना को घोड़े आदि की आवाजें सुनाई दीं। वह विचारने लगी–हे देव! मुझे कैसे दिन दिखाओगे? लगता है वे यहाँ मुझसे मिलने आये थे, परंतु मेरी इन सखियों की ठिठोलियों को सुनकर, सच समझकर, नाराज होकर मुझसे बिना बोले ही लौट गए हैं, कहीं मैं उनके द्वेष का पात्र न बन जाऊँ। मित्रकेशी ने शायद मेरे प्रिय को दु:खी कर दिया है, यदि ऐसा हुआ तो मैं जीते जी मृत समान हो जाऊँगी।

राजा महेन्द्र जमाता को सेना सहित प्रयाण करते देख सपरिवार मंत्रियों सहित राजा प्रह्लाद के समीप आये और प्रस्थान का कारण पूछा। तदुपरांत दोनों पवनंजय के निकट गए और उससे अकस्मात प्रत्यावर्त्तन करने का कारण पूछा।

राजा प्रह्लाद ने कहा–''हे पुत्र! सदैव सभी अवस्थाओं में गुरुजनों की आज्ञा का पालन करना चाहिए, अतएव प्रस्थान करने का विचार त्याग कर हमारा मनोरथ पूर्ण करो। क्रोधाग्नि से भरे पवनंजय ने गुरुजनों, पिता आदि का मान रखते हुए प्रत्यागमन का विचार त्याग दिया और मन ही मन निश्चय किया कि–''मैं विवाह इससे ही करूँगा परंतु इसे अपनाऊँगा नहीं, यही इसके लिए सबसे बड़ा सबक होगा।

कुछ समय बाद दोनों का विवाह बड़े समारोह के साथ सम्पन्न हो गया। अंजना की विदाई हुई और वह ससुराल आ गई। विवाह के बाद पवनंजय ने अंजना को ऐसे छोड़ दिया, जैसे मुनि घर-परिवार को छोड़ देते हैं। वह बेचारी पवनजंय के मुख से अपना नाम सुनने को तरसती थी, पवनंजय की एक प्रेम भरी निगाह के लिए तरसती थी। वह धीरे-धीरे बहुत कमजोर हो गई, बड़ों के आग्रह से बड़ी कठिनाई से भोजन करती थी, आँखों से दिन-रात आँसू टपकते थे।

एक बार राजा वरुण और राजा रावण के बीच अहंकार के कारण से बैर-विरोध हो गया और दोनों में युद्ध होने लगा। रावण का पक्ष जब कमजोर दिखने लगा, तब रावण ने राजा प्रहलाद के पास दूत भेजकर मदद माँगी। तब प्रहलाद स्वयं ही सेना लेकर जाने की सोच रहे थे, तभी पवनजंय आया और उसने कहा–''पिताजी! हमारे होते हुए आप जायें, ये हमें शोभा नहीं देता।''

प्रहलाद ने कहा–''बेटा! आप अभी बच्चे हो।'' इस पर पवनंजय ने कहा–''माता-पिता की नजर में बच्चे कितने भी बड़े हो जायें लेकिन उनको बच्चे ही दिखते हैं। पिताजी हमें भी पराक्रम दिखाने का अवसर दीजिए, हम युद्ध करना चाहते हैं, हमें आज्ञा दीजिए।''

प्रह्लाद ने कहा–''बेटा! हमें आपको युद्ध पर भेजकर नहीं, अपितु आपकी बात पूरी करने की खुशी है, जाइए और विजयी होकर लौटिए।''

पंच परमेष्ठी का स्मरण करके पवनंजय ने दाहिना कदम आगे बढ़ाया, तब शुभ शगुन में उसकी दाहिनी भुजा फड़कने लगी। उसकी निगाहें महल के द्वार के खंभे से टिकी अंजना पर गई, उसकी आँखों में आँसू थे। पवनंजय ने उसे देखते ही उस पर से निगाहें हटाकर गुस्से से कहा–''अरी दुष्टा! मेरे सामने क्यों आई है? दूर हट, कुलांगना होकर भी न चाहने वाले पति के सामने क्यों खड़ी है?''

तब भी अंजना ने साहस करके कहा–''हे नाथ! मैं आपके द्वारा परित्यक्ता हूँ फिर भी आपके समीप ही हूँ, इस बात से संतुष्ट होकर व पूर्व कर्मों का फल

जानकर शांतभाव से जी रही हूँ, कि कभी तो पुण्य का उदय आयेगा, परन्तु आज आप युद्ध पर जा रहे हैं, आपके प्रति प्रेम की वजह से आपके सामने आई हूँ।

हम आपका मंगल चाहते हैं, आपके बिना इस संसार में कोई हमारा नहीं है, बस मरण ही शरण है।'' पवनंजय ने कहा–''तब तो मरण की ही शरण लो।''

अंजना ये शब्द सुनकर बेहोश हो गई और पवनंजय हाथी पर सवार होकर सामंतों के साथ युद्ध के लिए चला गया।

शाम होने तक वे मानसरोवर तक पहुँच गए। पवनंजय की निगाहें मानसरोवर पर जमी हुयी थीं, तभी सरोवर के किनारे उन्हें एक चकवी दिखी। वह अकेली होने से बहुत व्याकुल थी, वियोग की अग्नि से झुलस रही थी, पश्चाताप व विरह की विविध चेष्टाओं से व्याप्त थी। वह बार-बार कमलिनी के पत्तों में चकवे को ढूंढ रही थी, तेजी से पंखों को फड़फड़ाती थी, बार-बार ऊपर उड़कर नीचे उतरकर खेद-खिन्न हो रही थी, पानी में अपने ही प्रतिबिम्ब को देखकर पति की आशंका से बुलाती थी, उसके न आने से बहुत शोकाकुल हो रही थी। उसकी करुण आवाज पवनंजय के भीतर तक चुभ गई। वह सोचता है, ''देखो पति से बिछुड़ी चकवी की हालत कितनी दुःखदायक हो गई है। सच है, पति के बिना विवाहिता का जीवन क्या है?'' इसी मानसरोवर पर उनका विवाह हुआ था, उसकी यादें ताजा हो गईं। अब तो उसे अंजना की याद सताने लगी और वह सोचता है ''हाय! सखी के कहने पर मैंने उसे क्यों छोड़ दिया? सच है, जो बिन कारण ही लोगों को दुःखी करते हैं, वे कितने दुष्ट और क्रूर होते हैं। अब मैं क्या करूँ? घर से पिता से आज्ञा लेकर आया था, अब कैसे अंजना के पास जाऊँ? हाय! मैंने उससे ऐसी बात कही है कि मेरे युद्ध से वापिस आने तक तो वह मर ही जायेगी। हाय! मैं क्या करूँ? प्रहस्त से समाधान पूछता हूँ।'' इतने में प्रहस्त आ गया। उसने पवनंजय से पूछा–''मित्र! मानसरोवर जैसे रमणीय स्थान पर उदास क्यों हो?'' पवनंजय ने उत्तर दिया–''अपने आँसू रूपी जल से जिसने प्रेमवल्लरी को सींचा, उस अभागन अंजना के प्रति मुझसे नादानी में घोर अपराध हो गया। आज तो मैंने अपमान की हद ही कर दी है। मैंने अज्ञानता में उसका 22 वर्ष तक अनादर किया है। लेकिन अब उसे देखे बिन एक पल भी रहा नहीं जा रहा है। मित्र, कुछ ऐसा करो जिससे हम दोनों का मिलन हो जाये, नहीं तो हम दोनों का मरण तय है।'' प्रहस्त ने सोचकर कहा–''मित्र! आज्ञा लेकर आये थे, अतः जा नहीं सकते हो, अच्छा यही है कि तुम्हें गुप्त रूप से जाकर सुबह होने से पूर्व वापिस आना होगा। तुम ही उसके प्राणाधार हो। चलो, जल्दी करो।''

इसके बाद मुद्गर सेनापति को सेना की रक्षा का भार सौंपकर और मेरु की वंदना के बहाने दोनों मित्र अंजना के पास आए।

प्रहस्त ने सखी बसंतमाला के द्वारा पवनंजय के आने की सूचना अंजना के पास भेजी, जैसे ही अंजना ने यह सुना तो वह विश्वास नहीं कर पा रही थी, तब प्रहस्त ने कहा–''भाभीजी! यह सच है। पवनंजय तुमसे मिलने आए हैं। आपके दुःख की घड़ियाँ बीत गई हैं।'' अंजना ने कहा–''यह असंभव है?'' बाहर रहकर इन शब्दों को सुनने वाले पवनंजय से रहा नहीं गया, वे तुरंत अंजना के पास आए और कहने लगे–''देवी! आपका सबसे बड़ा अपराधी आपके चरणों में पड़ा है, उसे क्षमा कर दीजिए।'' यह कहकर वह चरणों में झुक गया।

अंजना पवनंजय के व्यवहार से अचंभित होकर तुरंत पीछे हट गई और बोली–''हे प्राणनाथ! आपका स्थान पहले भी हृदय में था, आज भी है और हमेशा रहेगा, आपके चरणों में ही हम संतुष्ट हैं। जो भी अब तक हुआ उसमें आपका दोष नहीं है, हमारे ही कर्मों का उदय था। इस बात से हम खुश हैं कि हमारे पाप कर्म के दिन अब बीत गए। आप आज्ञा दीजिए, यह दासी आपके लिए क्या करे?'' पवनंजय कहता है–''धन्य हो सती, हमने आपको समझने में कितनी बड़ी भूल की है।'' कहते हुए पवनंजय की आँखों में आँसू भर आये। उसके आँसू पोंछते हुए अंजना खुद जोर-जोर से रोने लगी और पूछती है–''हे नाथ! आपको हमारी याद कैसे आई?''

पवनंजय उसे सारी बात बताता है, दोनों रातभर बातें करते हैं। सुबह होने को आई, तब प्रहस्त ने आकर कहा–''मित्र! सुबह होने वाली है, जल्दी चलो।''

पवनंजय जाना नहीं चाहते थे, तब अंजना ने ही कहा, ''हे स्वामी! जाइये, कुछ दिनों की ही तो बात है, जहाँ 22 वर्ष बीत गए, जिसमें मिलन की आशा ही हमने छोड़ दी थी, तो अब तो मैं आपके प्रेम के सहारे पूरा जीवन बिता सकती हूँ।'' पवनंजय ने कहा–''अंजना! आपको छोड़ने में मन घबरा रहा है।''

अंजना बोली–''फिर भी जाना तो पड़ेगा ही, पर नाथ आपके इस तरह आने का पता प्रहस्त और बसंतमाला को ही है, सबको नहीं, यदि कुछ अनहोनी होगी तो कौन विश्वास करेगा? क्योंकि सब जानते हैं कि आप हमसे नफरत करते हैं, यह कोई नहीं जानेगा कि आप पहले जैसे नहीं रहे हैं, अब हमसे प्रेम करते हैं। इसलिए कुछ ऐसा कर जाइए जिससे अनहोनी होने पर लोग हम पर विश्वास करें।'' पवनंजय कहता है–''अंजना! वैसे तो मैं जल्दी ही आ जाऊँगा, फिर भी विश्वास दिलाने के लिए अपना कड़ा आपको देता हूँ, इसे दिखाने पर सब आपका विश्वास करेंगे।'' यह कहकर पवनंजय ने अपने हाथ का कड़ा उतारकर अंजना को निशानी के तौर पर दिया और जल्दी मिलने की आशा के साथ जाने लगा।

अंजना ने जाते हुए पवनंजय से कहा–''नाथ! भूलना मत, आप ही हमारी शरण हैं, जल्दी विजयी होकर लौटिए। हम मंगल कलश लेकर आपकी सबके सामने आरती उतारेंगे।'' पवनंजय 'ऐसा ही होगा' ऐसा कहकर निकल गया।

अंजना बहुत देर तक पवनंजय को नम आँखों से देखती रही। आज वह बहुत प्रसन्न थी, उसकी प्रसन्नता देखकर सासु केतुमती उससे ईर्ष्या से जलने लगी। उसे लगा कि मेरा बेटा युद्ध में जीवन से संघर्ष कर रहा है और यह यहाँ पर प्रसन्न है।

कुछ दिन में अंजना का गर्भ बढ़ने लगा, उसके लक्षण दिखाई देने लगे, शरीर गौरवर्ण, गति धीमी और शरीर को आलस्य सताने लगा। गर्भ के लक्षण देखकर केतुमती ने क्रोध से भरकर अंजना से कहा–''मेरा पुत्र तो तुमसे नफरत करता है, फिर ये लक्षण क्यों हैं? कुलटा कहीं की, नीच, कलमुँही! बता, यह पाप तुझमें कहाँ से आया?'' अंजना ने केतुमती को पवनंजय के आने की सारी कहानी रोते-रोते बतायी और निशानी भी दिखाई, पर केतुमती ने उसकी एक भी नहीं सुनी और न उसके दिखाये कड़े पर विश्वास किया। बसंतमाला ने भी अनेक कसमें खायीं पर कुछ नहीं हुआ और केतुमति ने सेवक को बुलाकर कहा–''जाओ, इसको अभी राजा महेन्द्र के पास बिना विलम्ब के छोड़कर आओ।'' वह बेचारा सेवक अंजना को सखी के साथ लेकर चला गया। राजा महेन्द्र के नगर तक पहुँचकर उसने अंजना से रथ से उतरने के लिए कहा और बोला–''देवी! हम आपका विश्वास करते हैं, पर हम तो नौकर हैं। हमें यहीं तक छोड़ने की आज्ञा थी, हमें क्षमा कर दीजिए।'' अंजना बोली–''भाई आपका क्या दोष है? आपकी परिस्थिति को हम समझते हैं, आप शांत मन से जाइए।'' जाते समय सेवक ने कहा–''बेटी! धैर्य मत खोना, सब ठीक हो जायेगा।''

अंजना करुणाजनक विलाप करने लगी, उसे सखी बसंतमाला ने धैर्य बंधाया और पत्तों का बिछोना बिछाया, परंतु उसे नींद नहीं आई। प्रातःकाल होते ही अंजना सखी सहित पिता के घर की ओर चल पड़ी, द्वारपाल उसकी बेरूपता के कारण उसे पहचान न सका। उसने अंजना को महल में प्रवेश करने से रोका, तब बसंतमाला ने सारा वृतांत सुनाया। द्वारपाल ने सारी सूचना राजा को दी, उन्होंने प्रसन्नकीर्ति से कहा–''जाओ, धूमधाम से अंजना को प्रवेश कराओ।'' लेकिन जैसे ही उन्होंने यह सुना कि वह कलंक लगाकर घर से निकाल दी गई है, तब उसने प्रसन्नकीर्ति से कुपित होकर कहा–''मेरे कुल को कलंकित करने वाली पापिनी को नगर से निस्कासित कर दो, मैं उसका मुख तक नहीं देखना चाहता।'' तब महोत्साह नामक बुद्धिमान सामंत ने कहा–''हे नाथ! बिना संपूर्ण घटना जाने ऐसी कठोर आज्ञा देना उचित नहीं है। आप जानते हैं केतुमति का स्वभाव क्रूर है। हो सकता है उसने ही दोष लगा करके निकाल दिया हो, अब आप भी निकाल दोगे तो बेचारी किसकी शरण में जायेगी।'' राजा ने कहा–''इतना तो मैं वर्षों पहले सुन आया था कि अंजना पर उसके पति का रंचमात्र भी अनुराग नहीं है, इस कारण अब मुझे भी इसके शील में संदेह हो गया है। इसलिए इसे निकाल देना ही योग्य है।'' राजा की आज्ञा से द्वारपाल ने अंजना को राजमहल में प्रवेश नहीं दिया।

अंजना पिता से तिरस्कृत होकर विलाप करती हुई सखी सहित नगर के बाह्यवर्ती वन में चली आई। सदी-गर्मी की वेदना से पीड़ित होकर वह करुणाजनक विलाप करने लगी, तब सखी ने उसे हृदय से लगाकर उसके आँसू पोंछे और कहा–''हे स्वामिनी! आपका प्रसूतिकाल निकट है तथा यह स्थान आश्रय रहित है, अतः उठिए, किसी जंतु रहित गुफा में चलकर आश्रय लें।'' अंजनी गर्भ के भार से विश्राम करती हुई चलने लगी। उसके तलवों से रक्तस्राव हो रहा था। वह पर्वत की तलहटी में एक गुफा तक आई और क्लांत होकर उसके मुखद्वार पर बैठ गई।

गुफा में 'अमितगति' नामक चारण ऋद्धिधारी मुनि विराजमान थे। दोनों ने भक्तिभाव से उनके दर्शन किए और कुशलता पूछी। मुनिराज बोले–''पुत्रियों! मेरी तो कुशल है, लेकिन देखो अपने कर्मों की विचित्र गति, राजा महेन्द्र की निरपराध पुत्री को उसके कुटुम्बीजनों ने भी त्याग दिया।''

बसंतमाला कहती है–''हे प्रभो! आप तो बिना बताए ही समस्त घटनाक्रम से परिचित हैं। कृपा करके बतलाइये कि किस कारण अंजना का पति प्रथम तो उदासीन रहा तथा फिर क्यों अनुरागी हुआ? यह क्यों वन में मारी-मारी फिर रही है तथा कौन मंदभागी जीव इसके गर्भ में है, जिससे इसके जीवित रहने में भी संदेह हो रहा है?''

तब मुनिराज ने कहा–''हे पुत्री! अंजना के गर्भ में एक चरमशरीरी उत्तम जीव आया है, यह पुनः जन्म धारण नहीं करेगा और इसी भव से मोक्ष जायेगा। अब तुम दोनों पूर्व का वृतांत सुनो–

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में 'मंदिर' नामक एक नगर था। उस नगर में प्रियनंदी नामक एक गृहस्थ रहता था, उसकी पत्नी का नाम जया एवं पुत्र का नाम दमयंत था।

एक समय बसंत ऋतु में नगर के लोग क्रीड़ा को गए, दमयंत भी गया। दमयंत ने उस वन में महामुनि के दर्शन किए, आख्यान सुनकर सम्यग्दर्शन ग्रहण किया तथा अनेक नियम धारण किये, आहार दान दिया और अंत में समाधिमरण करके स्वर्ग में गया। वहाँ से चयकर वह भरतक्षेत्र के विजयार्द्ध गिरि पर अरुण नगर में राजा सुकण्ठ की रानी कनकोदरी के 'सिंहवाहन' नामक पुत्र हुआ। विरक्त होकर उसने अपने पुत्र लक्ष्मीवाहन को राज्य दे दिया और लक्ष्मीतिलक नामक मुनि से दिगंबर दीक्षा धारण की। घोर तप के प्रभाव से समाधि-मरण कर वह लांतव नामक स्वर्ग में परम ऋद्धिधारी देव हुआ। परमधाम की कामना कर वह वहाँ से चयकर इस अंजना की कुक्षि में आया है। अब पुनः देह धारण न कर परम अविनाशी मोक्ष पद प्राप्त करेगा।

हे कल्याणी! यह अंजना के गर्भ में स्थित जीव के पूर्व जन्मों का वृतांत हुआ। अब इसने जिस कारण से पति का विरह तथा कुटुम्ब से अनादर पाया उसका वृतांत सुनो–जब यह अंजना पूर्व जन्म में कनकोदरी नामक पटरानी थी, तब इसने पटरानी

पद के अभिमान में जिनेन्द्र देव की प्रतिमा मंदिर से बाहर निकलवाई थी। उसी समय 'संयमश्री' आर्यिका माताजी आहार के निमित्त से पधारीं, उन्होंने भगवान का अविनय देखकर पारणा नहीं की और पटरानी को अज्ञानी समझकर करुणावश उपदेश देने लगीं–''हे नादान रानी! तू राजा की रूपवती प्रिय पटरानी है, तूने जो रूप और पद पाया है वह तेरे पूर्वोपार्जित पुण्य का फल है। हे शोभने! तू यह महानिन्द्य कार्य मत कर, ऐसा करने से नरक गति के महा भयानक दु:खों को भोगना पड़ता है।''

जब विदुषी आर्यिका माताजी ने ऐसा समझाया तो वह पटरानी नरक के घोर दु:ख से भयभीत हुई, उसने सम्यग्दर्शन धारण कर श्राविका के व्रत अंगीकार किये और श्री जी की प्रतिमा को पुन: महोत्सव कर मंदिर में पधराई। कुछ काल पश्चात् सर्वज्ञ देव का आराधन करते हुए समाधिमरण कर स्वर्ग गई, वहाँ से चयकर वह राजा महेन्द्र की रानी हृदयवेगा के यह अंजना नामक पुत्री हुई। पुण्य के प्रभाव से राजघराने में उत्पन्न होकर इसने उत्तम वर तो पाया, परंतु पटरानी की पर्याय में जिनेन्द्र भगवान की प्रतिमा को कुछ समय के लिए मंदिर के बाहर रखवाया था, उसी घोर पाप के फल से पति का 22 वर्ष पर्यंत वियोग सहा एवं कुटुम्ब से निरादर हुआ।

विवाह के तीन दिन पूर्व पवनंजय प्रच्छन्न रूप से मित्र सहित महल में इसके रूप सौंदर्य के दर्शन निमित्त आये थे, उस समय इसकी सखी मिश्रकेशी ने पवनंजय की निंदा एवं विद्युतप्रभ की बहुविधि प्रशंसा की थी। अतएव पवनंजय ने द्वेष भाव से अंजना को हृदय से त्याग दिया था। कालचक्र से जब पवनंजय ने दशानन की सहायतार्थ युद्ध को गमन कर मानसरोवर पर सैन्य शिविर स्थापित किया। तब चकवी को विरह से व्यथित देखकर, अंजनी के 22 वर्ष पर्यंत दीर्घ वियोग के दु:ख का उसे ध्यान हो आया। पवनंजय कटक को वहीं पर छोड़कर मित्र प्रहस्त सहित प्रच्छन्न रूप से अंजना के महल में लौट आये जिससे इसके गर्भ रह गया, फिर कुमार प्रच्छन्न ही वापिस लौट गये। यह सुनकर अंजना अपने कर्मों की निंदा करने लगी।

फिर मुनिराज ने कहा–''हे पुत्री! अब तुम अपनी शक्ति के अनुसार नियम धारण करो और जिनभक्ति में मन लगाओ। यद्यपि तुमने ऐसे पाप किये थे जिनके फलस्वरूप तुम अधोगति में जाती तथापि 'संयमश्री' आर्यिका माताजी के उत्तम उपदेश से कुगति में जाने से बचकर परम सुख प्राप्त करोगी और तुम्हारा पुत्र अखण्डवीर्य तथा देवों के द्वारा भी अजेय होगा। कुछ ही दिनों में पति से तेरा पुन: मिलाप होगा। अत: विषाद मत करो तथा शुभ क्रियाओं में प्रवृत्त होओ।'' इस प्रकार मुनिराज ने अंजना की संकटपूर्ण स्थिति के समाधान सहित उपदेश देकर विहार किया।

मुनिराज के उपदेश को श्रवणकर तथा पूर्वजन्म के वृत्तांत से अवगत होकर अपने दुष्कर्मों की निंदा करती हुई धर्म भावना सहित अंजना समय व्यतीत करने लगी। प्रसूति

का समय सन्निकट समझ कर अंजना बसंतमाला सहित वहीं ठहर गई। कुछ समय बाद एक दिवस सूर्यास्त होने पर एक प्रचण्ड भयानक सिंह उस गुफा के द्वार पर आया। उसकी भयंकर दहाड़ से गुफा तथा समस्त वन प्रांतर गूँज उठा।

अंजना ने नियम ले लिया कि यदि सिंह के उपद्रव से मेरा प्राणान्त हो गया तो मेरा अनशन व्रत है। बसंतमाला हाथ में खड्ग लेकर अंजना की रक्षा करने लगी और कहने लगी–''हे सखी! मुनिराज ने कहा था अब दुःख का अंत आ गया, सो मुनि के वचन तो अन्यथा नहीं हो सकते।'' ऐसा प्रलाप करती हुई और घबराई हुई बसंतमाला कभी अंजना के समीप जाती एवं कभी गुफा के द्वार पर आती थी। उस समय दोनों की बड़ी विषम अवस्था हो रही थी।

उस गुफा का स्वामी मणिचूल नामक गन्धर्व देव था। उसकी 'रत्नचूल' नामक दयार्द्र देवी ने दोनों को आपत्ति में फँसा देखकर उससे विनय की–''हे नाथ! ये दोनों निःसहाय अपने स्थान में आश्रय ले रही हैं। गुफा के द्वार पर खड़े सिंह से ये अत्यंत भयभीत हैं, अतएव आप किसी भी प्रकार इनकी रक्षा कीजिए। तब उस दयावान गंधर्व ने तत्काल विद्याबल से अष्टापद का रूप बनाया एवं उस सिंह को पंजा मारकर दूर भगा दिया।

जब बसंतमाला ने सिंह और अष्टापद का युद्ध देखकर समझ लिया कि सिंह भयभीत होकर भाग गया है, तब उसने अंजना को सारा वृत्तांत सुनाया। दोनों अत्यंत प्रसन्न हुईं। नाना प्रकार की बातें करती हुई बसंतमाला कहने लगी–''हे देवी! सिंह के उपद्रव से तेरी रक्षा हुई, अतएव पति से भी तेरा मिलाप अवश्य होगा। तू अद्‌भुत पराक्रमी पुत्र का प्रसव करेगी।''

अंजना ने कहा–''हे सखी! तेरे संग होने से मानो मेरा समस्त कुटुम्ब ही मेरे संग में है, यह भयानक वन एवं निर्जन गुफा ही क्रमशः नगर और राजमहल के तुल्य हैं।'' जब अंजना की प्रसूति की बेला आई, तब वह कहने लगी–''हे सखी! मुझे व्याकुलता हो रही है।'' बसंतमाला ने हर्षित होकर कहा–''हे देवी! प्रसूति का समय निकट है, तुम धैर्य रखकर भगवान का स्मरण करो।''

यह कहकर उसने तुरंत कोमल पत्र-शैय्या बना दी, जिस पर अंजनी लेट गई और पुत्र को जन्म दिया। अंजना कहने लगी–''हे पुत्र! तू इस निर्जन वन में उत्पन्न हुआ है, मैं तेरे लिए कुछ नहीं कर सकती, पर तुझे यही आशीर्वाद देती हूँ कि तू चिरंजीवी हो।''

कुछ समय उपरांत बसंतमाला ने आकाश से उतरता हुआ विमान देखा। दोनों शंकित होकर विलाप करने लगीं। उनकी करुण पुकार सुनकर विद्याधर ने अपनी पत्नी सहित गुफा में प्रवेश किया। तब बसंतमाला ने उन्हें उच्च आसन पर बैठाया। विद्याधर ने सारा वृत्तांत पूछा। बसंतमाला ने सारा वृत्तांत सुनाकर अंजना का परिचय दिया। तब

विद्याधर कहने लगा–''अरे! यह अंजना तो मेरी भानजी है। मैं हनुरुह द्वीप के स्वामी राजा चित्रभानु एवं रानी सुंदरमालिनी का प्रतिसूर्य नामक पुत्र हूँ।'' कहते-कहते उसके आँसू भर आए, अंजना भी रोने लगी।

तदनन्तर अंजना ने मामी से कुशलक्षेम पूछकर मामा से निवेदन किया–''हे पूज्य! पुत्र जन्म का समस्त शुभाशुभ फल ज्योतिषियों से पूछिए।'' प्रतिसूर्य के साथ पार्श्व ज्योतिषी थे, उनसे पूछा गया। तब ज्योतिषी ने कहा–''आज चैत्र कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि है, श्रवण नक्षत्र है, आज के दिन का स्वामी सूर्य है इत्यादि ज्योतिषीय बातें कहकर बताया कि यह बालक सभी ऋद्धि-सिद्धिओं का स्वामी होगा, महापराक्रमी होगा और परम सुख निर्वाण को प्राप्त होगा।'' तदुपरांत प्रतिसूर्य अंजना को बसंतमाला सहित हनुरुह द्वीप ले जा रहा था। विमान आकाश में तीव्र वेग से जा रहा था। अबोध शिशु माता की गोद में पुलकता हुआ अचानक उछलकर नीचे पर्वत की शिला पर जा पड़ा। बालक को गिरते देखकर विमान में हा-हाकार मच गया।

प्रतिसूर्य ने विमान को तत्काल नीचे उतारा एवं समीप जाकर देखा तो शिशु शिला पर सीधा पड़ा हुआ मुख में अंगुष्ठ दबाए चूस रहा था। उसके गिरने से शिला खण्ड-खण्ड हो गई थी। माता अंजना ने उसे उठाकर हृदय से लगा लिया।

प्रतिसूर्य ने कहा–''हे पुत्री! इसकी देह व्रज स्वरूप है। देखो शिला पर गिरने से वह भी चूर-चूर हो गई। जब शैशवावस्था में ऐसी अद्‌भुत शक्ति है, तब यौवनावस्था का तो क्या कहना?'' उस शिशु को चरमशरीरी मानकर उसने नमस्कार किया। राजा प्रतिसूर्य ने अंजना सहित महल में प्रवेश किया। महल को सजाया गया, राजा प्रतिसूर्य ने बड़े समारोह से शिशु का जन्मोत्सव मनाया। पर्वत पर जन्म लेने तथा शिला के खण्ड-खण्ड होने से उसका नाम 'श्री शैल' रखा गया। हनुरुह द्वीप में जन्मोत्सव मनाया गया, अतएव वे संसार में हनुमान के नाम से प्रसिद्ध हुए।

ऐसे परम प्रतापी वज्र अंक तथा ईश्वरत्व प्राप्त करने वाले महापुरुष में वानर की कल्पना करना नितांत भ्रांति है, इनका जन्म वानर वंश में हुआ तथा इनके मुकुट एवं ध्वजाओं में वानर चिन्ह अंकित था।

यहाँ दशानन राजा प्रहलाद के महाबली पुत्र पवनंजय को सेना सहित आया देखकर अत्यंत प्रसन्न हुए। फिर दोनों पक्षों में घनघोर युद्ध हुआ, पवनंजय ने वरुण को जीवितावस्था में ही बांध लिया और दशानन के भगिनी पति खरदूषण को बंधनमुक्त कराया एवं वरुण को दशानन के निकट ले आया। वरुण ने विनम्र होकर दशानन की अधीनता स्वीकार की। तदुपरांत दशानन ने पवनजंय के अतुल पराक्रम की प्रशंसा कर विपुल धन देकर सम्मान से विदा किया।

पवनंजय इस सफलता से हर्षित होकर अपने नगर लौट आया। पिता प्रहलाद ने विजयी पुत्र का सम्मान किया। पवनंजय ने माता-पिता व गुरुजनों का सम्मान किया

फिर मित्र प्रहस्त सहित वह अंजना के महल में गया, वहाँ अंजना व बसंतमाला को न देखकर वह अत्यंत विस्मित हुआ। तब एक द्वारपाल ने अंजना पर कलंक लगाकर उसे राज्य से निस्कासित कर देने एवं पिता के नगर भेजने का समस्त वृत्तांत कह सुनाया। सब वृत्तान्त सुनकर वह वहाँ गया।

राजा महेन्द्र ने जमाता पवनंजय का सम्मान किया। उसने भी विनय कर कुशलक्षेम पूछी। कुछ समय पश्चात् जब यहाँ से भी अंजना के तिरस्कार पूर्वक निर्वासन का वृत्तांत सुना, तब अत्यंत दुःखी होकर वह प्रहस्त से बोला–''हे मित्र! यदि मुझे प्रिया की प्राप्ति न हुई तो मैं जीवित न रहूँगा।'' मैं उसके अन्वेषण में समस्त पृथ्वीतल पर भ्रमण करूँगा। तुम शीघ्र ही आदित्यपुर जाकर मेरे पिता से समस्त वृत्तांत कह देना।'' प्रहस्त तो आदित्यपुर चला गया, इधर पवनंजय अत्यंत व्याकुल होकर, अंबरगोचर नामक गजराज पर आरुढ़ होकर अंजनी के अन्वेषण में वन प्रांतर में भ्रमण करने लगा। उसके हृदय में अनेक प्रकार के संकल्प-विकल्प उठने लगे। ''हाय! वो कैसी होगी? अरे किसी हिसंक पशु ने उसका भक्षण तो नहीं कर लिया?'' इत्यादि विकल्प से मोहवश वह उद्भ्रांत (पागल) के सदृश चेष्टाएं करने लगा। उसने अपने गज को वन में स्वच्छंद भ्रमण हेतु मुक्त कर दिया। परंतु स्वामीभक्त गज ने पवनंजय का साथ नहीं त्यागा।

कुमार ने अंजना को चारों ओर ढूंढा, किंतु वह नहीं मिली। वह हताश होकर एक स्थान पर मुनि सदृश ध्यानावस्थित होकर अंजनी का चिंतवन करने लगा।

उधर राजा प्रहलाद प्रहस्त के मुख से अंजना के प्राप्त न होने पर कुमार के द्वारा प्राण त्याग कर देने का संकल्प सुनकर रोने लगे, रानी केतुमती सहित संतप्त होकर विलाप करने लगे। रानी केतुमती रो-रोकर कहने लगी–''हाय! मुझ क्रूरचित्त पापिनी ने उस महासती पर व्यर्थ में ही कलंक लगाया। न जाने अब वह जीवित है या नहीं?'' राजा प्रहलाद ने धैर्य धारण किया, अपने परिजन और विद्याधरों को साथ लेकर प्रहस्त के निर्देशन में पुत्र को खोजने निकले। अनेक पर्वत व गुफाओं में अन्वेषण किया, परंतु वह नहीं मिला।

राजा महेन्द्र ने अंजना एवं पवनंजय के सन्धान हेतु एक पत्र लिखकर संदेशवाहक को हनुरुह द्वीप में राजा प्रतिसूर्य के समीप भेजा। पवनंजय की दृढ़ प्रतिज्ञा का वृत्तांत सुनकर अंजना अत्यंत विलाप करने लगी। तब बसंतमाला ने उसे 'मुनिराज अमितगति' के वचनों का स्मरण कराकर धैर्य बंधाया। राजा प्रतिसूर्य ने अंजना से कहा–''हे पुत्री! मैं तेरे पति का अन्वेषण कर शीघ्र ही उसे लेकर आता हूँ, तू विषाद मत कर।''

फिर राजा प्रतिसूर्य पवनंजय को खोजने निकला। उसी मार्ग में पवनंजय के संधान में संलग्न राजा प्रहलाद एवं उनके साथी मिल गए, फिर योजनानुसार सभी कुमार को

ढूँढने लगे। राजा प्रतिसूर्य कुमार को ढूँढते हुए साथियों सहित भूतेश्वर वन की अत्यंत भयानक विषम अटवी में आ गये। वहाँ एक स्थान पर गजराज 'अम्बरगोचर' को स्थिर खड़ा देखकर उन्होंने निश्चय किया कि, कुमार यहीं कहीं होगा।

ज्यों ही अम्बरगोचर ने विद्याधरों का दल आता हुआ देखा, त्यों ही वह द्रुतगति से चिंघाड़ता हुआ दौड़ा, कोई भी उसके समीप न जा सका। तब चतुर विद्याधरों ने उसे हथिनियों के समूह से घेरकर वश में कर लिया।

सबकी दृष्टि पवनंजय पर जा पड़ी। पवनंजय काष्ठवत् मौन एवं मुनिसदृश स्थिर बैठा था। माता केतुमती ने देखते ही पुत्र को हृदय से लगाया, परंतु अंजनी की चिंता में तल्लीन पवनंजय कुछ नहीं बोला। माँ कहती है–''हे पुत्र! तू तो विनयवान था, हमें बिना बताये कैसे आ गया?'' पवनंजय की बेसुधी अवस्था देखकर सभी रोने लगे। यह देखकर प्रतिसूर्य ने कहा–''मैं पवनंजय से वार्तालाप करूँगा।''

तब उसने पवनंजय को हृदय से लगाकर अत्यंत मधुर स्वर में वन में पुत्र सहित अंजनी के मिलने का समस्त वृत्तांत कह सुनाया। प्रतिसूर्य का विवरण सुनकर पवनंजय हर्षित होकर बोला–''शिशु सुख से तो है?'' फिर राजा प्रतिसूर्य ने शिशु के शिला पर गिरने, शिला के खण्ड-खण्ड होने, शिशु को अंजनी सहित हनुरुह द्वीप ले जाने और वहाँ उसका जन्मोत्सव मनाकर 'श्री शैल' एवं 'हनुमान' आदि नामकरण संस्कार सम्पन्न करने तथा पुत्र सहित अंजनी के सुखपूर्वक निवास करने का समस्त वृत्तांत सुनाया। यह सुनकर पवनंजय अत्यंत हर्षित हुआ।

तत्पश्चात् पवनंजय समग्र विद्याधरों सहित हनुरुह द्वीप को गया। वहाँ अंजना को पुत्र सहित देखकर कुमार को प्रसन्नता हुई। राजा प्रतिसूर्य ने सबको आग्रहपूर्वक अत्यंत सम्मान से दो माह पर्यंत अपने नगर में ठहराया। वहाँ से वे अपने घर आए, पिता के दीक्षा लेने के बाद पवनंजय ने राजपद संभाला। राज्य शासन के बाद पवनंजय ने भी दीक्षा धारण की और समाधिमरण कर स्वर्ग में देव पद प्राप्त किया।

हनुमान को समस्त विद्याएँ सिद्ध हो गईं थीं, गृहस्थ जीवन के बाद हनुमान ने महाव्रतों को धारण करके 'तुंगीगिरि' से मोक्ष को प्राप्त किया। अंजना ने आर्यिका दीक्षा लेकर समाधिमरण किया और स्वर्ग गई, तथा परंपरा से मोक्ष जायेगी।

धर्मस्नेही बंधुओं! नारी समर्पण की पराकाष्ठा है। नर जितना भावुक है उतना ही उतावला है। अतः हमें कभी भी पूरी घटना जाने बिना उतावली में कोई कार्य नहीं करना चाहिए व नारी के त्याग की पराकाष्ठा को अपनाना चाहिए।

त्याग की प्रतिमूर्ति

भारत देश के दक्षिण प्रांत में पुंगनूर नामक नगर में 'नागमय्य' का बड़ा परिवार रहता था। नागमय्य के पूर्वज वेदवेदांत में पारंगत कौडिण्य गोत्र के ब्राह्मण थे। जिनचंद्र जी के प्रभाव से नागमय्य ने यज्ञ त्याग कर जैनधर्म स्वीकार किया था। जिनचंद्र जी नागमय्य के बचपन के साथी थे, जिन्होंने जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण की थी। नागमय्य चालुक्यों के महामात्य थे। महा साहसी 'मल्लप' और चतुर 'पुन्नमय्य' दोनों उनके पुत्र रत्न थे। पुन्नमय्य की कोई संतान नहीं थी, परंतु मल्लप की गोद कभी खाली नहीं रही। मल्लप की धर्म पत्नी 'अब्बकब्बे' ने गुंडुमय्य, एलमय्य, चिक्कपोन्नमय्य, आहवमल्ल और बल्ल इन पांच पुत्रों को, इनके बाद 'अतिमब्बे' और 'गुंडुमब्बे' को एक साथ और उसके पश्चात् तीसरी पुत्री नागियब्बे, इस प्रकार आठ संतानों को जन्म दिया।

एक दिन नागमय्य के यहाँ के आँगन में सभी श्रावक एकत्रित थे। वहाँ एक चबूतरे पर समवशरण का दृश्य सजाया गया था। जब कभी नागमय्य के भक्तिभाव उत्कर्ष तक पहुँच जाते, तब वे ऐसे दृश्यों को सजाकर चरितार्थ कर लेते थे। उस दिन अतिमब्बे ने इंद्र और गुंडुमब्बे ने इंद्राणी का रूप रखकर आदिदेव के गर्भकल्याणक का अभिनय किया। उसे देखकर सभी को बहुत आनंद हुआ।

सभी का समय आनंदपूर्वक बीत रहा था। कुछ समय उपरांत नागमय्य का मरण हो गया। इनके मरण का सार्वधिक दु:ख अतिमब्बे ओर गुंडुमब्बे को था। उनके दादा जी मानो उनके जीवन के सर्वस्व थे। उनकी मृत्यु के पश्चात् दोनों ने जीवन के उत्साह को खत्म-सा कर दिया। पुत्रियों की दशा देखकर अब्बकब्बे ने पति से कहा–''दादा जी के शोक में लड़कियाँ घुलती जा रही हैं। पहले जैसे खाती नहीं, पहनती नहीं, बस चुपचाप बैठी रहती हैं। इनकी ऐसी दशा देखकर मैं चिंता में घुली जा रही हूँ। सोचा था कि बड़ी धूम-धाम से इनका विवाह करूँगी, पर न जाने हमारे भाग्य में क्या है?''

मल्लप ने कहा ''क्या विवाह कर दें।'' अब्बकब्बे ने कहा–''जो चाहे करो। मैं यही चाहती हूँ कि वे पहले जैसी हो जायें, अन्यथा अवश्य वे पागल हो जायेंगी।'' मल्लप ने कहा–''योग्य वर कहाँ है?'' अब्बकब्बे बोली–''क्या बिना पूछ-ताछ किये वर हमारे पास आयेंगे?'' मल्लप ने कहा–''हाँ, स्वयं ही आयेंगे, परंतु समय चाहिये, जल्दबाजी में यह काम नहीं होता।'' बात समाप्त हुयी और दोनों अपने कार्य में व्यस्त हो गये।

एक बार चालुक्य महामंत्री 'दल्लप' मल्लप के यहाँ पधारे। कुशलवार्ता पूछने के पश्चात् दल्लप ने कहा–''मल्लप जी! आपने हमारे पुत्र को देखा है, वह अब विवाह के योग्य है। स्वर्गीय नागमय्य ने एक बार हमसे कहा था कि हमारा समधी आपको बनना ही होगा। आज वो नहीं है इसलिए आपकी इच्छा जानने के लिए मैं आया हूँ।''

मल्लप ने कहा–''दल्लप जी! यदि हमारे पूज्य पिताजी ने कुछ कहा हो तो हम क्या उसे टाल देंगे? आप कुछ दिन और यहीं ठहरिए। मैं लड़कियों की इच्छा भी जान लूँ। बात तय हो जाये इससे बढ़कर और क्या अच्छा होगा।''

दूसरे दिन गंगराजा के राजगुरु, महामंत्री 'चामुण्डराय' मल्लप के यहाँ पुंगनूर पधारे। पंपकवि और पोन्नकवि भी पधारे। आपस में बातचीत चल रही थी। पंप जी ने कहा–''मल्लप जी हमसे शांतिपुराण लिखवा रहे हैं, अतिमब्बे के शुभ विवाह के अवसर पर इस ग्रंथ का प्रकाशन होगा।'' चामुण्डराय ने आश्चर्य से मल्लप से जिज्ञासा की–''क्या अतिमब्बे की सगाई पक्की हो गयी है? वह भाग्यवान वर कौन है?'' मल्लप ने कहा–''अभी सगाई पक्की नहीं हुयी है। दल्लप जी की सवारी इसी उद्देश्य से आयी है। उनके पुत्र नागदेव ही हमारी लड़की के लिए योग्य वर हैं।'' चामुण्डराय ने गंभीरता से सुझाया–''आप दूसरी लड़की का भी विवाह कर दीजिए। यों तो वे यमज कन्याएँ हैं। उनका जन्म एक साथ हुआ है, विवाह भी एक साथ हो जाये।'' पंपकवि ने कहा–''योग्य वर मिल जाये तो वह भी संभव है।'' चामुण्डराय ने कहा–''क्या आपकी लड़कियों के लिये वरों की कमी है? विलंब करने से वंचित रहने का भय सबको बना ही रहता है। यही सोचकर हमारी मातुश्री ने हमें यहाँ भेजा है। बहुत दिन पहले हमारे माता-पिता यहाँ आये थे, तब श्रीमती अब्बकब्बे ने प्रस्ताव रखा था और हमारे माता-पिता ने इस संबंध को स्वीकार भी किया था। अतिमब्बे दल्लप जी की पतोहू बने, योग्य ही है। पर गुंडुमब्बे हमारी पतोहू बन जाये। यदि आप महानुभावों की अनुमति मिले तो दोनों विवाह श्रवणबेलगोल में ही हो जायेंगे।''

चामुण्डराय बोल रहे थे, उनकी भावुकता पर सब के सब स्तंभित से थे। मल्लप सोचने लगे अचानक दोनों कन्यारत्नों की माँग दो योग्य घरों से हो रही है, इसका क्या जबाव दें?

दल्लप को पिता श्री से वचन मिला है, तो अब्बकब्बे ने काललादेवी को वचन दिया है। चामुण्डराय जी गंगराज्य की रीढ़ हैं, राष्ट्रकूट साम्राज्य के अधिकृत महामात्य हैं। दूसरा घर दल्लप जी का है। वे चालुक्य राज्य के आधार स्तम्भ हैं और पिता नागमय्य के बचपन के साथी हैं। लड़कियों का भाग्य है कि ऐसे घरों से माँग आयी है। धन्य भाग!

मल्लप जी ने कहा–''आनंद की बात है। फिर भी मुझे एक बार घर में विचार करने दीजिए।'' मल्लप घर पहुँचे और अब्बकब्बे से पूछा–''जानती हो राव जी (चामुण्डराय) क्यों आये हैं?'' अब्बकब्बे ने कहा–''मैं क्या जानूँ?'' मल्लप बोले–''जानती हो, फिर भी छिपाती हो। सुना है कि तुमने काललादेवी को अपनी बेटी देने का वचन दिया था, राव जी उसी की बात पक्की करने आये हैं। क्यों हमसे यह बात छिपा के रखी?'' अब्बकब्बे ने कहा–''यह तो कोरी बात थी। यदि तुम्हें पसंद न हो तो इंकार कर दो, मुझे कोई आपत्ति नहीं।'' मल्लप ने कहा–''तुम वचन देकर घर बुलाओ और मैं न कहकर निष्ठुर बनूँ। खूब! क्या वो मेरी बेटी नहीं है? मेरी भी सलाह ले लेती।'' अब्बकब्बे ने कहा–''है, किसने मना किया? यों ही हम स्त्रियों में बात हुयी थी, सो मान लिया था। यों तो दूसरी लड़की है, उसे चाहे जिसे दे दो, मैं चूँ तक नहीं करूँगी।'' मल्लप ने कहा–''जानती हो दल्लप जी क्यों आए हैं? कहते हैं कि पूज्य पिताजी ने उनके घर कन्यादान करने का वचन दिया था, उसी की याद दिलाने आए हैं। एक के बारे में लड़की के दादा ने, दूसरी के बारे में लड़की की माँ ने निर्णय कर लिया है। अब लड़कियों का बाप कुछ करना भी चाहे तो क्या कर पायेगा, मानो उसकी कुछ हस्ती ही नहीं।'' मल्लप ने गंभीरता का स्वांग भरते-भरते कहा। अब्बकब्बे ने कहा–''देखो! मेरे ससुर ने कितना अच्छा घर चुना।'' मल्लप ने पूछा–''तब क्या दोनों वर तुम्हें पसंद हैं?'' अब्बकब्बे ने कहा–''पहले तुम अपना अभिमत बताओ।'' मल्लप ने कहा–''एक बार पुत्रियों से पूछ लो। फिर दोनों का विवाह श्रवणबेलगोल में करेंगे।''

धन्य भाग्य कहती हुयी अब्बकब्बे अंदर गयी और पुत्रियों को बुलाया। इठलाती हुयीं दोनों आयीं। अब्बकब्बे ने कहा–''देखो बेटा! दल्लप जी नागदेव की सगाई पक्की करने आए हैं और...'' अब्बकब्बे की बात काटकर अतिमब्बे बीच में ही बोली, ''रावजी अपने बेटे की।'' अब्बकब्बे ने कहा–''हाँ बेटा, हमारा विचार है कि नागदेव से अतिमब्बे की और जिनदेवण से गुंडुमब्बे की बात पक्की कर दें।'' अतिमब्बे ने स्वीकृति दी। इससे प्रसन्न होकर माँ ने गुंडुमब्बे की ओर देखा। गुंडुमब्बे ने कहा–''क्या मेरी बात नहीं मानी जाएगी?'' अब्बकब्बे ने कहा–''क्यों गुंडु! मुझ पर भी संदेह है? बेटा तुम्हारा सुख ही हमारा सुख है। तुम जिसे चाहो पसंद कर लो।'' गुंडु ने कहा–''माँ! हम दोनों यमज संतानें हैं, साथ-साथ जन्म लिया, साथ ही साथ विवाह नहीं कर सकेंगी? जहाँ जीजी की सगाई पक्की हो वहीं मेरी भी हो जाये।'' अब्बकब्बे ने जरा क्रोध में कहा–''क्या कह रही हो गुंडु! क्यों ऐसे अवसर पर भी मजाक करती हो?'' गुंडु ने कहा–''माँ! मैं मजाक नहीं कर रही हूँ। जीजी के बिना मैं एक पल भी जीवित नहीं रहना चाहती, इसलिए एक ही दिन, एक ही मुहूर्त में,

एक ही दुल्हे को हम दोनों को सौंप दो।'' अब्बकब्बे ने कहा–''बेटा! तुम नादान हो। तुम्हारा यह आदर्श प्रेम सराहनीय है, परंतु जब सौत बन जाओगी तो यह बात नहीं रहेगी। हम जानबूझकर ऐसे मूर्खता नहीं करेंगे।'' गुंडु ने दृढ़ता से कहा–''सौत बनकर भी हम यह प्रीति निभा लेंगी।'' अब्बकब्बे ने फिर समझाया ''बेटा! जिंदगी कोई पालना नहीं, जहाँ आराम से एक साथ सो सको।''

अब तक अत्तिमब्बे सब सुन रही थी। अब उसका भी बहन के प्रति प्रेम उमड़ पड़ा, बोली–''माँ! गुंडु के कहने के अनुसार ही हो जाये। हम दोनों साथ जाएंगी, एक दूसरे का सहारा बनकर रहेंगी।''

''लो! दूसरी भी पागल निकल आयी। मैं तो समझ रही थी यही एक पागल है। देखो, यह सब नहीं होगा। दो लड़के हैं, उनमें से अपनी-अपनी रुचि का पसंद कर लो और आजन्म यही प्रीति दूर रहकर भी निभाती हुयी सुख से रहो। हम दोनों को एक घर में नहीं भेज सकते, समझी?'' अब्बकब्बे ने निर्णायक स्वर में दृढ़ता से कह दिया।

''तब तो हम किसी को पसंद नहीं करेंगे, हमें विवाह नहीं करना है।'' दोनों ने एक साथ कहा। जब मल्लप जी को यह पता चली तो उन्हें रातभर नींद नहीं आयी, अंतिम पहर में झपकी सी आयी। ''मल्लप! अत्तिमब्बे और गुंडुमब्बे एक सिक्के के दो पहलू हैं। उनकी इच्छा पूरी करो, बुरा नहीं होगा, दोनों को एक ही वर से ब्याह दो'' नागमय्य मानो कह रहे थे। मल्लप की आँखें सहसा खुलीं। सवेरा हो चुका था। वे सीधे पंपकवि के पास गये और लड़कियों की नादानी व अपना स्वप्न दोनों कह सुनाया।

सुनकर पंपकवि का हृदय खिल उठा, बोले–''ऐसी बहनें! धन्यभाग, उन्हें देखने का सौभाग्य हमें प्राप्त हुआ। तुम धन्य हो मल्लप। यह परमात्मा की लीला है, लड़कियों की इच्छानुसार ही करो।'' मल्लप ने कहा–''यह बात इतनी सीधी नहीं है। सोचिए लड़कियों को माँगने दो सज्जन आये हैं, किसको दें और किसको न दें? दल्लप चालुक्य साम्राज्य की नींव हैं, महामात्य हैं और राव जी गंग साम्राज्य के सर्वस्व हैं। मैं दोनों में से किसी का भी मन दुखाना नहीं चाहता।'' कहते-कहते मल्लप सिर पर हाथ रखकर बैठ गये। पंप ने कहा–''वह सब मुझ पर छोड़ दो। आज भोजन के पश्चात् कुछ रास्ता निकाला जायेगा। अब और किसी के कानों में इसकी भनक तक न पड़े, समझे?''

भोजन के पश्चात् मल्लप के यहाँ दुपहर को यथावत् बैठक हुयी। वार्तालाप चल रहा था। दल्लप ने कहा–''मल्लप जी अब हम मतलब की बात करें। कहिए, कब विवाह निश्चित करेंगे?'' तभी चामुण्डराय बोले–''जी हाँ, मुझे भी लौटना है। बताइये,

लौटकर माता जी से मैं क्या कहूँ?'' मल्लप ने पंप की ओर कातर दृष्टि से देखा और कहा–''राव जी! एक बड़ी समस्या उठ खड़ी हुयी है।'' ''निस्संकोच बताइए मल्लप जी क्या बात है?'' चामुण्डराय ने आश्वासन देते हुए कहा। तभी पंप ने कहा–''बात सीधी नहीं है। लड़कियाँ चाहती हैं कि वे दोनों एक ही वर से विवाह करें। वे यमज संतानें हैं इसलिए बिछुड़ना नहीं चाहतीं।''

यह सुनकर चामुण्डराय जी स्तब्ध बैठ गए। इस मौन से दल्लप भयभीत हुए। किसी ने मौन तोड़ने का साहस नहीं किया।

''सच कहता हूँ, न जाने आज भोजन करते समय मेरे मन में ऐसी ही बातें क्यों उठ रहीं थी कि इन दोनों को कैसे अलग करें? इन कन्याओं को एक ही घर पर रहने का सुअवसर प्राप्त हो तो कितना अच्छा होगा? आश्चर्य तो यह है कि लड़कियों का विचार भी ऐसा ही है।'' चामुण्डराय ने भावावेश से कहा। उनकी मुद्रा से ऐसा लग रहा था कि वे दोनों को अपनी पतोहू बनाने पर तुले हुए हैं। यह ताड़कर दल्लप बोले–''मल्लप! राव जी से पहले मैं यहाँ आया था।'' चामुण्डराय बोले–''देखिए, यहाँ आगे पीछे की क्या बात है? जिसे कन्याएँ पसंद करेंगी, उसे वर लें।''

''कन्याओं ने हम पर ही यह भार सौंप दिया है। दल्लप जी और राव जी! अंतःकरण की बात कहता हूँ कि आप दोनों के प्रति मेरे मन में किंचित् भी भेदभाव नहीं है। मैं आपमें से किसी को न नहीं कह सकता। वे मेरी कन्याएँ नहीं है, समझ लीजिए कि आपकी हैं। आप दोनों निर्णय कीजिए, वही हमें सिर आँखों पर होगा।'' कहते-कहते मल्लप का गला रूँध गया।

''मल्लप! छिः! क्यों इतना व्यग्र होते हो? हम यह भार पंप जी पर छोड़ते हैं, उनका निर्णय हमें मान्य होगा'' चामुण्डराय ने कहा। दल्लप ने भी स्वीकृति दी।

पंप जी ने कहा–''यह मेरा अहोभाग्य है कि आप महानुभावों ने मुझे इस योग्य समझा। इसके लिए मैं सदा आपका कृतज्ञ रहूँगा।'' पंप जी ने चामुण्डराय और दल्लप का नाम अलग-अलग पुर्जों पर लिखा। एक सा मोड़कर दोनों पुर्जों को एक कटोरी में रखा। तीन साल के एक बालक ने एक पुरजा निकालकर पुरोहित को दिया। पुरोहित जी ने खोलकर सबको दिखाया। उस पर दल्लप का नाम लिखा था। ''दैव ने दल्लप का साथ दिया। मैं भाग्य परीक्षा में अनुत्तीर्ण हुआ'' चामुण्डराय ने खिन्न होकर कहा।

''राव जी! भाग्य ने उन दोनों कन्याओं को मुझे दे दिया है। अब उन पर मेरा अधिकार है। आप खिन्न न हों। आप की प्रसन्नता के लिए मैं दोनों कन्याओं को आपको सौंपता हूँ।'' दल्लप ने निवेदन किया।

चामुण्डराय ने कहा–''हमें दैवेच्छा के सामने सिर झुकाना ही पड़ेगा दल्लप जी। पंप देव के सामने, इस उम्र में कैसे झूठा निकलूँ? असंभव है। और एक बात है,

नागमय्य की पोतियाँ मेरी भी पोतियाँ हैं, पतोहू न बन सकीं तो क्या हुआ? वे दोनों सुखी रहें, यही मैं चाहता हूँ।''

विवाह की तैयारियाँ बड़े पैमाने पर होने लगीं। शुभ मुहूर्त में नागदेव के साथ अत्तिमब्बे ओर गुंडुमब्बे का विवाह सम्पन्न हुआ। विवाह के शुभ अवसर पर शांतिपुराण की कई प्रतियाँ बाँटी गयीं। अत्तिमब्बे और गुंडुमब्बे दोनों ने सब सुहागिनों के आँचल मणि-मुक्ताओं से भर दिये। उनका अंत:करण उदार था, अत: वे 'दान चिंतामणि' कहलायीं। इनके अंतरंग में समवशरण अंकित था, अतएव वे 'सम्यक्त्व चूड़ामणि' कहलाने लगीं।

विवाह के पश्चात् मल्लप ने अपने दामाद को आग्रहपूर्वक कुछ समय घर पर ठहरने के लिए राजी कर लिया। नागदेव के साथ अत्तिमब्बे और गुंडुमब्बे का समय आनंद से बीत रहा था। एक महीना बीता। विवाह मण्डप ज्यों का त्यों था, दामाद नागदेव गौना करा के लौटा तक नहीं था। नव दंपतियों का रसरंग अभी दिन दूना रात चौगुना बढ़ रहा था। ऐसे समय में युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुये मल्लप के भाई पुन्नमय्य की लाश पुंगनूर लायी गयी। विवाह मण्डप में ही अरथी उतारी गयी। मल्लप की संतानों के लिए पुन्नमय्य पिता से भी बढ़कर प्यारे थे, अब वे रो रहे थे। पुन्नमय्य की पत्नी कौसल्यब्बे शिशु-सी रो रही थी।

अतिमब्बे और गुंडुमब्बे शय्या से उठकर बाहर आयीं। आते ही उन्हें यह भयानक दृश्य देखना पड़ा। उन पर मानों वज्र ही टूट पड़ा। पिता समान चाचा की अकाल मौत से दु:खी हो वे करुण विलाप करने लगीं।

पुन्नमय्य की चिता सजाई गयी। मल्लप ने अग्निस्पर्श करा दिया। कौसल्यब्बे ने चिता की परिक्रमा की और हँसते-हँसते उस पर चढ़कर पति के बगल में लेट गयी। थोड़े ही समय में चिता की लपटों ने सती-पति दोनों के शरीर को स्वाहा कर दिया।

अत्तिमब्बे और गुंडुमब्बे ने समझा कि नारी जीवन का अर्थ आँसू है। अभी विवाह की हल्दी सूखी तक नहीं थी कि दोनों को स्त्री जीवन के भयंकर परिणाम से अवगत होना पड़ा। किसी तरह दादा के मरण को भुलाने का प्रयत्न कर पायी थीं कि चाचा की मौत हो गयी। इससे भी भयंकर था उनके लिए चाची का सहगमन।

समय अपनी गति से बीत रहा था। अत्तिमब्बे और गुंडुमब्बे सुखपूर्वक अपने ससुराल विजयपुर में रह रही थीं। एक दिन चूड़ी वाला आया। अत्तिमब्बे और गुंडुमब्बे की सास पद्मब्बे ने चूड़ी वाले से अपनी बहुओं के लिए चूड़ियाँ खरीदीं और बात ही बात में उससे उसका परिचय पूछा। चूड़ी वाले ने अपना परिचय देते हुए बताया कि वह और उसके दो पुत्र अपने गाँव से यहाँ शहर आकर चूड़ियाँ बेचते हैं। अपना नाम

जिनवल्लभ और जाति जैन बतायी। पद्मब्बे ने उसे पुत्रों सहित शाम के भोजन के लिए न्यौता दिया।

शाम को जिनवल्लभ पुत्रों सहित दल्लप के यहाँ पहुँचा। तीनों दल्लप के साथ बैठे। जिनवल्लभ का तेरह वर्षीय छोटा पुत्र 'रन्न' राजभोग पाकर अत्यंत प्रसन्न हुआ। भोजन करते हुए रन्न के मुँह में सहसा भोजन तीखा लगने के कारण सी-सी शब्द निकला, तुरंत अत्तिमब्बे ने वात्सल्यपूर्वक पूछा–''कहो, क्या चाहिए?'' रन्न ने निस्संकोच भाव से कहा कि उसे घी चाहिए। जिनवल्लभ को यह बुरा लगा, तुरंत रन्न को क्रोधपूर्वक आँखें दिखा दीं। यह देख दल्लप ने अत्तिमब्बे से कहा–''बेटा! बच्चे बड़ों के साथ निरांतक भोजन नहीं कर पाते। जाओ, इसे अंदर ही खिलाओ।''

भोजन के पश्चात् अत्तिमब्बे ने रन्न से पूछा, ''तुम क्या पढ़ रहे हो?'' यह सुनकर रन्न की आँखों में आँसू आ गये। कारण पूछने पर रन्न ने कहा–''मैं पढ़ना चाहता हूँ, परंतु पिताजी मना करते हैं। क्योंकि हम गरीब हैं और हमारे पास ओझाजी को देने के लिए पर्याप्त धन नहीं है।'' रन्न ने दीनतापूर्ण स्वर में कहा–''जीजी! मुझे यहीं ठहरा लो।''

यह आर्तवाणी सुनकर अत्तिमब्बे का हृदय मचल उठा, बोली–''ऐसा ही होगा।''

भोजन के पश्चात् दल्लप ने जिनवल्लभ से उसके परिवार के बारे में चर्चा करते हुए पूछा कि रन्न अभी पढ़ रहा होगा? जिनवल्लभ ने कहा–''जी नहीं, कहाँ हम और कहाँ पढ़ाई?'' दल्लप ने कहा–''ओहो! यह तो ठीक नहीं। जिनवल्लभ जी! अतिथि हमारे लिए देवतुल्य होते हैं, आप तो श्रावक हैं, योग्य सेवा करने का सुअवसर दीजिए।''

जिनवल्लभ ने कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहा–''प्रभो! मेरे दोनों बड़े लड़के कमाऊ हैं। सबसे छोटे रन्न को आप को सौंपता हूँ। आप उससे कुछ काम लें और हम गरीबों की आवश्यकता पूरा करने के लिए जो कुछ देते बने दीजिए।''

पहले तो दल्लप ने यह कहकर कि इतने छोटे बच्चे से कैसे काम करवा सकते हैं? अपनी अस्वीकारता प्रकट की, परंतु जिनवल्लभ के अत्यंत आग्रह और अपनी सद्हृदयता के कारण दल्लप ने रन्न को किसी योग्य बनाने के उद्देश्य से अपने यहाँ रख लिया।

अत्तिमब्बे ने नागदेव से निवेदन किया कि वे रन्न को पढ़ने के लिए किसी गुरुकुल में पहुँचाने की व्यवस्था करें। दल्लप से स्वीकृति लेकर नागदेव अत्तिमब्बे और गुंडुमब्बे के साथ रन्न को लेकर 'बंकापुर' के गुरुकुल में गये। बंकापुर ऋष्याश्रम कर्नाटक में सैकड़ों साधुसंतों का निवास स्थान एवं विद्वानों का केन्द्र था। आश्रम के

कुलपति अजितसेनाचार्य जी थे। चिरकाल से राष्ट्रकूट सार्वभौम यहाँ लाखों की संपत्ति प्रतिवर्ष दे जाते थे। गंगों के मारसिंह भी आश्रम के हितचिंतकों में से एक थे।

अत्तिमब्बे ने अजितसेनाचार्य जी को नमस्कार कर उनका आशीष पाया। आचार्य जी ने उससे पूछा कि वह रन्न को क्या बनाना चाहती है? गुंडुमब्बे ने कहा–''जीजी रन्न को अपने पुत्र समान मानती है। वह इसे कवि बनाना चाहती है।'' आचार्य श्री ने कुछ क्षण अपनी दृष्टि रन्न पर जमायी, फिर उसे गुरुकुल के व्यवस्थापकों के साथ अंदर भेज दिया और कहा–''बेटी! तुम्हारा यह पुत्र कवि चक्रवर्ती बनेगा। चिंता न करो।''

चालुक्य साम्राज्य के सम्राट 'तैलप' थे। उन्होंने मल्लप को परिवार सहित पुंगनूर छोड़कर चालुक्य साम्राज्य की राजधानी विजयपुर बुलवा लिया। दल्लप चालुक्य साम्राज्य के प्रधान महामात्य थे। तैलप ने मल्लप को उप-प्रधान का पद देकर सम्मानित किया।

एक रात अत्तिमब्बे गहन निद्रा में सोयी हुयी थी। उसने स्वप्न में एक हजार मुनियों को आहार कराया, अकृत्रिम जिनबिम्बों के दर्शन किये, अभिषेक देखा, विदेह क्षेत्र में भव्य समवशरण के दर्शन किये, तदुपरांत अत्यंत हर्षित होती हुयी सिद्धशिला के निकट पहुँची, जहाँ ज्योति में ज्योति सी या दूध में बतासे के समान सिद्ध एक दूसरे में समाये हुये थे, कुछ खड़े और कुछ बैठे थे। उस महिमालोक में अत्तिमब्बे स्वयं महिमामयी बनकर समरसता का अनुभव करने लगी। तभी गुंडुमब्बे आयी और अत्तिमब्बे को हिलाती हुयी बोली–''जीजी, जीजी! उठो।''

किसी अज्ञातलोक से उतर आयी सी, जागकर अत्तिमब्बे ने चारों ओर देखा। पानी से बाहर निकाली गयी मछली सी वह बेचैन हो गयी। गुंडु ने पूछा–''क्या हुआ, क्या सपना देख रही थी?'' ''गुंडु तुमने मेरी नींद तोड़कर अच्छा नहीं किया।'' खिन्नता प्रकट करते हुये अत्तिमब्बे ने कहा। गुंडु ने कहा–''जीजी! सब स्नान आदि से निवृत्त हो चुके और तुम अब तक सोयी हो। सासू माँ ने तुम्हें जगाने के लिए मुझे भेजा था।'' अत्तिमब्बे अपना स्वप्न गुंडु को सुनाने लगी। अत्तिमब्बे कह ही रही थी कि पद्मब्बे वहाँ आयी और डाँटने की आवाज में बोली–''गुंडु! यह क्या? जगा लाने भेजा तो यहीं आकर बैठ गयी।'' गुंडुमब्बे ने अपनी बहन का स्वप्न पद्मब्बे को सुनाया। ''बड़े आनंद की बात है बेटी। अब हमारी अत्तिमब्बे के छटवाँ मास है। प्रसव के दिन तक ऐसे ही स्वप्न देखा करे'' पद्मब्बे ने अत्यंत हर्षपूर्वक कहा। पद्मब्बे ने अत्यंत वात्सल्य प्रकट करते हुए कहा–''अत्ति! निःसंकोच अपने दोहद कहा करो। तुम्हारी आशा पूर्ण कर दूँगी।'' अत्तिमब्बे बोली–''चाँदनी को जिनबिंब के सांचे में ढालकर आँखभर देखने की इच्छा हो रही है।'' गुंडुमब्बे बोली–''जीजी! क्या अभी भी

तुम सिद्धलोक में हो? इस मृत्यलोक में उतर आओ और चाहो तो नवरत्नों की मूर्तियाँ बनवा लो।'' अत्तिमब्बे ने कहा–''मुझे चांदनी की ही मूर्तियाँ चाहिए।'' पद्मब्बे उसकी इच्छा को पूरा करने का आश्वासन देकर चली गयी।

इसी प्रकार अत्तिमब्बे दिन-प्रतिदिन शुभ स्वप्नों के साथ गहरी कल्पना में खोती जा रही थी। सहस्र मूर्तियों का एक साथ अभिषेक कराने के रमणीय दृश्य की कल्पना उसे आनंदित कर रही थी। कभी उसके मन में आता सहस्रकूट जिनालय बनवाऊँ, कभी-कभी सोचती समस्त शास्त्रों की हजार-हजार प्रतिलिपियाँ बनवाकर शास्त्र दान करूँ।

एक दिन पद्मब्बे ने अत्तिमब्बे से उसके मन की इच्छा पूछी। अत्तिमब्बे ने कहा–''माताजी एक हजार सुवर्ण जिनप्रतिमा बनवा दीजिए, मैं उनका एक साथ अभिषेक करवाना चाहती हूँ।'' पद्मब्बे बीच में ही बात काटकर बोली–''बेटी! तुम्हें क्या हुआ है? बोलोगी तो हजार की ही बात किया करती हो। कल शायद हजार मंदिर बनवाने की बात कहोगी। बेटा! मानवों की शक्ति सीमित होती है न? कुछ विचारकर बोलो।'' अत्तिमब्बे अपनी धुन में बोली–''और एक लाख श्लोक वाले धवला, जयधवला जी की हजार प्रतियाँ बनवा दीजिए।'' अत्तिमब्बे भाव परवश हो बोलती जा रही थी। गुंडुमब्बे ने कहा–''जीजी! तुम खिन्न न हो। मैं तुम्हारी इच्छा पूरी कर दूँगी।''

बहन के कल्पना विलास में रंग भरने वाली कलावती गुंडुमब्बे थी। अत्तिमब्बे की इच्छाएँ औरों के लिए पागलपन सी लगती थीं, पर गुंडुमब्बे के लिए वे केवल भक्ति परवशता और सहृदयता से प्रेरित दिखाई देती थीं। अत्तिमब्बे का सुख ही उसका सुख था। अपनी बड़ी बहन के जीवन में अपना जीवन अर्पित करके उसने अपनेपन का सर्वथा त्याग कर दिया था। उसकी अपनी कोई इच्छा नहीं होती थी, पर बहन के लिए सब कुछ चाहती थी।

गुंडुमब्बे ने अत्तिमब्बे की इच्छा पूरी करने के लिए एक शीश महल बनवाया और उसमें चारों ओर बड़े कलात्मक ढंग से आइनों व रत्नों की जिनमूर्तियों को रखवाया था। इन मूर्तियों के शिरोभाग में इस प्रकार नलिकाएँ बंधी हुयी थीं कि जब आवश्यकता हो तब मूर्तियों का अभिषेक अपने आप हो जाये।

अत्तिमब्बे को शीश महल के मध्य में बिठाया। जहाँ वह दृष्टिपात करती वहाँ करोड़ों जिनमूर्तियाँ देख पाती थी। नलिका से जब उन रत्नबिम्बों पर शुद्ध जल का अभिषेक होने लगा तो ऐसा लग रहा था मानो करोड़ों बिम्बों पर देव गंगा की करोड़ों धाराएँ एक साथ बह चली हों। उसके पश्चात् रत्नबिम्बों के निकट दीप जलाये गये। अत्तिमब्बे को यह दृश्य तो स्वप्न वाले दृश्य से भी हजार गुना आकर्षक लगा।

अत्यंत हर्षित हो गुंडुमब्बे को गले लगाकर अत्तिमब्बे ने कहा–''गुंडु! तुम्हारे बिना यह संसार मेरे लिए शून्यप्राय होगा। तुम्हारे ही कारण मेरी कल्पना कार्यरूप में सार्थक बन सकी है। तुम्हीं मेरे भावों की भाषा हो, भाषा का सौंदर्य हो।''

अत्तिमब्बे की बड़ी-बड़ी अभिलाषाओं की बात सुनकर अजितसेनाचार्य जी अत्यंत हर्षित हुए। आश्रम में जितनी ताड़पत्री पुस्तकें थीं सब की एक-एक प्रति रन्न के साथ विजयपुर भेजीं। सब ग्रंथों को सजाकर विजयपुर में एक पुस्तक भंडार खोला गया, जिसका उद्घाटन अत्तिमब्बे के हाथों से संपन्न हुआ।

अत्तिमब्बे के सीमंतन संस्कार में अब्बकब्बे ओर चामुण्डराय की माँ श्री काललादेवी पधारी थीं। अब्बकब्बे ने बेटी से उसकी इच्छा पूछी तो अत्तिमब्बे ने कहा–''माताजी! आशायें तो सैकड़ों उठती रहती हैं। उन्हें सुनाऊँ तो शायद आप मुझे पागल मानने लगेंगी।'' यह सुनकर काललादेवी ने कहा–''अत्ति! संकोच क्यों करती हो? चाहे जितनी बड़ी इच्छा हो बताओ, मैं पूरी कर दूँगी।'' अत्तिमब्बे ने कहा–''मैं एक हजार गाभिन गायों का गरीब गर्भवतियों को दान करना चाहती हूँ।''

अत्तिमब्बे की इच्छा पूर्ति के लिए काललादेवी ने विजयपुर की झोंपड़ियों में रहने वाले गरीबों को प्रीतिभोज दिया और उनमें से पता लगाकर एक सहस्र गर्भवती स्त्रियों को छाँट लिया। उनके लिए एक हजार गाभिन गायों को एकत्रित किया। अत्तिमब्बे ने उन स्त्रियों को एक-एक करके चांदी की नकेल और सोने की सींगवाली एक-एक गाय को दान में दिया।

कुछ दिनों बाद अजितसेनाचार्य जी अपने सैकड़ों मुनि-शिष्यों के साथ विजयपुर आये। अत्तिमब्बे ने सबको भक्तिपूर्वक नमस्कार किया। अजितसेनाचार्य जी ने वात्सल्यपूर्वक अत्तिमब्बे से कहा–''बेटी! तुम्हारी लोकोत्तर अभिलाषाओं का विवरण रन्न से जाना। तुम जैसी उदार मना की कोई इच्छा मुझ वैरागी से पूर्ण हो सकती हो तो निसंकोच कहो।''

अत्तिमब्बे ने कहा–''मेरी तीव्र इच्छा है कि एक साथ एक हजार जिनमुनियों को आहार दान दूँ।'' अत्तिमब्बे की यह बात सुनकर आचार्य श्री अवाक रह गये, बोले–''अत्तिमब्बे! तुम सचमुच मूर्तिमती मोक्षलक्ष्मी हो जो इस धरातल पर भूले भटके उतर आई हो।''

अजितसेनाचार्य जी के संदेश पर अज्ञात रूप से स्थित कई जैन तपस्वी विजयपुर आ गये। हजार से भी अधिक मुनियों को एक ही छप्पर के नीचे अत्तिमब्बे ने शास्त्रोक्त विधि से आहारदान दिया।

''अत्तिमब्बे! तुम्हारी मनोकामनाएँ सफल होंगी। वह समय दूर नहीं जब तुम औरों की सहायता लिए बिना ही हजार जिनालय बनवाओगी, सहस्रों ग्रंथों की प्रतिलिपियाँ

बनवाकर दान दोगी। अधिक क्या कहूँ? तुम ही कर्नाटक की कल्पलता हो।'' इस प्रकार कहकर आचार्य जी ने अत्तिमब्बे को आशीष दिया और बंकापुर चले गये।

इस प्रकार ऐसी-ऐसी महान आशा अभिलाषाओं के साथ अत्तिमब्बे का गर्भ समय पूर्ण हुआ और उसने एक पुत्र को जन्म दिया। बड़ी धूमधाम से पुत्र का नामकरण संस्कार महोत्सव हुआ। अत्तिमब्बे ने सब बच्चों को एक-एक बाँस की डोली, सोने की चमची, चाँदी का प्याला, ऊनी ओढ़नी और मखमली दरी देकर कृतज्ञता प्रकट की, साथ ही साथ प्रत्येक स्त्री के आँचल को मुट्ठी भर सोने की मुहरों से भरकर विदाई दी और उनसे कहा–''कष्ट के दिनों में इस बहिन को याद करना।'' ऐसी ममतामयी बात सुनकर स्त्रियों का हृदय आनंद से भर उठा।

पुत्र का नाम 'अण्णिगदेव' रखा गया। पुत्र जन्म के पश्चात् सभी जिनालयों में विशेष पूजा पाठ कराया, जिनमूर्तियों की स्थापना करायी गयी। अण्णिगदेव का तुलाभार सोने से कराया और दस-एक मंदिरों को उसके वजनभर सोना भेंट किया। इतना दानादि करने पर भी संपत्ति जरा भी कम नहीं हुयी। भला जहाँ एक देने पर दो-दो आवें तो घाटा कैसे हो? अत्तिमब्बे साक्षात् उदारता की पुतली थी। उसका तो राजयोग था।

दसवीं सदी के प्रारंभ में चालुक्य राष्ट्रकूट के अधीन थे। राष्ट्रकूटों का कर्क स्वयं दुर्बल था, अतएव गंगों के कृपाबल पर राज्य करता था। गंगवंशराज मारसिंह मानो शत्रुओं के लिए सिंह ही था। उसका अमात्य चामुण्डराय था। वही सेनाधिपति भी था।

यद्यपि राष्ट्रकूट और चालुक्यों में नाता-रिश्ता था, फिर भी कभी-कभी आपस में संघर्ष भी कर बैठते थे। अरिकेसरी द्वितीय के जमाने में राष्ट्रकूटों में परस्पर फूट पैदा हुयी। गोज्जिबा अपने बड़े भाई को सिंहासन से उतारकर स्वयं राजा बन बैठा और प्रजा पीड़क बनकर कुख्यात हुआ। तब अरिकेसरी द्वितीय ने विवश होकर गोज्जिग पर धावा किया और उसे हराया। राष्ट्रकूट साम्राज्य के उत्तराधिकारी के रूप में गोज्जिग के चाचा वद्देग को अभिषिक्त किया। तभी से अरिकेसरी राष्ट्रकूट साम्राज्य सुभद्र था, पर जब कृष्ण का पुत्र सिंहासन पर बैठा तो साम्राज्य में विघटनकारी शक्तियाँ बल पकड़ती गयीं। परिणामतः राष्ट्रकूट और चालुक्यों के बीच साम्राज्य की सीमा में कभी-कभी संघर्ष होने लगा।

मंत्रालोचन के समय तैलप ने दल्लप और मल्लप से कहा–''अब राष्ट्रकूटों से युद्ध अनिवार्य है। आप में से एक पर राजधानी की रक्षा का भार होगा और दूसरे को रणक्षेत्र का भार संभालना होगा।'' दल्लप ने कहा–''प्रभो! राष्ट्रकूट और उनके

सहायक गंग जैन हैं। हम भी जैन हैं। सेनापति मेरा पुत्र है। यदि हम युद्ध में हार गये तो लोग यह कहकर निंदा करने लगेंगे कि हम जानबूझकर राष्ट्रकूटों से मिले। सारा जैन समाज बदनाम होगा। अतएव आप कुछ दिनों के लिए सचिव एवं सेनापति पद से जैनों को निवृत्त कर दीजिए।'' मल्लप ने कहा–''मेरे विचार से सब जैन पदाधिकारियों को नजर बंधकर रखना योग्य है। अब की बार युद्ध की बागडोर आप अपने हाथ से संभालिए। मानव मन का क्या भरोसा, कौन जाने कब किस प्रलोभन में आकर वह पलट खा जाये?'' तैलप ने कहा–''दल्लप जी! हमने आपको पिता तुल्य माना है। यदि आप यह युद्ध नहीं करना चाहते हैं तो एक काम कीजिए हमको कारागृह में ढकेल दीजिए। औरों की सहायता से प्राप्त होने वाली जयश्री की अपेक्षा, अब तक हमारे आत्मीय रहकर, हमें महाराजा की गद्दी पर बिठाकर, हमारे यश के लिए कारण बने हुए आप लोगों के सम्मिलित होकर धोखा देने पर मिलने वाली हार हमारे लिए श्रेयस्कर है। इस हार को हम अपना अहोभाग्य मानेंगे। हम किसी को भी पदच्युत करना या बदलना नहीं चाहते हैं। बेड़ा आप लोगों के हाथ में है।''

नागदेव महा साहसी था। तैलप ने उसे 'भट-मल्ल' और 'दिग्गज' की उपाधि देकर सम्मानित किया था। कई लड़ाइयों में नागदेव के कारण ही तैलप विजयी बन सके थे। नागदेव के चरण चिन्ह देखकर विजय श्री उसके पीछे-पीछे जाती थी। हार कभी नागदेव के पाले न पड़ी थी। राजभक्ति की जड़ उसमें जमी हुयी थी।

दल्लप और मल्लप दोनों के लिए यह परीक्षा का समय था। स्वयं जैन होते हुए उन्हें जैनों से लोहा बजाना था। अतएव दोनों ने अपने-अपने पुत्रों से उनका अभिमत जानने अलग-अलग विचार विमर्श किया।

''पिताजी! युद्ध क्षेत्र में कौन अपना होता है? यदि इस अवसर पर हम शस्त्र ग्रहण नहीं करेंगे तो अब तक जो कुछ किया है सब व्यर्थ हो जायेगा। अब तक हमें आश्रय देकर, पद और प्रतिष्ठा देकर सम्मान किया है तो चालुक्यों ने, न की राष्ट्रकूटों ने। अब राष्ट्रऋण चुकाने का मौका आया है तो क्या हम धर्म के बहाने पीछे हट जायें? इस तरह तो हम धर्म और राष्ट्र दोनों से भ्रष्ट हो जायेंगे। जैन धर्म ने कहाँ राष्ट्रदोह करने का आदेश दिया है? मैं मर सकता हूँ, पर बदनाम नहीं हो सकता। क्या नमकहराम बनकर नारकीय कीड़ा बनूँ?'' इस प्रकार कहकर नागदेव ने अपना अभिमत सुना दिया।

मल्लप के पुत्र भी राष्ट्रनिष्ठा में अद्वितीय थे। राष्ट्र की पुकार पहले सुनी जाये, बाद को और कुछ, इस निश्चय के साथ राष्ट्रकूटों से मुकाबला करने का संकल्प किया गया।

एक दिन नागदेव अपनी पत्नियों और अपने एक साल के पुत्र अण्णिग के साथ उपवन में गया। गुंडुमब्बे ने नागदेव से पूछा–''क्या बात है? आज आप अनमने क्यों हैं?'' ''राष्ट्रकूटों से लोहा बजाना है।'' नागदेव ने अपनी समस्या संक्षेप में कह दी। अत्तिमब्बे ने कहा–''चामुण्डराय जी आदि से बातकर संधि कर लीजिए।'' नागदेव ने कहा–''यह प्रयत्न किया गया, परंतु वे लोग मुझे राष्ट्रकूटों का पक्ष लेने के लिए फुसला रहे हैं। एक प्रांत का राजा बनाने तक का प्रलोभन दिया है। मैं तुम दोनों की राय जानना चाहता हूँ।'' अत्तिमब्बे ने कहा–''प्रियतम! आप बिना आगा पीछा किए शस्त्र उठाइये। स्वामीद्रोह करके क्या हमारा वंश रह सकेगा? हम क्या जीने योग्य रहेंगे? आप दिग्गज हैं, भटमल्ल हैं, युद्ध से आप क्यों कर पीछे हटेंगे?'' गुंडुमब्बे ने कहा–''प्राणेश्वर! कल ही आप कूच कर दीजिए। अब किसी से सलाह लेने की जरूरत नहीं है। हम अपने राष्ट्र के लिए सर्वस्व त्याग करने में सिद्ध हैं। युद्ध में काम आए तो वीर, स्वर्ग प्राप्त होगा, विजयी हुए तो वहाँ सम्मानपूर्वक जियेंगे। दोनों दशा में आपकी विशद कीर्ति अजर और अमर होगी। यदि आप युद्ध से पीछे हटे या द्रोह कर बैठे तो न केवल आप बदनाम होंगे बल्कि आपकी संतान भी निरंतर इस अपमान का शिकार बन जायेगी।''

चालुक्य सेना ने समरोत्साह से कूच किया। सेनापति का वेष धारण किये नागदेव ने सभी वृद्धों को नमस्कार करके आशीर्वचन पाया, जिनगंधोदक को रक्षामणि की भाँति सिर पर धारण किया। वीर गीत गाते हुए अत्तिमब्बे और गुंडुमब्बे ने नागदेव की आरती उतारी और सिर पर वीराक्षताएं डालीं। ''आप बाहुबली के समान अभिमान धन बनें। किसी भी कारणवश आपका मन विचलित न हो। आप विजयवधू के साथ घर आयें।'' कहकर अत्तिमब्बे ने पति का उत्साहवर्धन किया। गुंडुमब्बे ने कहा–''आप लोकैकवीर अर्जुन से लग रहे हैं। अर्जुन अजेय था, आप भी अजेय रहें। आप युद्ध में कालभैरव हैं, अवश्य अरिपुर भस्म करके मुख दर्शन दीजिएगा।'' अण्णिग को गोद में लेकर नागदेव कुछ क्षण तक खेलता रहा। इस प्रकार सबसे विदा लेकर सेनानी नागदेव सेना से मिले। अत्तिमब्बे और गुंडुमब्बे की दृष्टि उस पथ पर लगी रही जिस पथ से होकर नागदेव विजय यात्रा करने निकला था।

संख्या की दृष्टि से चालुक्यों की सेना अधिक नहीं थी, परंतु उस सेना का अधिपति महा पराक्रमी नागदेव था। नागदेव व्यूह रचकर युद्ध करता था। इस कला में उसका अपार कौशल था। राष्ट्रकूटों की सेना संख्या की दृष्टि से चालुक्यों की सेना से कई गुणा अधिक थी। भरपूर युद्ध सामग्री भी थी। परंतु कोई ऐसा सेनापति नहीं था जो इनका उपयोग व सेना का संचालन बुद्धिमता से कर सके।

दोनों पक्षों में हफ्ते भर घमासान युद्ध हुआ। चालुक्यों ने राष्ट्रकूटों पर हमला करके इस प्रकार उनका नाश किया मानो मतवाले हाथियों का झुण्ड ईख के खेत में पहुँचकर सफाचट कर रहा हो। नागदेव का युद्धोन्माद वर्णनातीत था।

सेनापति के गिरते ही राष्ट्रकूट सेना भागने लगी। राष्ट्रकूटों की राजधानी पर चालुक्यों का झंडा फहराने लगा। शतमानो से संचित अपार संपत्ति को तैलप ने दिल खोलकर सैनिकों में लुटा दी।

राष्ट्रकूटों पर चालुक्यों के हमले की खबर पाते ही मारसिंह अपनी सेना लिए सहायता करने निकला। उस समय चामुण्डराय अन्यत्र गये हुए थे, अतएव मारसिंह को ही आना पड़ा। परंतु मारसिंह राष्ट्रकूटों की सहायता नहीं कर सका, क्योंकि तब तक राष्ट्रकूट पूर्णतया हार चुके थे। फिर भी बदला चुकाने के उद्देश्य से मारसिंह ने चालुक्यों पर हमला किया। नागदेव ने सोचा कि ''उत्तरा कुमारों से लड़कर जीतने की अपेक्षा अर्जुन से लोहा बजाकर हार जाना श्रेयस्कर है, इसमें हार और जीत दोनों में कीर्ति है।'' ऐसा सोचकर नागदेव ने हथियार उठाया।

मारसिंह ने द्वंद युद्ध करने का निश्चय किया। नागदेव ने भी स्वीकार किया। दोनों में मल्ल युद्ध हुआ तो पश्चात् गदा युद्ध हुआ। मारसिंह ने एकाएक नागदेव पर सिंह के समान झपटकर उसे आकाश में फेंक दिया, गेंद की भांति उसे पकड़कर जमीन पर दे मारा। नागदेव ने शार्दूल के समान देखते-देखते मारसिंह पर सहसा आक्रमण किया। दोनों पक्ष की सेना निश्चेष्ट खड़ी यह युद्ध देख रही थी। ऐसा लग रहा था मानो वे दोनों एक-दूसरे को मारना नहीं चाहते हैं। कई बार ऐसे मौके दोनों को मिले, जब वे विपक्षी का संहार कर सकते थे, परंतु ऐसे अवसरों पर वे दोनों उदासीन से रह जाते।

सहसा एक दुर्घटना हुयी। राष्ट्रकूटों का सेनापति वहीं, एक पेड़ पर छिप कर बैठा था। नागदेव को दाँव पर पाकर उसने सोचा कि अब खत्म कर देना चाहिए। तुरंत निशाना लगाकर उसने नागदेव की छाती पर एक भाला दे मारा। वह नागदेव के वक्षस्थल में जा धँसा। नागदेव परकटे विंध्याचल के समान बैठ गया। मारसिंह ने तुरंत उसे दोनों बाहुओं से उठाकर संभालने का प्रयत्न किया। उसे बड़ा पश्चाताप और खेद हुआ। पर किया क्या जाए? जो नहीं चाहता था, वह हो गया था। मारसिंह पर नागदेव की मृत्यु का गहरा प्रभाव पड़ा। उस दिन से उसे अन्न जल तक में अरुचि हो गयी। विजय से वैराग्य! यही तो विधि की विडंबना है। होनहार को कोई नहीं मिटा सकता। कारण कुछ भी हो जो कुछ होना है वह होकर ही रहेगा।

विजय श्री ने चालुक्यों का वरण किया। राष्ट्रकूट के राज्य पर तैलप का अधिकार हुआ। पर परिस्थिति ऐसी थी कि जैसे बच्चे को जन्म देकर माँ का स्वर्गवास हुआ हो। जब नागदेव का पार्थिव शरीर राजधानी में लाया गया तब उसे गोद में रखकर तैलप

इस भाँति रो पड़े मानो स्वयं विधवा बने हों। दल्लप का हाल क्या कहा जाए? इकलौते पुत्र को खोकर पागल सा हो गया था, बोला–''प्रभो! अब मेरा क्या होगा? घर पर दो-दो विधवाओं को मुँह दिखाने कैसे जाऊँ? आप मेरा भी वध कर डालिए। यह सबसे बड़ा अनुग्रह होगा। मैं ही आत्महत्या कर लूँगा।'' कहते हुए सचमुच वह संगीन को अपनी छाती में भौंकने लगा। तैलप ने सहसा उसका हाथ थामकर संगीन को झटके से छीन लिया।

शव को घर लाया गया। वहाँ शोक और रूदन का सागर ही उमड़ आया। ''मेरे स्वामी! क्या मरने के लिए ही हमारी सलाह माँगने आये थे'' कहती हुयी अत्तिमब्बे पैर के पास बैठकर रोने लगी। ''हाय! मैंने आपसे विजयी होकर ही दर्शन देने को कहा था। वह शाप नहीं था, शुभकामनाएं थीं।'' ऐसा सोचते हुए गुंडुमब्बे आँसू बहाने लगी।

''माताजी! अब हम किसलिए जियें? हम से कोई अपराध हुआ हो तो क्षमा कीजिए। प्राणेश्वर के साथ मैं भी जाऊँगी।'' अत्तिमब्बे बोली। ''सास जी! सहगमन की अनुमति दीजिए।'' कहकर गुंडुमब्बे बहन के पैरों से लिपट गयी।

''गुंडू! उठो, क्या सहगमन करते समय तुम्हें छोड़ जाऊँगी? हाय रे! क्या मेरे साथ सहगमन करने मात्र के लिए मेरे पीछे-पीछे आयी थीं? उठो बहन, जो मेरा हाल होगा वही तुम्हारा भी होगा।'' कहकर अत्तिमब्बे ने बहन को गले लगा लिया और दोनों फूट-फूटकर रोने लगीं।

''हाय रे बेटा!'' प्रलाप करती हुयी पद्मब्बे ने बेटे के शव को गोद में उठाकर रख लिया। अब्बकब्बे रोते-रोते कह रही थी–''इसीलिए तो बेटा हमने कहा था कि दोनों एक ही को मत वरो।'' मल्लप बड़ा धीर था, परंतु वह भी रो रहा था।

तैलप की रानी आयी और नागदेव की पद्धूलि से तिलक करती हुयी शव के पास बैठ गयी। रोती हुयी रानी से पद्मब्बे बोली–''महारानी जी! मेरे बेटे का बलिदान देखिए।'' ''रानी जी! आप लोगों की साम्राज्य दाह ने मेरी दो-दो बेटियों के मांगल्य को मिट्टी में मिला दिया।'' अब्बकब्बे ने डाँटते हुए कहा। ''ठीक कहती हो बहन, पर कौन हम स्त्रियों की बात सुनता है? अपनी झूठी प्रतिष्ठा के लिए पुरुष आपस में लड़ते हैं और सुहाग लुटता है हम स्त्रियों का। मेरा वश चले तो मैं युद्ध को सदा के लिए रोकना चाहती हूँ। अब इस साम्राज्य को देकर भी क्या हम नागदेव जैसे देवर को पा सकेंगे?'' महारानी ने अपनी विवशता बतलायी।

नागदेव के शव संस्कार की तैयारी हुयी। गुंडुमब्बे ने याचना की–''बहन! मुझे अंतिम वरदान दो।'' अत्तिमब्बे ने कहा–''कहो न बहन।'' ''जीजी! तुम्हारा बेटा है। मेरा कोई नहीं है। मेरा जीवन अमावस्या की गहरी रात है। तुम मुन्नू के वास्ते जीवित

रहो और मुझे निश्चिंत होकर जाने दो।'' गुंडुमब्बे की बात पूरी भी नहीं हो पायी थी कि अत्यंत रूष्ट होकर अत्तिमब्बे बोली–''भला, बेटे का बहाना दिखाकर मुझे सहगमन से वंचित करना चाहती हो? क्या पति पर मेरा कोई हक नहीं? क्यों तुम ही उन्हें अपनाकर मुझसे सदा के लिए छीन लेना चाहती हो? मैं जिंदगी भर जलती रहूँ और निश्चिंतता से सती बनकर इह और पर दोनों को तुम निभाओ, खूब सोचा, सौत आखिर सौत ही तो होगी। तभी तो मैंने अपने पति के हाथों तुम्हारी माँग भरवाई थी। अब तुम ही घर रहो, मैं सती बनूँगी। क्या अण्णिग तुम्हारा बेटा नहीं है।'' ''बहन क्या हम दोनों की प्रतिस्पर्धा में अण्णिग अनाथ बन जाये?'' गुंडुमब्बे यह कह रही थी कि अण्णिग वहाँ चला आया। अत्तिमब्बे का मातृ हृदय मचल पड़ा। उसने बेटे को छाती से लगा लिया। आंसू दुगने वेग से उमड़ पड़े। किसी प्रकार संभलकर वह फिर बोली–''गुंडू! मेरे लिए इतना त्याग और करो। लो, यह तुम्हारा बेटा है, तुम्हें सौंपती हूँ। बदले में मुझे सती होने दो।'' ''जीजी! क्या हमारे बुजुर्ग नहीं हैं? उनके कहने के अनुसार हम बरतें।'' गुंडु ने सलाह दी।

सभी हितेच्छु कुलवृद्धों ने मिलकर निर्णय दिया कि गुंडुमब्बे सहगमन करे और अत्तिमब्बे अण्णिग के पालन पोषण का भार संभाले।

अत्तिमब्बे ने कहा–''मैं पांव पड़ती हूँ मुझे न रोकिये।'' ''अत्ति! कैसी अबोध बातें करती हो? इस दूधमुँह बच्चे को छोड़कर सहगमन करने से क्या तुम्हें शांति मिल सकेगी? सहगमन ही एक मात्र कर्तव्य नहीं है।'' अब्बकब्बे ने डांटने वाली आवाज में कहा।

सभी के समझाने पर अत्तिमब्बे को मानना ही पड़ा। गुंडुमब्बे ने नई दुल्हन के जैसे सोलह सिंगार किया, बड़े बूढ़ों को नमस्कार करके आशीर्वाद पाया। अण्णिग को गोद में लेकर पुचकारा, तब उसके धैर्य का बांध टूट गया। किसी तरह उसे उतारा और अत्तिमब्बे को छाती से कसकर लगाया, तब आंसू का बांध फिर टूट गया। जलती चिता की तीन परिक्रमा की और पंचपरमेष्ठियों का मंत्र जपते-जपते उसने चिता में इस प्रकार प्रवेश किया मानो लता मण्डप में प्रवेश कर रही हो। उस समय उसका मुँह अलौकिक कांति से चमक उठा। हँसते-हँसते चिता पर चढ़ी और पति की बगल में सो गयी।

उखाड़ी गयी लता-सी अत्तिमब्बे मुरझा गयी। बिना दबाब डाले उसको खिलाना-पिलाना भी मुश्किल बना। कभी-कभी नन्हा अण्णिग ठूँठ सी पड़ी हुयी माँ को हिलाकर कर उसका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयत्न करता। पर अत्तिमब्बे यह सब जानती हुयी भी अनजान सी पड़ी रहती थी, क्योंकि अब उसके लिए संसार में कोई आकर्षण नहीं बचा था।

''अत्ति! कैसे सहूँ? हृदय विदारक है बेटी। उठो, बेटा तो गया, क्या तुम यही चाहती हो कि इस उम्र में इकलौते पोते को भी गवा बैठूँ? इसकी रक्षा हमारे लिए ही सही, करो।'' कहते हुए पद्मब्बे रो पड़ी। ''माताजी! मैं और किसलिए जियूँ? विधवा हूँ, समाज का कलंक हूँ। मेरा न रहना ही अच्छा है। अमंगल की मूर्ति बनकर, धर्म-कर्म से हीन होकर भी क्या जीना है? गुंडू सचमुच सौभाग्यवती थी, मरकर अमर बनी। मैं जीकर नरक यातना भोग रही हूँ।'' कहकर अत्तिमब्बे छटपटाने लगी। पद्मब्बे ने कहा–''अत्ति! पुत्र को खोकर कौन-सा बड़ा सुख हम भोग रहे हैं? हम जिंदा हैं तो केवल तुम्हारे और तुम्हारे इस बच्चे के लिए। सोचो, अगर पेड़ ही अपनी शाखा की उपेक्षा करने लगे तो उसका क्या हाल होगा? यदि तुम ही अपनी संतान की उपेक्षा करो तो बेचारा क्या करे और कहाँ जाये? तुम्हारी इस उपेक्षा का क्या परिणाम होगा? लोग क्या कहेंगे?''

दो-एक दिन बाद पंप कवि विजयपुर आये। पुरानी स्मृतियाँ आंसू की धारा बन प्रवाहित हुयीं। दल्लप पुत्रशोक में विलाप करने लगे। सांत्वना देते हुये पंप देव बोले–''दल्लप जी! आपका दुःख मैं समझ सकता हूँ। जरा सोचिए, मरना तो अनिवार्य है, परंतु आपका बेटा मरकर भी अमर बना है कि नहीं? कौन आप के बेटे का शौर्य पराक्रम नहीं जानता? शत्रु तक सराहते हैं। वीर पुत्र के योग्य वीर पिता होकर आप आंसू पोंछ डालिए। आप अत्ति को सांत्वना दीजिए और अण्णिग को सुयोग्य बनाने का कर्तव्य पालन कीजिए।'' दल्लप ने कहा–''पंपदेव! हम कगारे पर के पेड़ हैं। किसी तरह हमारे दिन कट जायेंगे, पर अत्तिमब्बे को संभालना असंभव हो गया है। हम प्रयत्न करके हार गये हैं। आप पत्थर में जान फूंकने की प्रतिभा रखते हैं। कुछ तो कीजिए कि अत्तिमब्बे लोक व्यापार में प्रवृत्त हो जाए ताकि बच्चे को संभाल ले।''

पंपदेव ने अत्तिमब्बे से भेंट की। ''अत्ति! बेटी! मेरी ओर देखो। मैं आया हूँ।'' पंपदेव ने अत्तिमब्बे का ध्यान खींचने के लिये कहा। अत्तिमब्बे ने कहा–''मामा जी! आप अब आये? पर यहाँ सब समाप्त हो चुका है।'' ''बेटी! जीवन बहुमुखी होता है। अब तुम्हारा पति मात्र नहीं रहा, परंतु जीवन के कई पहलुओं को संभालने के लिए तुम्हें जीना ही होगा। उठो बेटी, अण्णिग की देखभाल में पति वियोग का दुःख भूल जाओ। देश भी तुम्हारी सेवा की प्रतीक्षा कर रहा है।'' पंपकवि ने समझाने का प्रयत्न किया। अत्तिमब्बे ने कहा–''मैं क्या कर सकती हूँ?'' पंप देव ने कहा–''ऐसी निराश मत बनो। कन्नड़ साहित्य की श्रीवृद्धि और विकास तुम जैसी कल्पलता पर निर्भर है। जैन साहित्य और संस्कृति तुम्हारे जैसे उदार चित्त वालों का मुँह ताक रही है।'' इस प्रकार पंप देव ने अत्तिमब्बे के शून्य जीवन को कर्तव्य क्षेत्र का परिचय कराकर कार्यों से भर देने का प्रयास किया। अत्तिमब्बे ने कहा–''मामा जी! वह काम धन से होता

है, मुझसे नहीं। मैं निमित्त मात्र हूँ। मैं न रहूँ तब भी धन रहेगा ही। अब मुझे यह सब धर्म का बंवडर-सा लगता है।''

''और एक बात है बेटी, नागदेव युद्ध में मरे।'' पंपदेव ने दूसरे प्रकार से समझाने का प्रयास किया। बात काट कर अत्तिमब्बे बोली–''मरे नहीं, किसी हत्यारे ने छिपकर मारा है।'' पंपदेव ने कहा–''ऐसा ही सुना है। बड़ा अन्याय हुआ। फिर भी युद्ध में न जाने कितने जवान कट मरे? बेटा! उनकी मां बहिन और बहुओं का दु:ख कौन दूर करे? उनमें से बहुतों को दो कौर अन्न तक मिलना दुर्लभ होता होगा। उठो, उनकी सेवा करो। भगवान की कृपा से तुम्हारे पास संपत्ति है। उन हतभागिनियों के आंसू और दु:ख तुम दूर कर सकती हो।'' पंपदेव की बातों का उस पर असर पड़ने लगा।

तैलप राष्ट्रकूटों को पराजित कर विशाल साम्राज्य के सम्राट बने, अपने राजकुमार इरिवबेडंग को युवराज बनाया। इस अवसर पर सम्राट ने लक्कुंडी और मासवाड़ी के कुल एक सौ चालीस ग्रामों का राजा अण्णिग को घोषित किया। नागदेव को जो राज सम्मान प्राप्त थे उन सभी सम्मान को सर्व सेनाधिपत्य के साथ अण्णिग को दिया।

''अत्ति! तुम्हारा यह लाड़ला राजा बना है। जब तक धर्म पर इसका राज्यशासन टिका रहेगा तब तक वह धर्म हमारी रक्षा करेगा।'' कहकर पद्मब्बे ने अण्णिग की बलैय्या लीं। अत्तिमब्बे ने कहा–''माँ! एक बार हम लोग राज्य की सैर कर आवें।'' पद्मब्बे ने स्वीकृति दे दी।

यात्रा प्रारंभ हुयी। अत्तिमब्बे ने पुत्र के राज्य को देख लिया। पंपदेव की बात को ध्यान में रखकर उसने शक्तिभर जनता के दु:खों को जानने का प्रयत्न किया और आवश्यकतानुसार मंदिर, कुआँ, धर्मशाला आदि बनवाकर उनकी माँगों को पूरा किया। अत्तिमब्बे ने सोचा लक्कुंडि राजधानी बनने योग्य स्थान है, इसलिए सबसे पहले वहाँ जिनालय की नींव डाल दी और लाखों स्वर्णमुद्राओं को खर्च करके जिनालय बनाने का संकल्प किया।

एक बार रन्न विजयपुर आया। अत्तिमब्बे से बोला–''माँ! मैं कैसा अभागा हूँ? पिता-तुल्य अपने स्वामी का अंतिम दर्शन तक नहीं पा सका। कम से कम आप कहला भेजतीं।'' ''बेटा! उस अपार शोक में मुझे एक भी नहीं सूझा।'' कहते हुए अत्तिमब्बे का गला गद्गद् हो गया। रन्न ने कहा–''माँ! मैंने आप को दोष नहीं दिया, अपने दुर्भाग्य की बात कही। अब मेरी एक प्रार्थना है।'' ''कहो बेटा, मेरे लिए तुम और अण्णिग दोनों एक से हो। पैसे की कमी हो तो जितना चाहे लो। संकोच मत करना।'' ऐसा कहकर अत्तिमब्बे ने तिजोरी की चाबियाँ उसके हाथ में दे दीं। रन्न ने कहा–''माताजी! आपके आशीर्वाद से आपका नाम लेते ही रुपये मिल जाते हैं। हाल ही मैं चामुण्डराय जी बंकापुर आये थे। यहां का सारा समाचार उन्हीं से जाना।

राष्ट्रकूटों के पतन और अप्पा जी की मृत्यु के विषय में जानकर आचार्य जी ने मुझे आपके पास भेजा है। अब जैन धर्म, साहित्य और संस्कृति का नाश नहीं होना चाहिए, ये रत्नत्रय हैं। अब इनकी रक्षा का भार आप पर है। राष्ट्रकूटों के पतन से अपार क्षति हुयी है, उसे आप भर सकती हैं, यही अजितसेनाचार्य जी का संदेश है।'' ''तात! मैं धर्म-कर्म हीन विधवा हूँ। मैं कैसे धर्म और संस्कृति की रक्षा कर पाऊँगी? जैन साहित्य अपार है, उसका पुनरुद्धार मुझ हतभागिनी से कैसे संभव है? जो भार राष्ट्रकूट सार्वभौम संभाल रहे थे, उसे इस भाग्यहीन नारी पर लादना क्या उचित है?'' अत्यंत हताश होकर अत्तिमब्बे बोली। ''माताजी! आप हीन भावना का त्याग कीजिए। आप उदार, महा-महिमामई हैं। आचार्य श्री ने सोच समझकर ही आप को इस कार्य में नियोजित किया है। शुभ संकल्प कीजिए। शुभ ही होगा।'' कहकर रन्न ने आत्म विश्वास जगाने का प्रयत्न किया। ''वत्स! मैं अकेली क्या कर पाऊँगी? आचार्य जी का आदेश टालते नहीं बनता, क्या करूँ?'' कहकर अत्तिमब्बे सिर पर हाथ धरे बैठ गयी। रन्न ने कहा–''माताजी! आप नारी रत्न हैं। आप सब के सम्मुख एक जीता जागता आदर्श बन कर विराजें, इसलिए मैं आप की ओर से आचार्य जी को आश्वासन दे चुका हूँ।'' अत्तिमब्बे ने कहा–''रन्न! तुमने ऐसा क्यों किया? बिना सोचे समझे ऐसा वचन दे देना क्या उचित है? आखिर मेरी शक्ति और सामर्थ्य को क्या जानते हो?'' रन्न ने कहा–''माताजी! यदि आप चाहें तो सौ-सौ सम्राट भी नहीं कर सकें इतना कर सकती हैं, मुझे पूरा विश्वास है। माँ! आपने देखा है कि युद्ध से कैसा अनर्थ हुआ? आप जनता में सच्चे धार्मिक संस्कार डालने का प्रयत्न कीजिए, अहिंसा का प्रचार कीजिए, नव निर्माण की नींव डालिए। यही आचार्य श्री के संदेश का तात्पर्य है।'' अत्तिमब्बे ने कहा–''तात! मैं अपनी सीमा से परिचित हूँ, फिर भी इतना आश्वासन देती हूँ कि अपने जीवन का प्रत्येक क्षण और अपनी सारी संपत्ति जैन धर्म और जैन संस्कृति के लिए अर्पित कर सकूँगी।'' रन्न ने कहा–''माँ! मेरी एक प्रार्थना और स्वीकार करें। चामुण्डराय जी अत्यंत आदर के साथ मुझे निमंत्रण दे रहे हैं। आप की अनुमति मिले तो मैं उनके यहाँ कुछ दिन रहना चाहता हूँ।'' अत्तिमब्बे ने कहा–''तात! यदि तुम जाना चाहते हो तो जाओ। राव जी के साथ जा रहे हो तो न जाने फिर कब तुम से भेंट होगी? इसलिए चाहती हूँ कि तुम विवाह कर लो। तब कहीं मैं निश्चिंत होऊँगी।''

जिनवल्लभ की बहन की यमज संतानें शांति और जक्कि थीं। उनके साथ रन्न का विवाह संपन्न हुआ। जक्कि और शांति के साथ रन्न का चामुण्डराय के दरबार में जाना निश्चय हुआ। रन्न को विदा करते समय अत्तिमब्बे ने अपने और गुंडुमब्बे के गहनों को अत्यंत उदारता से शांति और जक्कि में बाँट दिया।

एक बार अपनी सास से अत्तिमब्बे ने पूछा, ''माँ! क्या हमारे ही कारण राष्ट्रकूटों का नाश हुआ?'' ''अत्ति! क्या कोई किसी का नाश कर सकता है? उन्होंने कई बार चालुक्यों को हरा दिया था। अब उनकी अवनति का काल आया, हार गये। हम कैसे इसे अपने सिर पे ले सकते हैं?'' पद्मब्बे ने सांत्वना दी। अत्तिमब्बे ने कहा–''माता जी! अजितसेनाचार्य जी ने रन्न के द्वारा कहला भेजा है कि धर्म, संस्कृति और साहित्य की रक्षा का भार हम अपने कंधों पर लें।'' पद्मब्बे ने कहा–''बेटी! ऐसे कामों में हाथ बंटाना हमारा कर्तव्य है। भगवान का दिया है काहे के लिए? जितना बने करते जाओ।'' ''सर्वप्रथम अहिंसा का प्रचार करना चाहिए। अब लोगों को व्यक्तिगत झूठी प्रतिष्ठा की बात भूलने के लिए प्रेरित करना होगा। युद्ध कभी न हो ऐसा कुछ करना होगा। अनाथ शिशुओं की देख-रेख का प्रबंध करना होगा। जो उजड़े हैं उनको बसाना होगा। इस पर धर्म, संस्कृति और साहित्य का भार भी उठाना हो तो न जाने कितना धन लगेगा।'' अत्तिमब्बे ने अपनी समस्या बतायी।

''अत्ति! धन की चिंता मत करो। अपने पास जो कुछ है सब खर्च हो जाये तब भी चिंता करने की बात नहीं। तुम्हारा बेटा अब राजा है। हम अब जो चाहें कर सकते हैं।'' पद्मब्बे ने भरोसा दिया।

अत्तिमब्बे ने देश की सुव्यवस्था का प्रबंध करके सैकड़ों लिपिकारों को नियुक्त किया। बंकापुर से मँगाए गए ग्रंथों की सौ-सौ प्रतियाँ उतरवाने लगी। बड़े पैमाने पर प्रतिलिपिकारों से ताड़पत्र पर जैन आगम शास्त्रों की प्रतियाँ बनने लगीं। अत्तिमब्बे की दृष्टि आध्यात्मिकता की ओर अग्रसर होने लगी। वह घर पर रहते हुए तपस्या करती, जैन मुनियों की सेवा में लगी रहती, जहाँ कहीं श्रावक अधिक संख्या में रहते थे, वहाँ जिनालय बनवाने लगी। उसने अन्नदान का प्रबंध किया, अनाथालय बनवाए, शास्त्र वाचन की व्यवस्था बड़े पैमाने पर की।

अत्तिमब्बे ने कन्नड़ साहित्य की ओर विशेष ध्यान दिया। संस्कृत, प्राकृत तथा अर्धमागधी ग्रंथों का आदर व प्रतिलिपिकरण समस्त भारत में हुआ करता है, परंतु कोरे कन्नड़ के कवियों की कृतियों का व कन्नड़ भाषा में लिखे साहित्य का आदर कर्नाटक मात्र में संभव है। इनकी प्रतियाँ क्योंकि कन्नड़ जनता के ही काम की होंगी। ऐसा सोचकर जहाँ अन्य ग्रंथों की सौ-सौ प्रतियाँ बनवा रही थी, वहाँ कन्नड़ ग्रंथों की हजार-हजार प्रतियाँ बनवाने लगी। इस प्रकार अत्तिमब्बे कवि कुल के लिए चिंतामणि बन गयी।

जनता के लिए अत्तिमब्बे 'दानचिंतामणि' बनी। उसने डेढ़ हजार स्वर्ण के जिनबिम्ब बनवाकर नव दम्पत्तियों को ग्रंथों और जिन प्रतिमाओं का दान दिया और उनसे कहा–''तुम अपने जीवनकाल में जब कभी संभव बने तब किसी न किसी ग्रंथ

की कम से कम पाँच प्रतियाँ लिखकर दान करना।'' ''माता जी! आपके शुभाशीर्वाद से पाँच ही क्यों, पचास प्रतियाँ बनवाकर दान करेंगे।'' इस प्रकार सहर्ष वादा वे दम्पत्ति करते और विदा लेते थे।

इस प्रकार अत्तिमब्बे का दान एक को दस, दस को सौ के हिसाब से बढ़ाते-बढ़ाते व्यापक आंदोलन सा बन गया। नव दम्पत्तियों के लिए यह एक आवश्यक कर्तव्य बन गया।

अत्तिमब्बे बंकापुर गयी। उसने अजितसेनाचार्य जी के चरणों में अण्णिग को अर्पित करते हुए निवेदन किया–''आचार्य जी! यही हमारे वंश की एक मात्र ज्योति है। यह सौ वर्ष तक प्रज्ज्वलित रहकर धर्म का प्रकाश फैलाता रहे, ऐसा आशीर्वाद दीजिए।'' ''बेटी! तुम साधारण स्त्री नहीं हो। कर्नाटक का कोई भी शासक तुम्हारी बराबरी नहीं कर सकता। तुम व्यक्तिगत शील चारित्र से कर्नाटक की आदर्श महिलामणि हो। इससे भी बढ़कर भक्त शिरोमणि हो और जैन धर्म एवं संस्कृति की तो मुकुटमणि हो। हमने सोचा था कि राष्ट्रकूटों के पतन से जैन धर्म का भाग्य डूब गया, पर तुम्हारे योजनाबद्ध कार्यों से विश्वास हुआ कि जैन धर्म व संस्कृति का नाश असंभव है।'' आचार्य श्री ने कहा। अत्तिमब्बे ने घबराते हुए कहा–''प्रभो! आप मुझे न कहिये। आप की बातों से इस दुर्बल नारी का सिर चकरा जायेगा।'' ''देखो बेटी, तुम्हें बनाने के लिए नहीं कह रहा हूँ, सत्कर्म देखकर साधुवाद देना चाहिए। तुम्हारा जीवन जितना कल्याणमय है, उससे भी अधिक कल्याणमय तुम्हारे पुत्र का जीवन होगा। अत्तिमब्बे तुम कहीं भी रहो वहीं तीर्थ बनेगा। तुम्हें वाक्सिद्धि का वर प्राप्त है। तुम्हारे स्पर्श से मिट्टी का ढेला भी सोना बन जायेगा।'' आचार्य जी के हृदयांतराल से बातें निकल रही थीं। ''प्रभो! मैं सिद्धि नहीं चाहती, न स्पर्श से सोना बना देना ही। आपके श्री चरणों के प्रभाव से यह मेरा हृदय जिनमंदिर बन जाये। न धन चाहती हूँ, न मान सम्मान चाहती हूँ, केवल यही चाहती हूँ कि मेरी जीभ सदा जिनमंत्र जपा करे। जिन धर्म की सेवा करने के लिए जितनी बार चाहे मुझे जन्म मिले।'' ऐसा कहते-कहते अत्तिमब्बे गद्गद् हो गयी।

अजितसेनाचार्य जी के दर्शन से अत्तिमब्बे का उत्साह दुगुना बढ़ गया। उसने सोचा कि मानव की आयु सीमित है, अतएव जो भी कुछ धर्म-कर्म करना है जल्दी से जल्दी करना है ताकि हँसते-हँसते विदा ले सकें।

राष्ट्रकूटों के पतन के साथ मालव स्वतंत्र बना। उत्तर के कई प्रदेशों को जिन पर राष्ट्रकूटों का शासन चल रहा था, मालव परमारों ने हड़प लिया। बाद में कन्नड़ जनता पर भी आक्रमण करने लगे। तैलप ने कई बार उनका मुकाबला किया और अंत में थककर अपने पुत्र इरिवबेडंग के नेतृत्व में बड़ी सेना भेजने का निश्चय किया।

इरिवबेडंग यात्रा के पूर्व अत्तिमब्बे से आशीर्वाद लेने आया। मल्लप और दल्लप ने होनहार सम्राट का स्वागत किया।

''माताजी! यह मेरी प्रथम समर-यात्रा है। आशीर्वाद दीजिए, ताकि मैं विजयी बनूँ।'' ऐसा कहते हुए इरिवबेडंग ने अत्तिमब्बे की चरण रज उठाकर सिर पर लगायी। ''बेटा! समर में सम्मिलित होने वाले को आशीर्वाद देते में मुझे भय होता है।'' कहते हुये अत्तिमब्बे पीछे हट गयी। ''माता जी! आपको हमारे राज्य की प्रजा देवता मानती है। आपका आशीर्वाद वज्र-कवच होगा। आपके स्पर्श में संजीवनी शक्ति है। आपकी कृपा दृष्टि से मृतक भी जी उठता है।'' कहकर राजकुमार ने प्रार्थना की। ''बेटा! रहने दो। तुम्हारे कहने के अनुसार रत्तीभर भी मुझमें शक्ति होती तो क्या मैं अपने प्राणेश्वर को खो बैठती? खैर, परमात्मा की कृपा पर भरोसा रखकर जाओ।'' अत्तिमब्बे ने कहा। ''देखिये, आप मेरे सिर पर हाथ रख कर कह दें कि तुम विजयी बनो।'' ऐसा कहते हुये इरिवबेडंग ने और एक बार चरणों में सिर झुकाया। अत्तिमब्बे द्रवित हो उठी और बोली–''बेटा! धर्म युद्ध करो। जाओ, विजयवधू के साथ लौटो। धर्म तुम्हारी रक्षा करेगा।''

अत्तिमब्बे के आशीर्वचन और स्पर्श पाकर इरिवबेडंग को बड़ा आनंद मिला। पास ही बैठे हुए रन्न से वह बोला–''महाकवि! आप समर यात्रा में साथ दें तो अच्छा होगा। आप से हमारा उत्साह बढ़ेगा और युद्ध के साक्षात् अनुभव से आपका साहित्य सजीव बनेगा।''

रन्न ने अपने जाने और न जाने का निर्णय अत्तिमब्बे पर डाल दिया। ''रन्न! तुम्हारे द्वार पर भाग्य ही चला आया है। जाओ, देखो, समर में साहस की कमी न हो और धर्म-ग्लानि भी न हो।'' ऐसा कहकर अत्तिमब्बे ने रन्न को विदा किया।

परमारों के साथ महीनों तक युद्ध चला। युद्ध समाप्त हुआ। इधर रन्न का गदायुद्ध भी समाप्त हुआ। इस काव्य का नाम 'साहस भीम विजय' रखा गया। इरिवबेडंग और साहस भीम में अभेद दृष्टि रखकर काव्य की रचना हुयी। रन्न ने इरिवबेडंग को काव्य समर्पित किया। चालुक्य सम्राट तैलप रन्न के गदायुद्ध में पुत्र इरिवबेडंग के युद्ध कौशल का वर्णन देखकर प्रसन्न हुआ। उसने रन्न को 'कवि-सम्राट' कहकर समादृत किया, सुवर्ण-दण्ड, कनक-चँवर, हाथी, घोड़े आदि सभी राजगौरव कवि रन्न को दिये और बत्तग्राम को जागीर में दिया।

इन सारी उपलब्धियों को रन्न ने अत्तिमब्बे के चरणों में अर्पित करके निवेदन किया–''माताजी! यह सारी प्राप्तियाँ आपकी हैं। आपके पद-रज के सम्मुख इनका क्या, ऐसे हजारों राजाओं से प्राप्त सम्मान भी तुच्छ हैं।'' ''रन्न तुम्हारी कीर्ति से मेरा हृदय फूले नहीं समाता। अब तक तुमने जो भी काव्य रचना की वह केवल लीला है,

शब्द जाल है, लोक प्रसिद्धि की भूख से प्रेरित थी। वह अब मिट गयी होगी। अब आत्मोद्धार के लिए काव्य लिखो। तीर्थंकरों की लीलाओं का वर्णन करो। तब मैं अपनी ओर से तुम्हें एक पुरूस्कार दूँगी, समझे।'' कहकर अत्तिमब्बे मुस्कुराई। ''माता जी! आपका शुभाशीर्वाद ही पर्याप्त है। शीघ्रातिशीघ्र आपके आदेश का पालन करके कृतकृत्य बनूँगा।'' कहकर रन्न ने प्रणाम किया।

चामुण्डराय ने माँ काललादेवी की महदिच्छा को पूर्ण करने के लिए श्रवणबेलगोल के विन्ध्यगिरि पर बाहुबली भगवान की विशाल मूर्ति खुदवायी। चामुण्डराय की आज्ञानुसार रन्न ने अत्तिमब्बे को सपरिवार भगवद्दर्शनार्थ आने का निमंत्रण दिया।

भगवद्दर्शन करने तक दिन में केवल एक बार दूध और फल लेने का संकल्प अत्तिमब्बे ने किया। यह सुनकर सभी को चिंता हुयी। ''कहाँ विजयपुर और कहाँ श्रवणबेलगोल? जल्दी से जल्दी जाने में भी कम से कम पंद्रह दिन लगेंगे और यदि रास्ते के जिनमंदिरों के दर्शन करते हुए जायें तो महीने से कम तो नहीं लगेगा। उतने दिनों तक कैसे फल दूध खाकर रहना संभव होगा?'' इन शब्दों में पद्मब्बे ने बहू को समझाया। अब्बकब्बे आदि ने भी समझाया। ''माँ! तुम नहीं खाओगी तो मैं भी नहीं खाऊँगा'' कहकर अण्णिग के आँसू बह निकले। ''अण्णिग! रोओ मत। बाहुवली भगवान की प्रेरणा से ही तो ऐसा कर रही हूँ। अत: किसी को उसका विरोध नहीं करना चाहिए। यह अनुचित होगा।'' इस प्रकार कहकर अत्तिमब्बे ने बेटे को समझाने के बहाने सबको समझा दिया और लोगों ने इस बारे में कहना छोड़ दिया।

नगर भर में अत्तिमब्बे ने यह ढिंढोरा पिटवा दिया कि जो बाहुबली स्वामी के दर्शनार्थ उनके साथ जाना चाहे, चले। उनकी सारी व्यवस्था की जायेगी।

असहाय और निरुपाय व्यक्तियों के लिए अत्तिमब्बे कामधेनु थी। उसके सम्मुख जाने पर लोगों के कष्ट दूर हो जाते थे। कहीं वह रोगियों को देखती तो स्वयं उनकी सेवा करती, दवा देती और स्वस्थ्य हो जाने के पश्चात् भी महिनों उनके लिए पुष्टिकर दूध, फल आदि का प्रबंध करती। सेवा करने में वह जाति-पांति का भेद नहीं रखती थी। दीन दु:खियों की सहायता करना उसका व्रत था। ऐसी अन्नपूर्णा जब यात्रा के लिए निमंत्रण दे तो कौन उस मौके को हाथ से जाने देगा? कुछ लोग यात्रार्थी बनकर सम्मिलित हुए तो कुछ परिचारक वर्ग में।

अत्तिमब्बे का यात्रा दल प्रतिदिन दस मील चलता। सैकड़ों बैलगाड़ियाँ थीं। अत्तिमब्बे और अण्णिग एक रथ पर जा रहे थे। औरों के लिए भी यथायोग्य रथ दिया गया था। अत्तिमब्बे सभी यात्रियों से स्वयं मिलकर उनकी सुख-सुविधा का विचार करती थी, जिनमंदिरों में पड़ाव डालती थी।

पंद्रह दिन बीत गए। अत्तिमब्बे के स्वास्थ्य में कुछ गड़बड़ी दिखाई देने लगी। वह दिन में केवल एक बार दूध और फल मित मात्रा में लिया करती थी, परंतु बिना विश्राम लिए काम करती थी। परिणाम यह हुआ कि सेहत गिरती गयी। इतनी दुर्बल बन गयी कि लोग घबरा गये।

''बेटी! तुम कर्नाटक की देवी हो। तुम दुर्बल हो तो देश दुर्बल होगा।'' पंप कवि ने समझाया। ''माताजी! आपने सेवाधर्म की दीक्षा ली है तो व्रतोपवासों की आवश्यकता आपके लिए नहीं है।'' रन्न ने प्रार्थना की। उन्होंने संन्यासी पोन्न से भी अत्तिमब्बे को समझाने को कहा। पोन्न जी ने कहा–''पंपजी! कौन जाने किस व्यक्ति में कौन सी शक्ति छिपी रहती है। बेटी! तुम खिन्न न हो। चाहे जो परिस्थिति हो व्रत में बाधा न आने दो। संसार की दृष्टि से तुम और हम दोनों बड़े सनकी हैं। हम दोनों के सिर पर अध्यात्म की सनक सवार है।''

करीब एक महीना बीता। यात्रा दल श्रवणबेलगोल पहुँचा। चामुण्डराय ने आगवानी की। सब गोम्मटेश्वर के दर्शन के लिए चले। काललादेवी की इच्छा थी कि दुर्बल अत्तिमब्बे को डोली के सहारे ले चलें। अत्तिमब्बे ने असहमति व्यक्त की। ''बच्ची! तुम बड़ी कमजोर हो, हठ मत करो। अत्ति! तुम मेरी अतिथि हो हमारे कहने के अनुसार चलना ही होगा।'' काललादेवी ने आग्रह किया। ''मामी! कृप्या इस विषय में मुझ पर दबाव न डालिए। गोम्मटस्वामी का नाम जपकर जीव उर्ध्वगामी बनते हैं, तो क्या मैं यह पहाड़ नहीं चढ़ पाऊँगी'' अत्तिमब्बे ने दृढ़तापूर्वक कह दिया। औरों ने भी अत्तिमब्बे को समझाया, पर वह नहीं मानी। लोगों ने सोचा कि उससे कुछ कहना ही व्यर्थ है।

अत्तिमब्बे ने गोमटेश्वर की भव्याकृति की झाँकी पाकर कृतकृत्यता का अनुभव किया। सहसा उसे नागदेव और गुंडुमब्बे का स्मरण जाग्रत हो उठा और बोली–''प्रभो! उन दोनों को मुझसे छीनकर क्यों मुझे अंधा कर दिया?'' अत्तिमब्बे की परा-वाणी से आकाश भी काँप उठा। ठीक उसी समय किसी वृद्धा से एक व्यक्ति ने पूछा–''नानी! क्या आपको प्रभु के चरणों तक पहुँचा दूँ?'' वृद्धा ने कहा–''नहीं-नहीं, मुझे यहीं बैठने दो। जब तक मेरी दृष्टि मुझे नहीं मिलेगी तब तब मैं अन्न जल ग्रहण नहीं करूँगी।'' ऐसा कहते-कहते वह कुछ दूर सरक कर बैठ गयी। उसे किसी का स्पर्श हुआ सा लगा। ''यह क्या है?'' वृद्धा ने पूछा। ''माँ! मेरा नाम अत्तिमब्बे है।'' अत्तिमब्बे नाम सुनते ही बुढ़िया के शरीर में बिजली का संचार सा हुआ, बोली–''कौन अत्तिमब्बे? इसी नाम की एक देवी विजयपुर में रहती है।'' अत्तिमब्बे ने कहा–''हाँ-हाँ! मैं विजयपुर की अत्तिमब्बे हूँ।''

''तब तो मेरा अहोभाग्य है। ठीक समय पर मिली हो। तुम चिंताग्रस्त व्यक्तियों के लिए चिंता दूर करने वाली चिंतामणि हो। माँ तुमने सबकी इच्छा पूर्ण की है, मेरी भी

करो। मुझे दृष्टि दान दो।'' वृद्धा ने प्रर्थना की। ''माँ! तुम्हारा गाँव कहाँ है?'' अत्तिमब्बे ने पूछा। वृद्धा ने कहा–''कोल्हापुर। वहाँ से रवाना होते समय मेरी दृष्टि अच्छी थी। गाँव से निकले तीन महीने बीत गए। एक सप्ताह पूर्व तक मैं स्पष्ट देख सकती थी। धीरे-धीरे दृष्टि धुंधुली सी हुयी। अब तो कुछ भी दिखाई नहीं देता। देवी एक बार मेरा स्पर्श करते हुए बोलो कि तुम्हें दृष्टि प्राप्त हो। एक बार मैं अपने प्रभु को देख लूँ बस, फिर चाहे मेरी दृष्टि सदा के लिए बुझ जाये।'' अत्तिमब्बे ने पूछा–''क्या तुमने मुझे पहले कहीं देखा है?'' वृद्धा ने कहा–''हमारे देश में तीन व्यक्ति इतने प्रसिद्ध हैं कि उनको जिन्होंने नहीं देखा वह सचमुच अभागा ही होगा। वे तीनों अत्तिमब्बे तुम, काललादेवी और बाहुबली स्वामी हैं। तुम्हें और काललादेवी को मैंने कोल्हापुर में देखा था। अब अपने प्रभु के दर्शन के लिए पाँच सौ मील पैदल आयी हूँ। पर आखिरी समय में आँख बुझ गयीं। हे दानचिंतामणि! दृष्टि दान दो, नहीं तो मैं यहीं अनशन करके मर जाऊँगी।'' अत्तिमब्बे ने कहा–''माँ! मैं भी एक सामान्य अबला नारी हूँ। दृष्टिदान देने की क्षमता मुझमें कहाँ? पुरखों ने संग्रह करके अपार सुवर्ण राशि छोड़ी थी, उसे बाँट-बाँटकर खाली करती आयी। जनता की सम्पत्ति थी जनता में बाँटी गयी। बस कृतज्ञ जनता मुझे दानचिंतामणि कहकर सम्मानित करती है।'' ''रहने दो देवी। मेरे लिए प्रभु से प्रार्थना करो, किसी तरह दृष्टि दान दो।'' ऐसा कहकर बुढ़िया बच्ची सी मचलने लगी और अत्तिमब्बे के चरण पकड़कर रो पड़ी।

अत्तिमब्बे का अंत:करण द्रवित हो उठा। वह सीधे उठकर प्रभु के चरणों के निकट गयी। प्रभु चरणों का अभिषेक लिया, जिसमें उसके कुछ आंसू भी मिल गये। उस गंधोदक की कुछ बूँदें उस बुढ़िया की आँखों में लगायीं और अत्तिमब्बे ने आँखें बंद करके प्रार्थना की–''हे प्रभो! यह तुम्हारे दर्शन के लिए लालायित है। हे दयामय! कृपाकरो, मैं अपनी एक आँख से तृप्त होऊँगी, दूसरी आँख की ज्योति इस वृद्धा को मिल जाये। हे प्रभो! बुढ़िया को आँखें नहीं दी तो तुम्हारे सिर मेरी सौंह।'' इस प्रकार अत्तिमब्बे ने भक्ति परवश होकर कहा।

गंधोदक के स्पर्श से उस बुढ़िया को ऐसे लगा जैसे सूरज पर से बादल हट जाता है, वैसे ही आँख पर से यह परदा भी हटा जिस कारण दृष्टि बुझ सी गयी थी। ठीक उसी समय कुछ बूँदें भी गिरीं। प्रभु पर स्वर्गीय अकृत कलश का अभिषेक हुआ। बुढ़िया ने बाहुबली स्वामी की मूर्ति को आपाद मस्तक देखा। बरसात में भीगती हुयी जनता बाहुबली के दर्शन से आंनद सागर में डूब गयी।

अत्तिमब्बे ने अंधी को आँखें दी, यह समाचार जनता में विद्युतगति को भी मात करते हुए फैल गया। मस्ताभिषेक के निमित्त भारत के कोने-कोने से भक्तवृंद आया ही था, उनमें जो-जो मूक, लंगड़े, कोढ़ी आदि थे सब अत्तिमब्बे के पास आए और

कष्ट से पार करने के लिए प्रार्थना करने लगे। बाहुवली की अपेक्षा जनता अत्तिमब्बे के कीर्तिगान में तन्मय होने लगी। अत्तिमब्बे देह की थकावट की ओर ध्यान न देकर दिन-रात उनके रोगों को दूर करने के निमित्त प्रभु से प्रार्थना करने लगी। जिनका प्रारब्ध दूर हुआ था उनको वांछित फल मिला। प्रभु ने अत्तिमब्बे को निमित्त बना लिया। उसका यश दिग्दिगंत फैलने लगा।

अजितसेनाचार्य जी ने अत्तिमब्बे से कहा–''जनता के दु:ख दर्द को दूर करने में अपनी सारी शक्ति गँवाती जा रही हो। यही हाल रहा तो साल डेढ़ साल में अपनी शक्ति से वंचित हो जाओगी। इन बातों से विरल हो जाओ।'' ''आचार्य जी! क्षमा कीजिए, भवरोग को दूर करने के लिए तीर्थंकरों ने युग-युग तक तपस्या नहीं की? स्वामी! तीर्थंकरों की शक्ति अपरिमित थी। मैं गरीबिन क्या कर सकूँगी? यदि मुझसे जनता का दु:ख दर्द दूर हो सकता हो, तो हो जाने दीजिए। मैं तो निमित्त मात्र हूँ, सब प्रभु की कृपा है।'' अत्तिमब्बे ने विश्वानुकंपा से आर्द्र होकर कहा। ''देखो बेटी! तीर्थंकरों की बात अलग है। इस मृत्यलोक में कई ऐसे महानुभाव हैं जिन्हें अपूर्ण सिद्धियाँ मिली रहती हैं, परंतु वे विशेष परिस्थिति के अतिरिक्त अन्यत्र उसका उपयोग नहीं करते।'' आचार्य श्री ने कहा। ''तब मैं क्या करूँ? बताइए।'' अत्तिमब्बे ने नतमस्तक होकर कहा। ''बेटी! जनता से सहानुभूति रखो। अपने-अपने कष्टों से पार होने के लिए उन्हीं को प्रार्थना करने को कहो, अन्यथा तुम्हारी यह दया अनुचित होगी। जनता आलसी बनेगी और तुम्हारा दिवाला निकलेगा। अब भी चेतो! यह महिमा प्रदर्शन की भूख दबाई जाये। अब अपने आत्म कल्याण की बात सोचो। जिस प्रकार वैद्य दवा देता है और परहेज कर रोगियों को रहने के लिए कहता है, उसी प्रकार तीर्थंकर भी स्वास्थ्य लाभ का मार्ग सुझाते हैं। अनंत शक्ति सम्पन्न परमात्मा ही जब इतना सजग रहते हैं तो अल्पशक्ति युक्त तुम्हारे लिए कितना संयम चाहिए, सोचो तो सही। जनता की भक्ति भावना को जागृत करो। वे स्वयं प्रार्थना करें। सबमें अनंत शक्ति अंतर्निहित रहती है। तुम्हारा काम उस शक्ति के स्रोत की ओर संकेत करना मात्र है। समझी?'' ऐसा कहकर आचार्य जी ने चेतावनी देने के साथ अत्तिमब्बे को कर्तव्य का रास्ता भी दिखाया।

अण्णिगदेव युवक हुआ। लक्कुंडी में जिनालय व राजधानी बनने योग्य कोट, नहर, बुर्ज आदि बस गए। अत्तिमब्बे की योजना थी कि जिनबिम्ब पंचकल्याणक, महल का प्रवेशोत्सव हो और साथ ही साथ अण्णिग का शुभ विवाह भी सम्पन्न हो।

अत्तिमब्बे के पाँचों भाइयों के यहाँ कन्याएँ थीं। सबकी सब अत्तिमब्बे की बहू बनना चाहती थीं। अण्णिग ने उनमें से सीतला और विमला को पसंद किया। एक ही

मुहूर्त में एक साथ दोनों कन्याओं का अण्णिग से पाणिग्रहण हुआ। पंचकल्याणक महोत्सव हुआ और इसी समय रन्न विरचित अजित पुराण का प्रकाशन भी हुआ।

अजितनाथ पुराण में रन्न ने अत्तिमब्बे का यशोगान भी मुक्त कंठ से किया था।रन्न ने अत्तिमब्बे को जिन जननी के समकक्ष माना है 'बुधजन बदिता'! 'कविवर कामधेनु'! 'चक्रवर्ती पूजिता'! 'जिनशासन प्रदीपिका'! 'दान चिंतामणि'! 'विनय चूड़ामणि'! 'सम्यक्त्व शिरोमणि'! 'शीलालंकृता'! गुणमाला लंकृता'! आदि विशेषणों से रन्न ने अत्तिमब्बे का यथार्थ गुणगान किया।

अत्तिमब्बे ने अजितपुराण की एक हजार प्रतियाँ बनवाकर बाँटी और रन्न का सुवर्ण तुलाभार करके सब स्वर्ण कवि रन्न को दे दिया।

राष्ट्रकूटों के बाद गंगराज्य दुर्बल बना। चामुण्डराय शस्त्रसंन्यास ग्रहण कर गोम्मटेश्वर स्वामी के सान्निध्य में ही आत्मचिंतन में लीन रहने लगे थे। उनके शस्त्रसंन्यास की बात जानकर चोल कर्नाटक पर मद गत के समान चढ़ गए। अनेक गाँवों को कुचलते हुए वे चालुक्य साम्राज्य पर धाक जमाने के निमित्त आगे बढ़े। इरिवबेडंग और सेनापति अण्णिग ने सेना सहित तुंगभद्रा नदी पार करके चोलों से युद्ध किया। युद्ध में चालुक्य जीत तो गए पर दुर्भाग्य से ठीक उसी समय वर्षा प्रारंभ हो गयी।

तुंगभद्रा में बाढ़ आ गयी। नदी के इस पार चालुक्य सेना और उस पार रसद, शस्त्रास्त्र रह गये। ऐसे अवसर का लाभ उठाते हुए चोलों ने फिर से धावा बोलने का निश्चय किया। चोलों ने तुंगभद्रा की ओर कूच किया। इधर विजयी चालुक्य सेना खाली हाथ थी। दोनों के बीच में केवल छः मील का अंतर रहा होगा।

एक दिन चोलों के पड़ाव की ओर एक पालकी आयी। उसके साथ पंद्रह-बीस कहार भी थे। चोल सैनिकों ने उनसे पूछताछ की। कहारों ने कहा–''हम लक्कुंडी जा रहे हैं। पालकी में राजमाता अत्तिमब्बे विराज रही हैं।''

यह सुनकर सैनिकों ने सोचा कि यदि इसे हम कैद करके रखें तो अवश्य चालुक्य विवश हो जायेंगे। उन्होंने सेनापति को यह समाचार दिया। सेनापति ने आते ही अत्तिमब्बे को पालकी से उतर आने की आज्ञा दी। कहारों ने म्यान से तलावार खींची और पालकी के चारों ओर खड़े हो गए। अत्तिमब्बे ने बाहर झाँकते हुए पूछा कि किसने हमको रोका है?

''हम चोल सेनापति हैं। अब तुम हमारी हिरासत में हो समझी?'' सेनापति ने बड़े घमण्ड से कहा। ''मैं क्यों उतर जाऊँ? कैसे तुमने मुझे हिरासत में लिया है? और क्यों?'' कहते हुए अत्तिमब्बे की भौंहे तन गयीं थीं। ''अरे! देखते क्या हो? दो चार लगा दो तो दिमाग ठिकाने आ जायेंगे। चोटी पकड़ के उतार लो।'' चोल सेनापति ने

अपने जवानों को आज्ञा दी। ''कहारों! तुम धीरज रखो।'' अत्तिमब्बे ने कहा और पालकी से उतर आयी। चोलों के सम्मुख खड़ी हो गयी और बोली–''क्यों मुझे हिरासत में लेना चाहते हो? हमने क्या अपराध किया है? बताओ।'' ''अपराध! अपराध यही कि तुम हमारे दुश्मन की माँ हो। तुम्हारे बेटे ने हमारे सैकड़ों जवानों को मारा है। उस अकेले व्यक्ति के कारण हम हार गए, नहीं तो सारा कर्नाटक हमारे पदतल पर आया होता।'' सेनापति ने दाँत पीसकर जबाव दिया। ''मेरा पुत्र तुम्हारे ही समान सेनाधिपति है। अपने कर्तव्य का निर्वाहण मात्र उसने किया है क्या? क्या चालुक्य सेना में तुम्हारे हाथ से किसी की मौत नहीं हुयी? अपने व्यवहार की बात अपने पास ही रहने दो।'' अत्तिमब्बे ने सलाह दी। व्यंग्य से हँसते हुए सेनापति ने अपने सैनिकों की ओर लाल आँखों से देखते हुए कहा–''क्या देखते हो? आगे बढ़ो, ले लो हिरासत में।''

वे आगे बढ़े और पालकी को घेर लिया। अत्तिमब्बे की भौंहे चढ़ गयीं और बोली–''खबरदार यदि आगे एक कदम भी आये तो कुशल नहीं होगा। स्त्रियों, बाल-बच्चों और निरीह जनता को कुचल कर साम्राज्य स्थापित करने वाली तुम्हारी ऐसी बुद्धि पर थूक है। तुम्हें धिक्कार है।'' अत्तिमब्बे ने जोर से कह दिया।

जैसे ही चोल सैनिकों ने उसे पकड़ने के निमित्त हाथ बढ़ाया वैसे ही क्रुद्ध होकर, ज्वालामुखी के समान आग उगलती हुयी दृष्टि से घूरकर अत्तिमब्बे ने अपने पदतले की मिट्टी को उन सैनिकों की ओर फूंक दिया। उनको ऐसा लगा कि सैकड़ों, हजारों बिजलियाँ एक साथ उन पर टूट पड़ी हों। अत्तिमब्बे ने पंचनमस्कार मंत्र जपते हुए पालकी की परिक्रमा की। कहारों और पालकी को घेरकर एक अग्निवलय निर्मित हुआ। घेरे के अंदर रहने वालों को वह चंद्रकिरणों का जल दिखाई दे रहा था, परंतु चोलों को वह सचमुच अग्निवलय ही था। उस दैवी व्यापार से चोल हतप्रभ होकर खड़े रह गए।

अत्तिमब्बे पालकी में बैठ गयी और पालकी आगे बढ़ी। पालकी और कहारों के चारों ओर निर्मित वह अग्निवलय भी उसी प्रकार आगे बढ़ा।

घड़ी दो घड़ी की यात्रा के बाद अत्तिमब्बे की पालकी तुंगभद्रा के किनारे आ पहुँची। चालुक्य सेना के पड़ाव पर उतरते ही अत्तिमब्बे ने मंत्र जप करते हुए चोलों का दिग्बंधन कर दिया। उस मंत्र शक्ति से दोनों के बीच में विद्युत प्राकार सृजित हुआ। यह खबर पाकर इरिवबेडंग अण्णिग के साथ वहाँ आया और उस अप्राकृतिक दृश्य को देख घबड़ा उठा। सोचा, अब न पीछे हटते बनता है और न आगे बढ़ते, पीछे तेज प्रवाह है और आगे यह अलौकिक विद्यतु प्राकार है। इरिवबेडंग और अण्णिग चिंताक्रांत हुए। तब सहसा वहाँ उन्हें एक पालकी दिखाई दी। आश्चर्य से दोनों आगे

बढ़े। अत्तिमब्बे वहाँ थी। ''माताजी! कैसे समय दर्शन दिये।'' कहकर इरिवबेंडग उसके चरणों में नतमस्तक हुआ। अण्णिग भी नतमस्तक हुआ और बोला–''माँ! हम संकट में फँसे हैं। पीछे प्रवाह आगे शत्रु, अब यह नया संकट भी उपस्थित हुआ। आप श्रवणबेलगोल से क्यों आ गयीं? चोल बड़े नीचे होते हैं।'' ''अण्णिग घबराओ मत। जब तक मैं जीवित हूँ, कर्नाटक साम्राज्य का बाल तक बाँका न होगा। मेरी तप शक्ति से बने इस विद्युत प्राकार के निकट आने का साहस जो भी शत्रु करेगा, जल जाएगा।'' अत्तिमब्बे ने आश्वासन दिया। ''माँ! तुंगभद्रा को शांत करने के लिए कुछ तो करो।' अण्णिग ने प्रार्थना की। ''अण्णिग! यह तुंगभद्रा ही क्या? आवश्यकता हो तो मैं सात समुद्र को कटाक्ष वीक्षण से सोख सकती हूँ। डरो मत। नदी पार करने के लिए सन्नद्ध हो जाओ।'' इस प्रकार अभय देकर अत्तिमब्बे ने पुत्र और इरिवबेडंग को विदा किया।

चोलों ने आक्रमण करने का साहस किया, परंतु उस विद्युत प्राकार के निकट नहीं आ सके। दूर ही से चालुक्य सेना की गतिविधि को देखते खड़े रहे।

चालुक्य सेना नदी पार करने की तैयारी में लग गयी। अत्तिमब्बे रथारूढ़ हुयी। उसकी अगल-बगल में अण्णिग और इरिवबेडंग बैठ गये। रथ में चार सफेद घोड़े जोते गये थे। उसे नदी में उतार दिया। नदी का पानी किसी खिंचाव के कारण दस-दस गज सरक गया। नदी के बीच में रास्ता खुला। रथ आगे बढ़ा। पीछे से सैकड़ों हाथी, हजारों घोड़े, लाखों सिपाही चल पड़े। विद्युत प्राकार भी उनके पीछे-पीछे जाने लगा।

चोल सेनापति यह सब देख ही रहा था। नदी पार करते हुए शत्रु को रोकने की इच्छा थी, परंतु वह कुछ नहीं कर सकता था। फिर भी उसने सेना को आज्ञा दी कि तीरों से हमला करो। उनके फेंके बाण अत्यंत वेग से चले जाते पर उस ज्योतिमंडल के पास पहुँचते ही परजले पक्षी की भाँति गिर जाते और जल जाते।

घड़ी दो घड़ी के अंदर सारी चालुक्य सेना नदी के उस पार पहुँच गयी। चोलों ने भी नदी पार करनी चाही, पर उस प्रज्ज्वलित दीवार के निकट नहीं आ सके। सेना के पार पहुँचते ही अत्तिमब्बे रथ से उतरी और पूजा के फूलों को अंजुली में भरकर नदी में चढ़ाये। तुरंत ही ऐसा शब्द हो उठा मानो समुद्र ही छींक रहा हो। पानी पुनः उमड़ आया।

कर्नाटक महिलारत्न के कीर्ति प्रवाह में चोलों का पराक्रम बह गया। कर्नाटक की सीमा से बाहर खदेड़ने तक अत्तिमब्बे की मंत्र शक्ति ने चोलों का पीछा किया।

कालचक्र अपनी गति से चल रहा था और अत्तिमब्बे की आँखों देखी महान विभूतियाँ एक-एक करके अस्तगत होती जा रहीं थीं। ऐसे अवसरों पर वह कहती ''प्रभो! क्यों मेरे भाग्य में यह सब कुछ देखना बदा है?''

अत्तिमब्बे के पिता मल्लप वृद्धावस्था में लक्कुंडि आये और वहीं उन्होंने अंतिम श्वाँस छोड़ी। अब्बकब्बे सती हो गयी। पितरों का वियोग हुए थोड़े दिन हुए थे कि पंप महाकवि के देहावसान का समाचार बिजली सा टूट पड़ा। उनके साथ उनकी तीनों पत्नियों ने सहगमन किया। पंप कवि का देहावसान हुए पंद्रह दिन हुए होंगे कि दल्लप की मौत लक्कुंडी में हो गयी। सास पद्मब्बे को सती होने से रोकने का भरसक प्रयत्न अत्तिमब्बे ने किया, पर कौन परम्परा के विरुद्ध जाना चाहता है? दल्लप की चिता पर पद्मब्बे हँसते-हँसते सो गयी। अत्तिमब्बे ने रोते हुए अपनी बहुओं से कहा–''ये ऐसे सास-ससुर थे कि कभी उन्होंने मेरे हाथ को रोकने का प्रयत्न नहीं किया। मुझे पतिहीना, अनाथिनी जानकर सदा मेरी इच्छाओं को पूर्ण करने में लगे रहे।''

ठीक इन्हीं दिनों में संन्यासी पौन्न जी और अजितसेनाचार्य जी के भी अंतिम दिन आये। अत्तिमब्बे 'प्रभो!' कहकर रो पड़ी। सोचने लगी कि सचमुच पापी चिरायु होते हैं। उसके आँख के आँसू अब सूख गए थे। सदा सुन्न सी बैठी रहती। दो दिन बीते। काललादेवी के कवलित होने का समाचार मिला।

''कर्नाटक के महान व्यक्तित्व एक-एक करके अस्त होते जा रहे हैं और देश अनाथ बन रहा है। न जाने और भी क्या-क्या देखने के लिए मैं जीवित हूँ।'' अत्तिमब्बे की आहें निकलने लगीं। उठते बैठते दु:खद समाचारों का भय उसे सताने लगा था। एक दिन चामुण्डराय के स्वर्गवास का समाचार उसे मिला। ''सचमुच कर्नाटक अब अनाथ हुआ। अब क्या बचा है? क्यों और किसके वास्ते जीवित रहूँ?'' अत्तिमब्बे यही सब सोचती हुयी आठों पहर चिंतित रहने लगी।

अत्तिमब्बे अब पूर्ण विरक्त बन गयी। बची-कुची संपत्ति भी वह दान दे बैठी। अब वह व्रतोपवास कर देह शोषण करने लगी, दिन-रात तपस्या में, आत्मचिंतन में लीन रहती। वह लौकिक से विरत तो हुयी पर लोक से विरत नहीं हो सकी। सदा याचकों की टोली उसके पीछे पड़ी रहती। कभी-कभी अत्तिमब्बे का हाथ खाली रहता, तब भी 'न' नहीं कहती। अपनी बहुओं से कुछ न कुछ दिला देती। कभी-कभी पुत्र के पास ही याचकों को भेजने के लिए विवश हो जाती।

प्रतिदिन अण्णिग प्रात:काल अत्तिमब्बे के चरणों पर सौ मुद्राएं चढ़ाकर चला जाता था। वह उनमें से एक-एक मुद्रा अपने पोते-पोतियों को देकर, दस-दस अपनी बहुओं को देकर, रन्न के नाम पर दस मुद्राएं छिपाकर रखती और बाकी सब दान कर देती थी।

एक बार बंकापुर से आश्रम के संचालक आए। उन्होंने अत्तिमब्बे से निवेदन किया–''माता जी! आश्रम की आर्थिक स्थिति शोचनीय बन गयी है। देने के लिए है कौन? राष्ट्रकूटों का पतन हुआ, चामुण्डराय जी और कल्पतरू सी काललादेवी भी अब

नहीं हैं। गंगों की ओर से दी जाने वाली वार्षिकी भी कम कर दी गयी है। आचार्यश्री ने कहा था कि जब तक दानचिंतामणि है, तब तक आप को चिंतित होने की जरूरत नहीं होगी। हम सब के द्वार खटखटा चुके हैं, परंतु कहीं सफल नहीं हुए। अंत में आप को ही कष्ट देना पड़ा। आप की अनुमति हो तो कहीं उधार लेकर अपना काम चला लेंगे, नहीं तो यही एक जैन विश्वविद्यालय है, इसे भी बंद कर देंगे।''

अत्तिमब्बे ने यह सब शांतचित्त से सुना, सोचने लगी–''मेरी भूल थी कि मैं दानचिंतामणि बनी। औरों के समान कहीं अज्ञात रह जाती तो यह संकट नहीं रहता। क्या जैन समाज रसातल चला गया? कैसी दरिद्रता आयी है? यह धनाभाव का परिणाम नहीं, भावना के अभाव का परिणाम है। जनता स्वार्थी और भाव शून्य बन गयी है। क्या करूँ? अपने पास मैंने एक कानी कौड़ी तक नहीं रखी।'' यह सोचते-सोचते अत्तिमब्बे की आँखों से आँसू बहने लगे। उसके आँसू देखकर आश्रमवासी बोले–''माता जी! क्षमा कीजिए। आपको हमने कष्ट दिया, यह हमारी दुर्बलता थी।''

''प्रबंधकों! मैंने अजितसेनाचार्य जी को वचन दिया था, वचन का पालन करूँगी। आखिर दान देने वाली मैं कौन हूँ? आचार्य जी की पदधूलि मेरे पास है, वही मेरे लिए अक्षयनिधि है। आश्रम को बंद करने की बात सोची भी नहीं जा सकती। हाँ, परिस्थिति के अनुरूप हमें परिवर्तन करना पड़ेगा। अब बंकापुर का योग समाप्त-प्राय है। अब हमारे लिए सजीव कल्पवृक्ष केवल गोम्मटेश्वर हैं। अतएव उसे श्रवणबेलगोल ले जाइए। इसका नाम गोम्मटेश्वर विद्यालय हो। वहाँ स्थापित करने का प्रबंध कीजिए।'' इतना कहकर अत्तिमब्बे अंदर चली गयी।

गोम्मट विद्यालय के लिए अत्तिमब्बे ने बहुओं से सहायता की याचना की। बहुओं ने कहा–''माताजी! हमारी सारी संपत्ति आप ही की देन है। आप के नाम पर हम अपना सारा स्वर्ण विद्यालय के लिए दान दे देंगी। केवल ये मांगल्य, नूपुर, कर्ण-फूल और दो-दो चूड़ियों को रख लेंगी।'' ऐसा कहते हुये दोनों बहुओं ने अपना सारा सोना लाकर संचालकों के सम्मुख रख दिया।

''महाशय! अभी इससे किसी भाँति काम चलाइए। श्रवणबेलगोल में विद्यालय प्रतिष्ठापित हो तो चिंता नहीं रहेगी। कई महानुभाव परमात्मा के दर्शन के लिए आते रहेंगे। कम से कम सौ में से विद्यालय का एक भी दानी निकलेगा तो भी काम चलता रहेगा।'' यह कहकर अत्तिमब्बे ने उन संचालकों को विदा किया।

दिन बीतते गए। अत्तिमब्बे की भक्ति भी बढ़ती गयी। वह अपनी अपूर्व शक्ति को छिपाए रखने का भरसक प्रयत्न किया करती थी, पर उसे अपना संयम कभी-कभी तोड़ना पड़ता था।

एक बार राजगज मस्ती में पागल बना और जो भी कुछ मिला नष्ट करने लगा। आखिरकार वह सीधे इरिवबेडंग के दरबार में ही घुस पड़ा, इरिवबेडंग को सूंड से उठाकर चक्राकार घुमाने लगा। इरिवबेडंग चीख उठा।

अत्तिमब्बे महल में ही थी। न जाने कैसे उसे यह बोध हुआ? दौड़ते-दौड़ते वह दरबार में आयी और पंचनमस्कार का जप करते हुए हाथी के पास गयी। उसे देखते ही हाथी शांत हो गया। हाथी ने इरिवबेडंग को सूंड़ से उतार दिया। अत्तिमब्बे ने चरण पर पड़े हुए इरिवबेडंग को उठाया और कहा–''बेटा! गोम्मटनाथ की कृपा है। पंचनमस्कार जपा करो।''

एक बार अण्णिग सपरिवार वन विहार करने गया। नदी के किनारे पड़ाव डाला। नागदेव नामक अत्तिमब्बे का एक पोता न जाने कब दादी की जिनमूर्ति लेकर खेलने लगा। वह उसे नहला रहा था कि वह हाथ से छूट गयी और नदी में कहीं खो गयी।

अत्तिमब्बे ने अन्न-जल छोड़ दिया और शपथपूर्वक कहा–''जब तक काललादेवी की दी गयी पार्श्वनाथ स्वामी की वह मरकत मूर्ति नहीं मिलेगी, तब तक मैं अन्न-जल ग्रहण नहीं करूँगी।'' अण्णिग ने सारी नदी छनवाई पर कहीं मूर्ति नहीं मिली। उसने वैसी ही दस मूर्तियाँ बनवाकर अत्तिमब्बे को अर्पित करने का वादा किया, पर अत्तिमब्बे ने स्वीकार नहीं किया।

आठ दिन अत्तिमब्बे निर्जल रह गयी। उस दिन फिर हाथी के सिर सनक सवार हुयी। वह लोह-शृंखला तोड़कर भागा और सीधे नदी में उतरकर उस जिनबिम्ब को सूंड में उठा लाया। वह झूमते-झूमते अत्तिमब्बे के पास पहुँचा और जिनबिम्ब को उसकी गोद में रख दिया। अत्तिमब्बे ने हाथी का सत्कार गन्ने आदि खिलाकर किया। सप्ताह भर जिनोत्सव मनाया गया।

एक बार गोम्मटेश्वर विद्यालय के संचालक फिर से आये। ''माता जी! आप के दान से श्रवणबेलगोला में विद्यालय बना। अभी कोई समस्या नहीं है। फिर भी आचार्यपाद का अभिमत है कि भविष्य में भी विद्यालय का काम सुचारु रूप से चले इसके लिए स्थाई व्यवस्था हो जानी चाहिए। मूलनिधि आपके नाम पर स्थापित हो जाए। अतएव आकर आपको कष्ट देना पड़ा।'' संचालकों ने अत्तिमब्बे से निवेदन किया।

''मूल-निधि कितनी होगी?'' अत्तिमब्बे ने सहज ही प्रश्न किया। ''कम से कम एक करोड़ की तो होनी चाहिए।'' संचालकों ने उत्तर दिया।

यह सुनते ही अत्तिमब्बे का उत्साह ठंडा पड़ा। पर उसने इस भाव को व्यक्त नहीं किया। उन लोगों से इतना ही कहा–''आप यहीं रुकिये, एक सप्ताह के अंदर इसका प्रबंध हो जाएगा।''

अत्तिमब्बे यों तो खाली हाथ थी। अपना कहने के लिए एक कौड़ी भी नहीं रही फिर भी उसने संचालकों को आश्वासन दे दिया।

वह पार्श्वनाथ भगवान के सम्मुख बैठे-बैठे मानसिक पूजा करने लगी। पाँच दिन बीत गये। ''प्रभो! क्या अंतिम दिनों में भी मेरी बात खाली रह जाये? अब तक तुम्हारी कृपा से किसी को भी मना नहीं किया। तुमसे कभी मैंने अपने लिए कुछ नहीं माँगा। जनता के लिए माँग रही हूँ। दीन दलितों को मेरे घर आने की प्रेरणा देने वाले तुम ही तो हो। क्या यही तुम्हारी लीला है? अब यह विद्यालय के संचालक कैसे आ सके? करोड़ रूपयों की माँग कौन कर रहा है? यह तुम्हारी प्रेरणा नहीं है? मुझ अबला की परीक्षा लेना चाहते हो? तुम तो स्वामी जानते ही हो कि इस अकिञ्चन के पास क्या है, और क्या नहीं है? निस्तेज सूर्य, कांतिहीन चंद्र, दान न दे सकने वाली दान चिंतामणि! इनका रहना, न रहना बराबर है। प्रभो! अब मेरे घर में सुवर्ण वृष्टि हो ताकि आये हुए ये अतिथि खाली हाथ न लौट पावें। फिर मुझे समाधिमरण ही दे दो, कोई बात नहीं।'' इस प्रकार उसका रोवाँ-रोवाँ कह रहा था। ठीक उसी समय उसके पोते-पोतियाँ वहाँ चले आये। चारों ने देखा कि दादी के आँसू बह रहे हैं। गुंडुमब्बे से रहा नहीं गया, पूछा ''दादी रो क्यों रही हो?'' अब्बकब्बे ने प्रश्न किया–''दादी तबीयत तो ठीक है?'' पद्मब्बे ने हाथ से छूकर पूछा–''दादी! बताओ तुमको क्या चाहिए? रोओ मत।'' ''जो चाहो माँगो, मैं ला दूँगा। तुम रोओगी तो मैं भी रो पड़ूँगा।'' चौथे नागदेव ने कहा और हथेली से उसके आँसू पोंछ डाले।

''बच्चों! मैं क्या उत्तर दूँ? तुम में से कोई मेरी माँग पूर्ण नहीं कर सकेगा।'' अत्तिमब्बे ने कहा। ''ऐसी बात नहीं दादी, हम अवश्य कर देंगे।'' प्रत्येक ने विश्वासपूर्वक कहा। ''देखो, मुझे बहुत पैसे चाहिए। मेरे हाथ में एक पैसा तक नहीं है।'' अत्तिमब्बे ने अपनी समस्या बतायी। ''बस! पैसे के लिए रो रही हो?'' इतना कहकर सब वापस गए और कुछ ही क्षणों में लौट आए।

''दादी! लो इतना मेरे पास है।'' गुंडुमब्बे ने कहा और अंजुली भर स्वर्ण-मुद्रा अत्तिमब्बे के सामने रख दीं। इसी प्रकार अब्बकब्बे और पद्मब्बे ने किया। ''दादी, मेरे पास सिर्फ इतना ही धन है। इसमें से आधा तुम लो और आधा मेरे पास रहेगा।'' नागदेव ने बांटते हुए कहा। ''बेटा! तुम्हारी बहनों ने अपनी सारी पूंजी दे दी। तुम तो केवल आधा देने की बात कहते हो। ऐसा क्यों?'' नागदेव को गोद में लेकर प्यार से अत्तिमब्बे ने प्रश्न किया। ''दादी! और आधा हिस्सा बचाकर रखे रहूँगा, और कभी तुम्हें जरूरत पड़ेगी तो ला दूँगा। समझी!'' बहुत ही सहज भाव से नागदेव ने उत्तर दिया। अत्तिमब्बे के आनंदाश्रु बह निकले।

''दादी! यह बड़ा कंजूस है।'' सब बहनों ने एक स्वर में कहा। ''पगली! तुम सभी भी मेरे ही समान मूर्ख हो। यह मेरा मुन्नू बड़ा समझदार है। एक ओर उदारता से दान करता है तो दूसरी ओर कुछ आपद्धन भी बचाए रखता है। दोनों चाहिए, नहीं तो मेरे ही समान तुम लोगों को रोना पड़ेगा।''

इस प्रकार बच्चों को समझाकर अत्तिमब्बे ने देखा साढ़े तीन अंजुली भर स्वर्ण मुद्राएं थीं। उसने उन्हें भक्तिपूर्वक पार्श्वनाथ को चढ़ा दिया और क्षणभर अंतर्मुखी हो ध्यानस्थ रही।

आँखें खोली तो देखा सामने अण्णिग और इरिवबेडंग खड़े हैं, बच्चे सब चले गए हैं। इरिवबेडंग ने कहा–''माँ! मैं आप के दर्शन के लिए चला आया हूँ। पिताजी ने आप की सेवा में कहला भेजा है कि नागदेव जी के स्वर्गवास होने पर नियमानुसार राज्य की ओर से कुछ क्षतिपूर्ति देनी थी। उस समय भूल गए। अब एक सप्ताह से पश्चाताप के मारे उन्हें शांति नहीं मिल रही है और आपद्धन के रूप में मल्लप देव की धरोहर भी हमारे पास पड़ी हुयी है। उसी को चुकता कर देने के निमित्त मुझे भेजा है। हिसाब लगाने पर कुल दो करोड़ दो लाख मुद्राएं निकलीं। उन्हें यहाँ ले आया हूँ, स्वीकार कीजिए और शुभाशीर्वाद दीजिए ताकि हमारे वंश का भला होता रहे।''

अत्तिमब्बे ने कहा–''प्रभु पार्श्वनाथ सबका भला करेंगे। मेरे बाल-बच्चे अलग नहीं, तुम अलग नहीं हो। जब तक मैं जीवित हूँ तब तक तुम लोगों का बाल तक बांका नहीं होगा।''

ठीक उसी समय रन्न कवि हाँफते-हाँफते आ उपस्थित हुआ, अत्तिमब्बे से बोला–''माताजी! इधर एक सप्ताह से न जाने क्यों आप खिन्न हैं? कम से कम मुझसे अपना दु:ख कह देतीं।'' ''बेटा! तुमने कैसे जाना कि मैं दु:खी हूँ?'' अत्तिमब्बे ने पूछा। ''माँ! मैं भत्तग्राम में भले ही रहूँ पर मेरा मन सदा आप ही के चरणों में लीन रहता है। आँख अंधी हो पर हिये की आँख अंधी नहीं होती। मेरे साथ चलिए, प्रमाण दे दूँगा।''

इतना निवेदन करके वह सबको महल के आँगन में साथ ले आया और अपने रथ पर स्थित मूर्ति का अनावरण करने का आग्रह अत्तिमब्बे से किया। अत्तिमब्बे ने उसका अनावरण किया और दंग रह गयी। वहाँ अत्तिमब्बे को ही पद्मासीन सुवर्ण प्रतीक के रूप में पाया। उसकी आँखों से बहे आँसू के चिन्ह उस मूर्ति पर स्पष्ट दिखाई दे रहे थे। इसे देखकर सब आश्चर्य चकित हुए।

''तात! कहाँ से इतना सोना जुटाया?'' अत्तिमब्बे ने रन्न से पूछा। ''माताजी! आपका दिया हुआ है, आपने मेरा तुलाभार कराया था, उस सोने से आपकी मूर्ति गढ़वाकर नित्य पूजा कर रहा हूँ।'' रन्न ने कहा। ''जीवित व्यक्तियों की मूर्ति नहीं

बनवानी चाहिए।'' अत्तिमब्बे ने कहा। ''माता जी! आप तो अमर हैं, आप इस नियम की अपवाद हैं।'' रन्न ने गंभीरता पूर्वक कहकर नमस्कार किया। ''पागल कहीं का! सोना दिया था आराम से रहने के लिए। उसके बदले मुझ जैसी विधवा अनाथिनी की मूर्ति बनवाने में मनों सोना लगा बैठे। मेरे नाना जी कहते थे कि कवियों का व्यवहार ज्ञान शून्य रहता है। तुम्हारा बर्ताव इस बात का साक्ष्य दे रहा है। इस सुवर्ण से सहस्रों जिनमूर्तियाँ बनवा सकते थे।'' अत्तिमब्बे ने रन्न को डांटा।

''माताजी! जिनेन्द्र आपकी दृष्टि में बड़े हैं, पर हमारी दृष्टि में आप बड़ी हैं। आपने मेरी पत्नियों और बच्चों को इतना सोना दे रखा है कि अब मुझे गहनों की भूख नहीं है। यदि किसी दिन मैं निर्धन भी बनूँ तो आपकी मूर्ति के सामने बैठ प्रार्थना करूँगा।'' यह कहते समय रन्न भाव परवश था।

सब ने मिलकर भक्तिपूर्वक अत्तिमब्बे की स्वर्ण प्रतिमा उठायी और सीधे महल के दीवानखाने में ले आये। वहाँ इरिवबेडंग के द्वारा लगाए गए सोने के ढेर के सम्मुख रखकर इरिवबेडंग, अण्णिग और रन्न तीनों ने मिलकर उस मूर्ति का अभिषेक ऐसे ही किया जैसे जिन मूर्ति का किया जाता है। अंजुलि में भर-भर कर सुवर्ण से भी अभिषेक किया। बहू-बेटे, बाल-बच्चे सबने मिलकर ''अत्तिमब्बे की जय! 'दानचिंतामणि' की जय! 'सम्यक्त्व चूड़ामणि' की जय।'' कहकर जयघोष किया।

अत्तिमब्बे को बच्चों का यह खेल अच्छा लगा। वह आनंद से फूल उठी। पार्श्वनाथ की हरी मूर्ति को अपनी स्वर्ण मूर्ति के सम्मुख रखाया और कहा–''महाप्रभो! मैं नहीं जानती कि ये क्या कर रहे हैं? अच्छा है या बुरा, तुम ही जानो। इन्हें स्वीकार करो। इन पर अनुग्रह करो।'' भक्ति भाव से अत्तिमब्बे गद्‌गद हो उठी।

इस प्रकार अत्तिमब्बे के यहाँ सुवर्णवृष्टि हुयी। इस बार भी कोई 'दान चिंतामणि' के द्वार से खाली हाथ व असंतुष्ट होकर नहीं लौटा। प्रभु से कहे अनुसार अत्तिमब्बे ने तपश्चात् सल्लेखना ग्रहण की और धर्मध्यान में लीन हो गयी। अंत में समाधिमरण पूर्वक देह त्यागकर उर्ध्व गति की ओर परायण कर गयी।

धर्मस्नेही बंधुओं! गुंडुमब्बे का अपनी बहन के प्रति स्नेह व समर्पण एवं अत्तिमब्बे की त्याग परायणता अपने आप में आदर्श उदाहरण है।

अत्तिमब्बे ने अपना पूरा जीवन जैनधर्म की प्रभावना, जैन संस्कृति के रक्षण एवं दूसरों की सेवा में लगा दिया।

'You will get all you want in life if you help enough other people get what they want'.

अत: हम जीवन में सब कुछ प्राप्त कर सकते हैं, यदि हम भी अपने आप को दूसरों की सेवा में अर्पित कर दें।